

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178957

UNIVERSAL
LIBRARY

DUP--786--13-6-75--10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/V82 S Accession No. G.H.1873

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

संघर्षके बाद

श्री विष्णु प्रभाकर



भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५३
मूल्य तीन रुपया

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

स्व० मुंशी प्रेमचन्द
को
जिनसे मैं कभी नहीं मिला
पर
जिनके शब्द मेरे पथकी ज्योति बने

विषय-सूची

१—मैं ज़िन्दा रहूँगा	..	..	१
२—मार्गमें	..	..	१७
३—पर्वतसे भी ऊँचा	..	..	२२
४—जजका फैसला	..	..	३०
५—अभाव	..	..	३६
६—बच्चा माँका था	..	..	५०
७—माँ-बाप	..	..	६१
८—ताँगेवाला	..	..	७३
९—पतिव्रता	..	..	८५
१०—स्नेह	..	..	९७
११—अगम-अथाह	..	..	१०५
१२—अधूरी कहानी	..	..	११७
१३—सम्बल *	..	..	१२७
१४—जीवन-दीप	..	..	१४३
१५—धरोहर	..	..	१५६
१६—गृहस्थी	..	..	१६८
१७—दूसरा वर	..	..	१८४
१८—रायबहादुरकी मौत	..	..	१९८
१९—संघर्षके बाद	..	..	२०६
२०—स्वप्नमयी	..	..	२१६
२१—डायन	..	..	२३४

मेरी कैफ़ियत

मैंने कहानी कैसे लिखनी शुरू की—यह प्रश्न अनेक बार पूछा गया। कई बार उत्तर भी दिया, जो छापेमें आया, पर सच पूछो तो वे सब उत्तर ग़लत थे। मैं आज भी नहीं जानता कि मैंने कहानी लिखनी कैसे शुरू की। यूँ तो दिमाग़से सोचा, क़लममें स्याही भरी और कागज़पर लिखा, लेकिन प्रश्नका उत्तर इस तथ्यमें नहीं आता।

बचपनसे कुछ अपनेमें सिमटा-सिमटा रहनेका और पढ़नेका स्वभाव था। केवल किताब पढ़नेका नहीं, आदमीको पढ़नेका भी। फिर व्यथा या जिसे त्रास कहते हैं, उसे भी पाससे देखा और भुगता। वैसे स्नेह भी आस-पास मँडराता रहा। बहुत कम आयुमें उत्तरदायित्व भी सिरपर आ गया। भौतिक संसारमें आर्यसमाजका गहरा सम्पर्क मिला। वातावरण कुछ इस तरहका था कि एक दिन मैंने कहानी लिख डाली। वह छपी और नष्ट हो गई। शायद यह नवम्बर १९३१की बात है। वह कहानी आज नहीं है, पर याद है कि कलाकी दृष्टिसे अपरिपक्व होनेपर भी उसमें भावोंकी सरलता थी, और थी भाषाकी प्रौढ़ता। एक जुआरी पत्तिके पत्नीकी करुणा उसमें थी। उसपर आर्यसमाजका स्पष्ट प्रभाव था। इस संग्रहकी कई और कहानियोंपर वह पाठकोंको मिलेगा।

लिखा मैंने उससे पहले भी। आर्यसमाजमें जो कुछ बोलता, उसे लिख डालता, गद्य काव्य भी लिखा और कविता भी, पर वे अब सब नाम-शेष हैं। लेख एकाध पड़ा हो सकता है। पर यहाँ तो कहानीकी बात है। इस पहली कहानीका नाम 'दिवालीके दिन' था और वह 'हिन्दी मिलाप' लाहौरके 'दिवाली अंक'में छपी थी। फिर भी एक-दो कहानी लिखी पर समय कम था, था ही नहीं। सवेरे चार बजे उठता, छ-सात तक किसी

न किसी परीक्षाकी तैयारी करता। आठ बजे दफ्तर जाता और आठके आसपास ही लौटता। कभी-कभी अगले दिनके आठ बज जाते। फिर ड्रैमेटिक क्लबमें भी जाता था। राधेश्यामके नाटकोंमें राजा दशरथ और भगवान् कृष्णसे लेकर 'एक वेद वेदनि बेटा बेटा साथ' की दलील देनेवाले विद्वषकों तकका अभिनय किया है। एक कम्पनी अपनी भी खोली थी, जिसका मैं एक्टर ही नहीं, सिकत्तर भी था और व्याख्यान केवल आर्यसमाजमें ही नहीं देने पड़ते थे; गुरुद्वारा, मस्जिद, जैन-मन्दिर, हिन्दी-सभायें, सरकारी मीटिंगें सभीके रंगमंच मेरे लिए खुले थे। इसपर भी नवम्बर १९३१से १९३४ तक पाँच-दस कहानियाँ लिखी होंगी। एक बार श्री महाश्वीरप्रसाद द्विवेदीको एक कहानी भेजी, पर वे बहुत बूढ़े हो चुके थे, कुछ सलाह न दे सके। पर जिस तत्परतासे, स्नेहसे, उन्होंने उत्तर दिया, उससे मुझे बड़ी प्रेरणा मिली। प्रेमचन्दजीको भी कई कहानियाँ भेजीं। उन्होंने उन्हें छापनेकी बात कही, पर कुछ मुधारकर। उन्होंने मुझे कुछ हिदायतें दीं। एक लेख मेरा 'जागरण'में छपा भी, पर जीतेजी कहानी शायद कोई नहीं छाप सके। हाँ, उनकी मृत्युके बाद तो हंसमें मैंने नियमसे लिखा। कहूँ कि मैं 'हंस'के द्वारा इस क्षेत्रमें आया पर वह अभी आगेकी बात है। प्रेमचन्दजीने मेरी कहानियोंके प्लोटको पसन्द किया और बड़ी आत्मीयतासे मुझे लिखा कि कहानियाँ बहुत लिखी जाती हैं, पर अच्छी कहानियाँ उनमें बहुत ही कम होती हैं।

शायद सन् १९३४की बात है। लाहौरसे एक मासिक पत्र निकला था। 'अलंकार' उसका नाम था। आचार्य देवशर्मा (अब पाँडेचरी आश्रमके स्वामी अभयदेव) उसके मुख्य सम्पादक थे। कहानीके सम्पादक थे श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार। मेरे पास जो ५-६ कहानियाँ पड़ी थीं वे सबकी सब उठाकर उन्हें भेज दीं। सलाह भी माँगी। उन्होंने उत्तर दिया कि कहानियाँ अच्छी हैं। अलंकारमें छापेंगे। सलाह उन्होंने यह दी कि आजकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक होती हैं। मुझे इस बातका ध्यान रखना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि कहानी-लेखकके रूपमें मेरा जीवन सन् १९३४से ही आरम्भ होता है। चन्द्रगुप्तजीने मेरी दो कहानियाँ छापीं। फिर वह पत्र बन्द हो गया और उसके साथ मेरी शेष कहानियाँ भी नाम-शेष हो गई। इस सग्रहकी 'स्नेह' कहानी उसी 'अलंकार'में छपी थी। इसके बाद भी लिखनेके क्रममें कोई गति नहीं आई। हाँ, विश्वास अवश्य आया। पर सन् १९३५ तक मेरे जीवनमें एक परिवर्तन आ चुका था। भयंकर शारीरिक और मानसिक श्रमने मेरे स्वास्थ्यपर चोट की और सन् १९३६में मेरी आँतोंमें जो खराबी आई, वह आजतक नहीं मिटी। सन् १९३६ और कई कारणोंसे भी मुझे याद रहेगा। तबतक मैं परीक्षाओंके आलजाल, भाषणोंके मोह और ड्रेमेटिक क्लबोंके चक्रव्यूहसे मुक्त हो चुका था। सिनेमाने रगमंचको नष्ट कर दिया था और स्वास्थ्यने परीक्षाओंको। इधर सात वर्षकी सरकारी क्लर्कीने (जिसे राष्ट्रीय विचारोंके कारण मैंने कभी नहीं चाहा था) मेरे भीतर भयंकर मानसिक संघर्ष पैदा कर दिया और राष्ट्रीय आन्दोलनोंने आर्यसमाजकी कट्टरताको भी धो दिया। इन सब कारणोंसे मेरा ध्यान कहानी लिखनेपर अधिक जाने लगा। जो धारा अबतक अटक अटककर बह रही थी, उसे मानो मार्ग मिल गया।

'संघर्षके बाद' मैंने सन् १९३६में ही लिखी। उसे मैंने माधुरीको भेजा। लौटती डाकसे स्वीकृतिका पत्र आया। वह २१ जूनकी बात है। याद इसलिए है कि यह मेरी जन्मतिथि है। याद है मुझे उस दिन बहुत खुशी हुई थी, पर मैंने उस कहानीको 'माधुरी'में छपे कभी नहीं देखा। अगले वर्ष सन् १९३७में वह 'हंस'में छपी। यहीसे मेरे सम्बन्ध 'हंस'से और श्री जैनेन्द्रकुमारसे हुए। जैनेन्द्रजीसे कैसे मिला, यह स्वयं एक कहानी है। शायद इसी कहानीके लिए उन्होंने लिखा था कि कहानी सुन्दर है, पर मुझे 'भावनाकी मुलायमियत कुछ कम करनी चाहिए।' इससे मेरा उत्साह कितना बढ़ा आज कैसे बताऊँ। और कहानियाँ भेजीं; मिलने भी गया। जैनेन्द्रके मखसे और लेखनीसे सनने और पढ़नेको मिला कि

मैं शानदार कहानियाँ लिखता हूँ, इतनी कि उन्हें भी ईर्ष्या होती है। जैनेन्द्र ऐसा कहे और एक नौसिखिया फूल न उठे, आश्चर्यकी बात है। कोई वीतराग ही ऐसा कर सकता है, पर मैं वीतराग नहीं था। आजतक नहीं बन सका। इसलिए उस दिन मैंने मान लिया था कि अच्छा या बुरा 'मैं' कहानी लेखक हूँ'। आजतक इस मान्यताको बदलनेका कारण मुझे नहीं मिला। भले ही पाठक इसे गवोंक्ति कह लें पर सच यही है। आज मुझे लोग नाटककारके रूपमें अधिक जानते हैं। एक भाईने मुझे असफल कहानीकार तथा सफल नाटककार कहा। इधर दो-तीन वर्षोंमें हिन्दी कहानीपर जो भी पुस्तकें निकलीं या पत्रोंके विशेषांक प्रकाशित हुए उनमें लगभग सभीमेंसे मेरा नाम ग्रायब है। पर पूरी विनम्रताके साथ मेरी मान्यता यही है कि मैं जैसा भी हूँ, अच्छा या बुरा; छोटा या बड़ा, सबसे पहले कहानीकार हूँ। नाटककार तो मैं अभी अपनेको कह भी नहीं सकता, सफल नाटककार होनेकी बात ही क्या है।

बहरहाल मेरे कहानीकार होनेकी कहानी संक्षेपमें इतनी ही है। मैं चाहता था कि सन् १९३६से सन् १९४० तककी कुछ कहानियाँ इस संग्रहमें दे पाता। दे नहीं पाया। उसके कई कारण हैं, एक तो उनमेंसे कुछ कहानियाँ 'आदि और अन्त' (१९४४) रहमानका बेटा, (१९४७) तथा जिन्दगीके थपेड़े (१९५२) मेरे इन तीन संग्रहोंमें छप चुकी हैं। कुछ खो गई। ६ जून १९४०को पंजाबमें जो सामूहिक तलाशियाँ हुई, उस दिन, सरकारी नौकर होते हुए भी, मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियोंमें था, जो उस नाटकके पात्र बने। क्या हुआ वह इस कैफियतके दायरेसे बाहर है पर एक बात ऐसी थी जिसने मेरे कहानीकारको नई दिशा दी। अर्थात् मेरा मन अब उस नौकरीसे ऊब गया। यद्यपि पंजाब सरकारने इन सारी बातोंके बावजूद मुझे कुछ नहीं पूछा, पर मेरा मन विद्रोह कर बैठा। उधर मध्य-वर्गके मेरे जैसे प्राणियोंकी आर्थिक स्थिति निम्न थी। जिम्मेदारियाँ ऐसी कि फैंके न फिके। ऊपरसे नई शादी, एक बच्चा और बढ़

गया ! परिणाम यह हुआ कि उस तीव्र संघर्षने मेरी पुरानी बीमारीको उभार दिया और लगभग चार वर्ष मैं इसी बीमारी और विद्रोहके चक्रव्यूहमें फँसा रहा । स्वास्थ्य गिरता गया, पर अन्तमें जीत विद्रोहकी हुई और सन् १९४४में मैंने १५ वर्षकी सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया । मैं स्वीकार करूँगा कि यद्यपि मित्रोंने इस बातका तीव्र विरोध किया था, पर मेरे परिवारवालोंने (मेरे भाइयोंने और मेरी पत्नीने) मेरा पूर्ण समर्थन किया । मुझे बल दिया । यह कम सौभाग्य नहीं है । अब मैं सर्वथा मुक्त होकर लिखने लगा । अनजाने ही मैंने जो बन्धन स्वीकार कर लिये थे, वे टूट गये । मैं समझता हूँ, मेरी कलापर इस घटनाका प्रभाव पड़ा । पड़ना अनिवार्य था ।

मेरी कहानियोंमें सामाजिक विद्रोह शुरूसे रहा है, पर आरम्भमें वह आर्यसमाजके सुधारवादसे प्रभावित था ; अब उसका स्वर विशुद्ध मानवताके स्तरपर आ गया । गलतफ़हमी न हो, मैं इस बातको स्पष्ट कर दूँ, अर्थात् अब उस स्वरमें 'यहीँतक' 'इतना ही, आगे नहीं' के बन्धन नहीं रहे । राजनीतिके क्षेत्रमें भी मैंने अपनेको किसी वादसे नहीं बाँधा । वादको मैं फाँसी मानता हूँ । यूँ मेरे विचार हैं, बिना विचारोंके मैं आगे बढ़ ही नहीं सकता । मैं मानता हूँ कि मानव मूलमें बर्बर होकर भी अनिवार्य रूपसे बुरा नहीं है । उसकी बर्बरता निश्चयसे रूपान्तरित हो सकती है । शाश्वत गुणोंकी लम्बी सूचीमें मेरा विश्वास नहीं है पर एक, केवल एक शाश्वत गुण मैं अवश्य मानता हूँ । वह है किसीके लिए कुछ करनेकी भावना । शेष सब नैतिकता सापेक्ष है । यह स्वर इन कहानियोंमें बराबर मिलेगा । सोई हुई मानवताको ही मैं ढूँढता रहता हूँ । हमने प्रकृतिको और विज्ञानको अपना दास बना लिया है । वह बुरा नहीं है । बुरा यही है कि मनुष्य अपना दास बन गया है । दास बनता है बर्बरता जागती है, स्वामी बनता है मानवता उमड़ती है । आजका मानव बर्बर है । उसी बर्बरताका रूपान्तर आजके यगकी आवश्यकता है । उस मानवताको खण्ड-खण्ड करनेवाले

जो भी स्वर हैं अधिनायकवाद, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता और रंगभेद आदि आदि सबका मैं विरोधी हूँ।

मुझे कुछ लोगोंने प्रगतिवादी कहा, कुछने उदार-सामन्तवादी, कुछने गान्धीवादी, पर मैं कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो केवल, वादी हूँ तो, विष्णुवादी हूँ। इसे अहम् कह लें, कुछ कह लें, पर मेरा नम्र निवेदन यही है कि यह मात्र 'विश्वास' है। यह 'विश्वास' न होता तो मैं लिखता कैसे? मेरे व्यतीतमें यह विश्वास था, मेरे भविष्यमें यही विश्वास बना रहेगा—ऐसा मैं मानता और चाहता हूँ।

६ जून सन् १९४० की तलाशीमें एक और साधारण-सी बात हो गई थी। उस गड़बड़में कुछ साहित्य तो खो ही गया, उसका लेखा जोखा जो मेरे पास था वह भी बिल्कुल नष्ट हो गया। रहीं-सहा मैंने पिछले साल नष्ट कर दिया। सभी रचनाओंकी जो पुरानी पाण्डुलिपियाँ पड़ी थी, वे फाड़ फेंकी। आजकल आदमीको रहनेको जगह नहीं मिलती, ऐसी चीजें कहाँ रखें? फिर यह निरा मोह है। मोहसे जितनी मुक्ति मिले, उतनी अच्छी। यह स्वर भी इन कहानियोंमें मिलेगा, भले ही वह तीव्र न हो।

पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियाँ मैंने नहीं लिखीं। वर्तमान इतना है कि व्यतीतकी ओर दृष्टि नहीं जाती। फिर भी एक कहानी इसमें है ही। वह वस्तुतः लिखवाई गई थी। मैंने स्वतः नहीं लिखी, पर विषय मेरे मनके अनुरूप होनेसे वह मेरी बन गई। इसी तरह तत्कालीन आन्दोलनोंको जब-जब मैंने अपनी कहानियोंमें उतारा, तब-तब उसका एक मात्र उद्देश्य मान-वताकी खोज ही रहा है। उनके लिए या उनके विरुद्ध प्रचार करना नहीं।

मुझे कुछ लोग आदर्शवादी भी कहते हैं। जैसा कह आया हूँ 'वादी' मैं नहीं हूँ। हाँ, आदर्श मुझे प्रिय है, पर आकाशमें उड़नेवाला नहीं, धरतीका वासी! यथार्थसे मैं कभी दूर नहीं भागता। मानवका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करनेवाला भाग ही नहीं सकता। मैं अपने दोषोंकी कैफ़ियत नहीं दे रहा हूँ। कमज़ोरियाँ मुझमें बहुत हैं। मैं तो अपने दृष्टिकोणकी

कैफ़ियत दे रहा हूँ। इन्हीं २१ कहानियोंमें १२ तो बिल्कुल सच्ची या सच्ची घटनाओंपर आधारित हैं। एक ऐतिहासिक अपवाद है। शेष ८ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्यपर आधारित हैं। उनके व्यक्ति-वाचक पात्र मुझे नहीं मिले, पर जातिवाचक अवश्य मिले। इसलिए मेरे समीप वे और भी सत्य हैं।

शैली और भाषाकी बात भी कहता चलूँ। मैंने किसी एक ढंगपर कहानियाँ नहीं लिखीं। रूप भी कई लिये। शायद सब इस संग्रहमें नहीं आ सके। वह मेरा उद्देश्य नहीं था। फिर भी इनमें काफ़ी विभिन्नता मिलेगी। डायन, रायबहादुरकी मौत, बच्चा माँका था, माँ-बाप, तांगेवाला, स्नेह आदि सबकी शैली अलग-अलग है। भाषाको दृष्टिसे भी विभिन्नता इनमें है। जीवन-दीप और अधूरी कहानीकी भाषामें काफ़ी अन्तर है। इस बारेमें प्रयोग करना मुझे अच्छा लगता है। वैसे अराजकता इनमें नहीं मिलेगी। मेरा अपनापन सबमें एक जैसा है।

जहाँतक याद पड़ता है जजका फैसला, अगम अथाह, सम्बल, जीवन-दीप, रायबहादुरकी मौत और डायन दिल्लीकी सुपरिचित साहित्यिक संस्था 'शनिवार समाज'में पढ़ी जा चुकी हैं और साधारणतः उन्हें पसन्द भी किया गया है। जजका फैसला, जीवन-दीप, धरोहर, संघर्षके बाद, गृहस्ती, ये कहानियाँ रूपान्तरित होकर आकाशवाणीके कई केन्द्रोंसे प्रसारित हो चुकी हैं। गृहस्ती, जजका फैसला, और संघर्षके बाद तो कई बार प्रसारित हुई हैं। 'गृहस्ती'पर 'विश्वकहानी प्रतियोगिता' के अन्तर्गत होनेवाली 'हिन्दी कहानी प्रतियोगिता'में चौथा इनाम मिला था। यह लगभग सभी भारतीय भाषाओंमें अनुदित हो चुकी है। इसका रेडियो रूपान्तर "और वह जा न सकी" कन्नड़ और मराठीमें अनुदित होकर मैसूर तथा नागपुरसे प्रसारित हो चुका है। 'अगम अथाह' आकाशवाणीके दिल्ली केन्द्रसे कहानीके रूपमें ही प्रसारित हुई थी। शेष कहानियोंकी कहाँ-कहाँ और क्या चर्चा हुई, वह यहाँ असंगत है।

पाठक उन्हें पढ़ें और समझें । जो उन्हें अच्छा न लगे, वह बतायें ।

मैंने अबतक २००से अधिक कहानियाँ लिखी हैं । पुस्तक रूपमें कुल ७० भी नहीं आ सकीं । कुछके तो मुझे नाम भी याद नहीं रहे । ६०-७० और बेशक मेरे पास हो सकती हैं । चाहता था दो चार और इस संग्रहमें आ पातीं, पर हिन्दीमें कहानियाँ लिखी जाती हैं, विकती नहीं, इस डरसे संग्रहको और स्थूलकाय बनाना उचित नहीं माना गया । कुछ भी हो, मैं जो हूँ इन कहानियोंमें काफ़ी ईमानदारीसे उभर आया हूँ ।

तो यह संक्षेपमें मेरी और मेरी कहानियोंकी कथा है । मेरा 'मैं'-इस कैफ़ियतमें बहुत उभर आया है । मुझे स्वयं अखर रहा है, पर अपने दिलकी बात साफ़-साफ़ कहनेका यही रास्ता मेरी कलमको सूझा । मुझे विश्वास है कि पाठक इस दम्भको नज़रअन्दाज़ कर देंगे ।

धन्यवाद एक शिष्टाचार है । आत्मीयता उसमें कम रह गई है, पर जिन व्यक्तियोंकी इस संग्रहके पीछे प्रेरणा है, उनकी याद न करना भी आत्मीयता नहीं है । इन कहानियोंके चुननेका काम मेरे बड़े भाई श्रीब्रह्मानन्द, मेरे मित्र श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' तथा श्रीमती रमारानी जैनने किया । मैं श्रीमती रमारानी जैनसे परिचित नहीं हूँ, पर उनकी चुनाव-दृष्टिने मुझे प्रभावित किया । उनका विशेष रूपसे आभार मानता हूँ । 'भारतीय ज्ञानपीठ' तो प्रकाशक है ही । जो प्रकाश दे, उसे कौन धन्यवाद न देगा ?

अन्तमें जो इन कहानियोंकी रचनाके पीछे प्रेरक शक्तियाँ रही हैं, उन्हें मैं अपना वितम्र और मूक प्रणाम निवेदन करता हूँ । मेरे साहित्यकी 'ब्रह्मा-विष्णु' वे ही हैं । वे ही 'सत्य' हैं, मैं तो मात्र 'वास्तविकता' हूँ ।

३३४६, पीपल महादेव, दिल्ली }
१५-५-५३

—विष्णु प्रभाकर

मैं ज़िन्दा रहूँगा

दावत कभीकी समाप्त हो चुकी थी, मेहमान चले गये थे और चाँद निकल आया था। प्राणने मुक्त हास्य बखेरते हुए राजकी ओर देखा। उसको प्रसन्न करनेके लिए वह इसीप्रकारके प्रयत्न किया करता था। उसीके लिए वह मसूरी आया था। राजकी दृष्टि तब दूर पहाड़ोंके बीच, नीचे जानेवाले मार्गपर अटकी थी। हल्की चाँदनीमें वह धुँधला बल खाता मार्ग अतीतकी धुँधली रेखाओंको और भी धुँधला कर रहा था। सच तो यह है कि तब वह भूत और भविष्यमे उलभी अपनेमे खोई हुई थी। प्राणके मुक्त हास्यसे वह कुछ चौकी। दृष्टि उठाई। न जाने उसमें क्या था, प्राण कांप उठा, बोला, 'तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ?'

राजने उस प्रश्नको अनसुना करके धीरेसे कहा, 'आपके दाहिनी ओर जो युवक बैठा था, उसको आप अच्छी तरह जानते हैं ?'

'किसको, वह जो नीला कोट पहने था ?'

'हाँ, वही।'

'वह किशनके पास ठहरा हुआ है। किशनकी पत्नी नीचे गई थी, इसीलिए मैंने उसे भी यहाँ आनेको कह दिया था। वयों, क्या तुम उसे जानती हो ?'

'नहीं, नहीं, मैं वैसे ही पूछ रही थी।'

'मैं समझ गया। वह दिलीपको बहुत प्यार कर रहा था। कुछ लोग बच्चोंसे बहुत प्रेम करते हैं।'

'हाँ, पर उसका प्रेम 'बहुत'से कुछ अधिक था।'

'क्या मतलब ?'

‘तुमने तो देखा ही था; दिलीप उनकी गोदसे उतरना नहीं चाहता था।’

प्राणने हँसते हुए कहा—‘बच्चा सबसे अधिक प्यारको पहचानता है। उसका हृदय तारतकी चाँदनीसे भी निर्मल होता है।’

तभी दोनोंकी दृष्टि सहसा दिलीपकी ओर उठ गई। वह पास ही पलंगपर मखमली लिहाफ़ ओढ़े सोया था। उसके सुनहरे घुँघराले बालोंकी एक लट मस्तकपर आ गई थी। गौरवर्णपर उसकी सुनहरी छाया चन्द्रमाके प्रकाशके समान बड़ी मधुर लग रही थी। बच्चा सहसा मुस्कराया। राज फुसफुसाई, ‘कितना प्यारा है!’

प्राण बोला, ‘ऐसा जान पड़ता है कि शैशवको देखकर ही किसीने प्यारका आविष्कार किया था।’

दोनोंकी दृष्टि मिली। दोनों समझ गये कि इन निर्दोष उक्तियोंके पीछे कोई तूफ़ान उठ रहा है, पर बोला कोई कुछ नहीं। राजने दिलीपको प्यारसे उठाया और अन्दर कमरेमें ले जाकर लिटा दिया। मार्गमें जब वह कन्धेसे चिपका हुआ था, तब राजने उसे तनिक भींच दिया। वह कुनमुनाया, पर पलंगपर लेटते ही शान्त हो गया। वह तब कई क्षण खड़ी-खड़ी उसे देखती रही। लगा, जैसे आजसे पहले उसने बच्चेको कभी नहीं देखा था, पर शीघ्र ही उसका वह आनन्द भंग हो गया। प्राणने आकर कहा, ‘अरे ! ऐसे क्या देख रही हो, राज ?’

‘कुछ नहीं।’

वह हँसा, ‘जान पड़ता है, प्यारमें भी छूत होती है।’

राजने वहाँसे हटते हुए धीरेसे कहा—‘सुनिये, अपने उन मित्रके मित्रको अब यहाँ कभी न बुलाइये।’

इन शब्दोंमें प्रार्थना नहीं थी, भय था। प्राणकी समझमें नहीं आया। चकित-सा बोला, ‘क्या मतलब ?’

राजने कुछ जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चली

गई और अपने स्थानपर बैठकर, पहलेकी भांति उस बलखाते हुए मार्ग को देखने लगी। नीचे कुलियोंका स्वर बन्द हो गया था। ऊपर बादलोंने सब कुछ अपनी छायामें समेट लिया था। चन्द्रमाका प्रकाश भी उसमें इस तरह घुल-मिल गया था कि उनकी भिन्नता रहस्यमय हो उठी थी। राजको लगा, बादलोंकी वह धुंध उसके अन्दर भी प्रवेश कर चुकी है और उसकी शान्तिको लील गई है। सहसा उसकी आँखें भर आई और वह एक भटकेके साथ कुरसीपर लुढ़ककर फूट-फूटकर रोने लगी। प्राण सब कुछ देख रहा था। वह न सकपकाया, न क्रुद्ध हुआ। उसीतरह खड़ा हुआ उस फूटते आवेगको देखता रहा। जब राजके उठते हुए निश्वास कम हुए और उसने उठकर आँखें पोंछ डालीं, तब उसने कहा, 'दिलका बोझ उतर गया? आओ तनिक घूम आवें।'

राजने भीगी दृष्टिसे उसे देखा। एक क्षण ऐसी ही देखती रही। फिर बोली, 'प्राण, मैं जाना चाहती हूँ।'

'कहाँ?'

'कहीं भी।'

प्राण बोला, 'दुनियाको जानती हो। क्षणभर पहले यहाँ सब कुछ स्पष्ट था, पर अब नहीं है, सब कुछ बादलोंकी धुन्धमें खो गया है।'

'मैं भी इस धुन्धमें खो जाना चाहती हूँ।'

प्राणने दोनों हाथ हवामें हिलाये और गम्भीर होकर कहा, 'तुम्हारी इच्छा। तुम्हें किसीने बाँधा नहीं है, जा सकती हो।'

राज उठी नहीं। उसीतरह बैठी रही और सोचती रही। रात आकर चली गई, उसका सोचना कम नहीं हुआ, बल्कि और भी गहरा हो उठा। उसने दिनभर दिलीपको अपनेसे अलग नहीं किया। स्वयं ले जाकर मालपर भूलेमें भुला लाई। स्वयं घुमाने ले गई और फिर खिला-पिलाकर सुलाया भी स्वयं। बहुत देर तक लोरी सुनाई, थपथपाया, सहलाया। वह सो गया, तो रोई और रोते-रोते बाहर बरामदेमें जाकर

अपने स्थानपर बैठ गई। वही चन्द्रमाका धुंधला प्रकाश, वही बादलोंकी घुन्घ, वही प्रकृतिकी भांति ऊपर अपूर्व शान्ति और अन्दर तूफानकी गरज। प्राणने आज राजको कुछ भी न कहनेका प्रण कर लिया था। वह उसकी किसी इच्छामें बाधा नहीं बना। अब भी जब वह दृष्टि गड़ाये उस बलखाते मार्गको ढूँढनेकी विफल चेष्टा कर रही थी, वह कुरसीकी पीठपर हाथ रखे हुए खड़ा था। तभी लगा कोई जीनेमें आ रहा है। राज एकाएक बोल उठी, 'वे आ गये।'

'कौन?'

'आपके मित्रके मित्र'।

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि वे मित्र बरामदेमें आते हुए दिखाई दिये। प्राणने देखा—वे अकेले नहीं हैं। उनके साथ एक पुरुष तथा एक नारी भी हैं। दोनों सभ्य लगते हैं। नारी विशेष सुन्दर है, पर इस समय वे अतिशय गम्भीर हैं। उनकी आँखें बताती हैं कि वे व्यग्र भी हैं। प्राण उन्हें देखकर काँपा तो, पर आगे बढ़कर उसने उनका स्वागत भी किया। मुस्कराकर बोला, 'आइये, आइये ! नमस्ते। किशोर नहीं आये?'

'जी, किशोर नहीं आ सके।'

'बैठिये, आइये, आप इधर आइये।'

बैठ चुके तो प्राणने अपरिचितोंकी ओर देखकर पूछा, 'आपका परिचय।'

'ये मेरी बहन है और ये बहनोई।'

ओह ! प्राण मुस्कराया, हाथ जोड़े, दृष्टि मिली, जैसे कुछ हिला हो। फिर भी सँभलकर बोला, 'आप आजकल कहाँ रहते हैं?'

मित्रने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, 'कहाँ रहते। विधाताने ऐसा उखाड़ा है कि कहीं जमते नहीं बनता।'

प्राण बोला, 'हाँ भाई ! वह तो जैसा हुआ सभी जानते हैं, पर उसकी चर्चा किससे करें।'

और फिर मुड़कर राजसे, जो बुत बनी बैठी थी, कहा, 'अरे भई, चाय-वाय तो देखो।'

मित्र एकदम बोले, 'नहीं, नहीं। चायके लिए कष्ट न करें। इस वक्त तो एक बहुत आवश्यक कामसे आये हैं।'

प्राण बोला, 'कहिये।'

मित्र कुछ झिझके। प्राणने कहा, 'शायद एकान्त चाहिये।'

'जी।'

'आइये उधर बैठेंगे।'

वह उठा और कोनेमें पड़ी हुई एक कुरसीपर जा बैठा। मित्र भी पासकी दूसरी कुर्सीपर बैठ गये। एक क्षण रुककर बोले, 'क्षमा कीजिये, आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। है तो वह बेहूदा ही !'

'कोई बात नहीं', प्राण मुस्कराया, 'प्रश्न पूछना कभी बेहूदा नहीं होता।'

मित्रने एकदम सक्षपकाकर पूछा, 'दिलीप आपका लड़का है?'

प्राणका हृदय धक-धक कर उठा। ओह, यह बात थी। उसने अपनेको मँभाला और निश्चित स्वरमें कहा, 'जी हाँ! आज तो वह मेरा ही है।'

'आज तो?'

'जी हाँ, वह सदा मेरा नहीं था।'

'सच?'

'जी हाँ ! काफ़लेके साथ लौटते हुए राजने उसे पाया था।'

'क्या', मित्र हर्ष और अचरजसे काँप उठे, 'कहाँ पाया था?'

'लाहौरके पास एक ट्रेनमें।'

'प्राण बाबू, प्राण बाबू ! आप नहीं जानते यह बच्चा मेरी बहनका है। मैं उसे देखते ही पहचान गया था। ओह प्राण बाबू ! आप नहीं जानते, उनकी क्या हालत हुई'—और उछलकर उसने पुकारा, 'भाई साहब, भाई साहब ! रमेश मिल गया।'

और फिर प्राणको देखकर कहा, 'आप प्रमाण चाहते हैं ? मेरे पास उसके फोटो हैं। यह देखिये।'

और उसने जेबसे फोटोपर फोटो निकालकर सकपकाये हुए प्राणको चकित कर दिया। क्षण भरमें वहाँका दृश्य पलट गया। रमेशके माता-पिता पागल हो उठे। माँने तड़पकर कहा, 'कहाँ है ! रमेश कहाँ है ?'

राजने कुछ नहीं देखा। वह शीघ्रतासे अन्दर गई और दिलीपको छातीसे चिपकाकर फफक उठी। दूसरे ही क्षण वे सब उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये ! वे सब उद्विग्न थे, पर प्राण अब भी शान्त था। उसने धीरेसे राजसे कहा, 'राज, दिलीपकी माँ आ गई है।' 'उसकी माँ'—राजने फफकते हुए कहा, 'तुम सब चले जाओ। तुम यहाँ क्यों आये ? दिलीप मेरा है। मैं उसकी माँ हूँ।'

दिलीप (रमेश)की माँ रोती हुई बोली, 'सचमुच ! माँ तुम्हीं हो। तुमने उसे पुनर्जन्म दिया है।'

सुनकर राज काँप उठी। उसने दृष्टि उठाकर पहली बार उस माँको देखा और देखती रह गई। तबतक दिलीप जाग चुका था और उस चिल्ल-पाँमें धवराकर, किसी भी शर्तपर, राजकी गोदसे उतरनेको तैयार नहीं था। वह नवागन्तुकोंको देखता और चीख पड़ता।

साल भर पहले जब राजने उसे पाया था, तब वह पूरे वर्षका भी नहीं था। उससमय सब लोग प्राणोंके भयसे भाग रहे थे। मनुष्य मनुष्यका रक्त उलीचनेमें होड़ ले रहा था। नारीका सम्मान और शिशुका शैशव सब पराभूत हो चुके थे। मनुष्यका मनुष्यत्व ही नष्ट हो चुका था। भागते मनुष्योंपर राहके मनुष्य टूट पड़ते और लाशोंका ढेर लगा देते; रक्त बहता और उसके साथ ही बह जाती मानवता। ऐसी ही एक ट्रेनमें राज भी थी। हमला होनेपर जब वह संज्ञा-हीनसी अज्ञात दिशाकी ओर भागी, तो एक बर्थके नीचेसे अपने सामानके भुलावेमें वह जो कुछ उठाकर ले गई, वही बादमें दिलीप बन गया। यह एक अद्भुत बात

थी। अपनी अन्तिम सम्पत्ति खोकर उसने एक शिशुको पाया, जो उस रक्त-वर्षाके बीच बेखबर सोया हुआ था। उसने कैम्पमें आकर जब उस बालकको देखा तो अनायास ही उसके मुँहसे निकला—‘मेरे पति और मेरे दोनों बच्चोंको मुझसे छीनकर आपने यह कैसा दान दिया है मेरे प्रभु !’ लेकिन तब अधिक सोचनेका अवसर नहीं था। वह भारतकी ओर दौड़ी। मार्गमें वे अवसर आये, जब उसे अपने और उस बच्चेके बीच किसी एकको चुनना था, पर हर बार वह प्राणोंपर खेलकर उसे बचा लेनेमें सफल हुई। मौत भी जिस बालकको उससे छीननेमें असफल रही, वही अब कुछ क्षणोंमें उससे अलग हो जायेगा, क्योंकि वह उसका नहीं था, क्योंकि वह उसकी माँ नहीं थी। “नहीं, नहीं”,—“दिलीप उसका है।” और वह फफक-फफककर रोने लगी। प्राणने और भी पास आकर धीरेसे शान्त स्वरमें कहा, ‘राज ! माँ बननेसे भी एक बड़ा सौभाग्य होता है और वह है किसीके मातृत्वकी रक्षा।’

‘नहीं, नहीं’,—वह उसीतरह बोली, ‘मैं वह सौभाग्य नहीं चाहती’।

‘सौभाग्य तुम्हारे न चाहनेसे वापस नहीं लौट सकता राज, पर हाँ ! तुम चाहो तो सौभाग्यको दुर्भाग्यमें पलट सकती हो।’

राज सहसा प्राणकी ओर देखकर बोली—‘तुम कहते हो मैं इसे दे दूँ ?’

‘मैं कुछ नहीं कहता। वह उन्हींका है। तुम उनका खोया लाल उन्हें सौंप रही हो इस कर्तव्यमें जो सुख है, उससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा ? उस सौभाग्यको क्षणिक कायरताके वश होकर ठुकराओ नहीं राज !’

राजने एक बार और प्राणकी ओर देखा; फिर धीरे-धीरे अपने हाथ आगे बढ़ाये और दिलीपको उसकी माँकी गोदीमें दे दिया। उसके हाथ काँप रहे थे, ओंठ काँप रहे थे। जैसे ही दिलीपको उसकी माँने छातीसे

चिपकाया, राजने रोते हुए चिल्लाकर कहा, 'जाओ ! तुम सब चले जाओ, अभी इसी वक्त ।'

प्राणने कोई प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि जीनेतक उनको छोड़ने आया । उन लोगोंने बहुत कुछ कहना चाहा, पर उसने कुछ नहीं सुना । बोला, 'मुझे विश्वास है, बच्चा आपका है । वह आपको मिल गया । आपका-सा सौभाग्य सबको प्राप्त हो, लेकिन मेरी एक प्रार्थना है ।'

'जो कहिये । हमे आपकी हर बात स्वीकार है ।'

प्राणने बिना सुने कहा, 'कृपा कर अब आप लोग इधर न आयें ।' वे चौंके, 'क्या ?'

'जी, आपकी बड़ी कृपा होगी ।'

'पर सुनिये तो . . . ।'

प्राणने कुछ न सुना और अगले दिन मसूरीको प्रणाम करके आगे बढ़ गया । राजकी अवस्था मुरदे जैसी थी । वह पीली पड़ गई थी । उसके नेत्र सूज गये थे । प्राणने उस क्षणके बाद फिर एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा, जो उसे दिलीपकी याद दिला सके, लेकिन याद क्या दिलानेसे आती है । वह तो अन्तरमें मोतेकी भाँति उफनती है; राजके अन्तरमें भी उफनती रही । उसी उफानको शान्त करनेके लिए प्राण मसूरीसे लखनऊ आया । वहाँसे कलकत्ता और फिर मद्रास होता हुआ दिल्ली लौट आया । दिन बीत गये, महीने भी आये और चले गये । समयकी सहायता पाकर राज दिलीपको भूलने लगी । प्राणने फिर व्यापारमें ध्यान लगाया, पर साथ ही उसके मनमें एक आकांक्षा बनी रही । वह राजको फिर शिशुकी अठखेलियोंमें खोया देखना चाहता था । वह कई बार अनाथालय और शिशु-गृह गया, पर किसी बच्चेको घर न ला सका । जैसे ही वह आगे बढ़ता कोई अन्दरसे बोल उठता, 'न जाने कौन कब आकर इसका भी माँ-बाप होनेका दावा कर बैठे ।'

और वह लौट आता । इसके अलावा बच्चेकी चर्चा चलनेपर राजको

दुख होता था। कभी-कभी तो दौरा भी पड़ जाता था। वह अब एकान्त-प्रिय, सुस्त और अन्तर्मुखी हो चली थी। प्राण जानता था कि यह प्रभाव अस्थायी है। अन्तरका आवेग इस आवरणको बहुत शीघ्र उतार फेंकेगा। नारीकी जड़ें जहाँ हैं, उसके विपरीत फल कहाँ प्रगट हो सकता है? वह एक दिन किसी बच्चेको घर ले आवेगा और कौन जानता है तब तक. . .।

वह इसी उधेड़बुनमें था कि एक दिन उसने हॉटलसे लौटते हुए देखा कि एक व्यक्ति उन्हें घूर-घूरकर देख रहा है। उसने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। लोग देखा ही करते हैं। आजके युगका यह फ़ैशन है। उसके पड़ौसमें एक सज्जन रहते हैं। जब-तब अवसर पाकर छतकी दीवारसे झाँककर राजको देखा करते हैं। राजने कई बार उनकी इस हरकतकी शिकायत भी की थी। लेकिन अगले दिन, फिर तीसरे दिन, चौथे दिन यहाँतक कि प्रतिदिन वही व्यक्ति उसी तरह उनका पीछा करने लगा। अब प्राणको यह बुरा लगा। उसने समझा इसमें कोई रहस्य है क्योंकि वह व्यक्ति राजके सामने कभी नहीं पड़ता था और न राजने अबतक उसे देखा था। कम-से-कम वह इस बातको नहीं जानता था। यही सब कुछ मोचकर प्राणने उस व्यक्तिसे मिलना चाहा। एक दिन वह अकेला ही हॉटल आया और उसने उस व्यक्तिको पूर्वतः अपने स्थानपर देखा प्राणने सीधे जाकर उसके कंधेपर हाथ रख दिया। वह व्यक्ति एकदम काँप उठा, बोला, 'क्या, क्या है?'

प्राणने शान्त भावसे कहा, 'यही तो मैं आपसे पूछने आया हूँ।'

अचरजसे वह व्यक्ति जिस तरह काँपा, उसी तरह एकदम दृढ़ होकर बोला, 'तो आप समझ गये। क्षमा करिये मैं स्वयं आपसे बात करने-वाला था।'

'अबतक क्यों नहीं कर सके?'

उसने उसी तरह कहा, 'क्योंकि मैं पूर्ण विश्वस्त नहीं था और आप जानते हैं आजके युगमें ऐसी-वैसी बातें करना मौतको बुलाना है।'

प्राण उसकी वाणीसे आश्वस्त तो हुआ, पर उसका हृदय धक-धक कर उठा। उसने कहा, 'आप ठीक कहते हैं, पर अब आप निस्संकोच होकर जो चाहे कह सकते हैं।'

वह बोला, 'बात ऐसी ही है। आप बुरा न मानिये।'

'आप कहिये।'

वह तनिक झिझका, फिर शीघ्रतासे बोला, 'आपके साथ जो नारी आती है, वह आपकी कौन है?'

'आपका मतलब?'

'जी....।'

प्राण सँभला, बोला—'वह मेरी सब कुछ है और कुछ भी नहीं है।'

'जी, मैं पूछता था क्या वे आपकी पत्नी है?'

'मेरी पत्नी....?'

'जी।'

'नहीं।'

'नहीं?'

'जी हाँ।'

'आप सच कह रहे हैं?—'उसकी वाणीमें अचरज ही नहीं हर्ष भी था।

'जी हाँ! मैं सच कहता हूँ। अग्निको साक्षी करके मैंने कभी उससे विवाह नहीं किया।'

'फिर?'

'लाहौरसे जब भागा था, तब मार्गमें एक शिशुके साथ उसे मैंने संज्ञाहीन अवस्थामें एक खेतमें पाया था।'

'तब आप उसे अपने साथ ले आये।'

'जी हाँ।'

'फिर क्या हुआ?'

‘होता क्या ? तबसे वह मेरे साथ है ।’

‘लोग उसे आपकी पत्नी समझते हैं ।’

‘यह तो स्वाभाविक है । पुरुषके साथ इस तरह जो नारी रहती है, वह पत्नी ही होगी; इससे आगे आजका आदमी क्या सोच सकता है, पर आप ये सब बातें क्यों पूछते हैं ? क्या आप उसे जानते हैं ?’

‘जी’, वह काँपा, बोला, ‘वह... वह मेरी पत्नी है ।’

‘आपकी पत्नी’—प्राण सिंह उठा ।

‘जी ।’

‘और आप उसे चोरोंकी भाँति ताका करते हैं ?’

अब उसका मुँह पीला पड़ गया और नेत्र भुक गये, पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या हुआ । उसने एक झटकेके साथ गरदन ऊँची की, बोला, ‘उसका एक कारण है । मैं उसे छिपाऊँगा नहीं । उन मुसीबतके क्षणोंमें मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका था ।’

प्राण न जाने क्यों हँस पड़ा, ‘छोड़कर भाग गये थे । अक्सर ऐसा हुआ है ।’

‘भागा तो नहीं था, पर प्राणोंपर खेलकर उसतक आ नहीं सका था ।’

‘वह जानती है ?’

‘नहीं कह सकता ।’

‘आपको भय है कि वह जानती होगी ?’

‘भय तो नहीं, पर ग्लानि अवश्य है ।’

प्राणके भीतरके मनको जैसे कोई धीरे-धीरे छुरीसे चीरने लगा हो, पर ऊपरसे वह उसीतरह शान्त स्वरमें बोला, ‘तो राज आपकी पत्नी है, सच ?’

उस व्यक्तित्वने रूँधे कण्ठसे कहा, ‘कैसे कहूँ । मैंने उसको ढूँढनेके लिए क्या नहीं किया ? सभी कैम्पोंमें, रेडियो स्टेशनपर, पुलिसमें—सभी जगह उसकी रिपोर्ट मौजूद है ।’

प्राण बोला, 'आप उसे लेजानेको तैयार हैं?'

वह भिन्नका नहीं, कहा, 'जी इसीलिए तो रुका हूँ।'

'आपको किसी प्रकारका संकोच नहीं?'

'संकोच'—उसने कहा, 'संकोच करके मैं अपने पापोंको और नहीं बढ़ाना चाहता। महात्माजी...।'

'तो फिर आइये'—प्राणने शीघ्रतासे उसकी बात काटते हुए कहा, 'मेरे साथ चलिये।'

'अभी?'

'इसी वक्त। आप कहाँ रहने हैं?'

'जालंधर।'

'काम करते हैं?'

'जी हाँ। मुझे स्कूलमें नौकरी मिल गई है?'

'आपके बच्चे तो दोनों मारे गये थे?'

'जी, एक बच गया था।'

'मच?'

'जी, वह मेरे पाम है।'

प्राणका मन अचानक हर्षमे खिल उठा। शीघ्रतासे बोला, 'तो सुनिये, राज घरपर है। आप उसे अपने साथ ले जाइये। मैं पत्र लिखे देता हूँ।'

'आप नहीं चलेंगे?'

'जी नहीं! मैं बाहर जा रहा हूँ। लखनऊमें एक आवश्यक कार्य है। तीन-चार दिनमें लौटूंगा, आप उसे ले जाइयेगा। कहना उसका पुत्र जीवित है। मुझे देखकर वह दुखी होगी। समझे न।'

'समझ गया।'

'आप भाग्यवान हैं। मैं आपको बधाई देता हूँ और आपके साहसकी प्रशंसा करता हूँ।'

वह व्यक्ति कृतज्ञ, अनुगृहीत कुछ जवाब दे कि प्राणने एक परचा उसके हाथमें थमाया और बिजलीकी भाँति गायब हो गया।

पत्रमें लिखा था :

राज !

बहादुर लोग गलती कर सकते हैं, पर धोखा देना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है। फिर भी दो शब्द मुझे तुम्हारे पास लानेको पर्याप्त है। प्रयत्न करना उनकी आवश्यकता न पड़े। मुझे जानती हो, मरनेतक जीता रहूँगा,

प्राण।

यह व्यक्ति ठगा-सा बहुत देरतक वहीं खड़ा रहा। कंगालकी फटी भोलीमें कोई रत्न डाल गया हो, ऐसी उसकी हालत थी, पर जन्मसे तो वह कंगाल नहीं था। इसलिए साहसने उसे धोखा नहीं दिया और वह प्राणके बताये मार्गपर चल पड़ा।

पूरे पन्द्रह दिन बाद प्राण लौटा। जबतक उसने द्वारको नहीं देखा, उसके प्राण सक्तेमें आये रहे। जब देखा कि द्वार बन्द है और उसका चिर परिचित ताला लगा है तो उसके प्राण तेजीसे काँपे। किवाड़ खोलकर वह ऊपर चढ़ता ही चला गया। आगे कुछ नहीं देखा। देख ही नहीं सका। पालना पड़ा था, उससे ठोकर लगी और वह पलंगकी पट्टीसे जा टकराया। मुखसे एक आह निकली। माथेमें दर्दका अनुभव हुआ। खून निकल आया था। उसने हाथसे चोटको सहलाया। आँखोंने तभी खून देखा, फिर पालना देखा, फिर पलंग देखा, फिर घर देखा। सब कहीं मौनका राज्य था। प्रत्येक वस्तु पूर्वतः अपने स्थानपर सुरक्षित थी। प्राणके मनमें उठा, पुकारें—राज !

पर वह काँपा—राज कहाँ है ? राज तो चली गई। राजका पति आया था। राजका पुत्र जीवित है। सुख भी कैसा छल करता है। जा-

जाकर लौट आता है। राजको पति मिला, पुत्र मिला। दिलीपको माँ-बाप मिले। और मुझे....मुझे क्या मिला....?

उसने गरदनको जोरसे झटका दिया। फुस-फुसाया—‘ओह में कायर हो चला। मुझे तो वह मिला, जो किसीको नहीं मिला।’

तभी सहसा पासकी छतपर खटखट हुई। राजको घूरनेवाले पड़ौसी-ने उधर भाँका। प्राणको देखा, तो गम्भीर होकर बोला—‘आप आ गये?’

‘जी हाँ।’

‘कहाँ चले गये थे?’

‘लखनऊ।’

‘बहुत आवश्यक कार्य था क्या? आपके पीछे तो मुझे खेद है....।’

‘जी क्या?’

‘आपकी पत्नी....।’

‘मेरी पत्नी?’

‘जी, मुझे डर है वह किसीके साथ चली गई।’

‘चली गई? सच! आपने देखा था?’

‘प्राण बाबू! मैं तो पहले ही जानता था। उसका व्यवहार ऐसा ही था। कोई पन्द्रह दिन हुए आपके पीछे एक व्यक्ति आया था। पहले तो देखते ही आपकी पत्नीने उसे डाँटा।’

‘आपने सुना?’

‘जी हाँ। मैं यहीं था। शोर सुनकर देखा, वह क्रुद्ध होकर चिल्ला रही है—‘जाओ, चले जाओ। तुम्हें किसने बुलाया था? तुम क्यों आये? मैं उन्हें पुकारती हूँ?’

‘सच, ऐसा कहा?’

‘जी हाँ।’

‘फिर?’

‘फिर क्या प्राण बाबू ! वे बाबू साहब बड़े ढीठ निकले । गये नहीं । एक पत्र आपकी पत्नीको दिया, फिर हाथ जोड़े । पैरोंमें पड़ गये ।’

‘क्या यह सब आपने देखा था ?’

‘जी हाँ, बिलकुल साफ़ देखा था ।’

‘फिर ?’

‘फिर वे पैरोंमें पड़ गये, पर आपकी पत्नी रोती रही । तभी अचानक उसने न जाने क्या कहा । वह काँपकर वहीं गिर पड़ी । फिर तो उसने, क्या कहूँ, लाज लगती है । जीमें तो आया कि कूदकर उसका गला घोट दूँ, पर मैं रुक गया । दूसरेका मामला है । आप आते ही होंगे । राततक राह देखी, पर आप नहीं आये । सवेरे उठकर देखा, तो वे दोनों ला पता थे !’

‘उम्मी रात चले गये ?’

‘जी हाँ ।’

प्राणने साँस खींची, ‘तो वे सच्चे थे; बिलकुल सच्चे ।’

पड़ौसीने कहा, ‘क्या ?’

‘जी हाँ । उन्होंने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था ।’

और फिर अचरजसे बुत बने पड़ौसीकी ओर देखकर बोला—‘वे भाई, राजके पति थे ।’

‘राजके पति’ !—चकित पड़ौसी और भी अचकचाया ।

‘जी हाँ ! पंजाबसे भागते हुए हम लोगोंके साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही हैं । राजको भी मैंने लाशोंके ढेरमेंसे उठाया था । वह तब जानती थी कि उसके पति मर गये हैं, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी ।’

पड़ौसी अभीतक अचकचा रहे थे, बोले, ‘आपके साथ रहनेपर भी उन्हें राजको ले जानेमें संकोच नहीं हुआ ?’

प्राणने कहा, ‘सो तो आपने देखा ही था ।’

वह क्या कहे; फिर भी ठगा-सा बोला, 'आपका अपना परिवार कहाँ है ?'

'भागते हुए मेरी पत्नी और माँ-बाप दरियामें बह गये थे। बच्चे एक-एक करके रास्तेमें सो गये।'

'भाई साहब'—पड़ौसी जैसे चीख पड़ेंगे, पर वे बोल भी न सके। मुँह उनका खुले-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई !

१९४६]



मार्गमें

रात्रिका पहला पहर था। जंगलमें ठंडी हवा फराटिसे चल रही थी। उसीसे उलझकर पत्ते तेज़ीसे फड़फड़ाते और फिर हिलते रहते; वैसे चारों ओर सन्नाटा था। चाँद उग आया था और शरतकालीन आस्मान नीले प्रकाशसे भरा पड़ा था। धरतीकी छातीपर चाँदनी इस तरह चिपक रही थी, जैसे सुकुमार शिशु माँकी छातीसे चिपककर मुस्करा उठता है। ऐसे समयमें एक युवक खेतोंके बीचसे जाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी पगदंडीपर तेज़ीसे आगे बढ़ रहा था। उसे वातावरणमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। शीतसे उसकी नसें तड़कने लगी थीं और वह थककर चूर हो रहा था। उसके कंधोंपर बँधे हुए दोनों फ़ौजी थैले उसकी छातीपर दो बड़े-बड़े पत्थरोंकी तरह मालूम हो रहे थे। इसीलिए वह रह-रहकर सामने देखने लगता था। वहाँ दरस्तोंके भुरमुटके पीछे गाँवके कच्चे मकान थे, जो अभी नज़रसे दूर थे और इसीलिए उसके दर्दमें कोई कमी नहीं पड़ी थी। इसका एक और भी कारण था। वह इस गाँवमें किसीको नहीं जानता था। वह किसके पास जाकर ठहरेगा ? तब दुनिया बड़ी तेज़ीसे पलट रही थी। अन्न-वस्त्रकी समस्याने आचरण-व्यवहारके मूल्योंमें गहरा परिवर्तन कर दिया था।

सहसा वह चौंक उठा। एक लड़खड़ाती, परन्तु तीखी आवाज़ उसके कानोंसे आकर टकराई। वह आवाज़ गालियों और भिड़कियोंसे भरी हुई थी और कहीं पाससे आ रही थी। उसने दृष्टि उठाकर देखा—बाईं ओर अरहरके खेतसे एक बुढ़िया एक लड़केको घसीटती हुई ला रही है। वह इतनी तेज़ीसे गालियाँ दे रही है कि बातका समझना असम्भव है। उसका मुँह भुर्रियों और गड़बड़ोंसे भरा हुआ है और चाँदनी

रातमें उसकी हड्डियाँ साफ़-साफ़ नज़र आ रही हैं। उसके वस्त्र फटे हुए हैं और पैर नंगे। इसीतरह वह लड़का बुरी तरह चीख रहा है। उसके शरीरपर वस्त्र है, परन्तु फिर भी वह गन्दा और दयनीय लगता है।

इन्हें देखकर वह ठिठक गया और उसे देखकर बुढ़िया एकदम चुप हो गई। एक क्षण दोनोंने एक-दूसरेको देखा और फिर बुढ़िया बोली,

“परदेसी हो ?”

“हाँ।”

“किसके यहाँ जाना है ?”

उसने जवाब दिया, “मुझे आगे जाना है। मैं यहाँ किसीको नहीं जानता। रातभर पंचायत-घरमें ठहरूँगा।” और फिर बच्चेकी ओर मुड़कर कहा, “यह क्यों रोता है ?”

बुढ़िया गुस्सेसे भरकर बोली—“इसकी तकदीरमें रोना लिखा है, इसलिए रोता है। इतनी रात हो गई और ऐसी हवा चल रही है, पर यह घर जानेका नाम नहीं लेता। डर भी नहीं लगता मरेको। किसी दिन भेड़िया उठाकर ले गया तो ? और ले जाये, मुझे क्या पड़ी है ? मेरी जान बचेगी। इस उमरमें परमात्माने यह बला मेरे पीछे लगा दी है। उठाना भी तो नहीं इमे। भला यह भी कोई बात है, रोज़-रोज़ यहाँ आओ ! इतनी सरदी, जंगल और इतनी रात ! घरमें दस काम है। कौन बैठा है जो पो कर खिला देगा। दर-दर भीख माँगता फिरेगा और आजकल तो कोई भीख भी नहीं देता।”

बुढ़ियाकी वाणीका सतत प्रवाह बन्द होनेवाला नहीं था। बालकका रोना अलबत्ता अब मिसकियोंमें पलट चुका था। उसने एक बार फिर उन्हें देखा। कहा, “बड़ा निडर लड़का है ! क्या उमर होगी इसकी ?”

“होगा पाँचेक सालका। इसकी माँ जब मरी थी तो तीन सालका था। उसे गोली खाये डेढ़ बरस हो गया।”

उसने अचकचाकर पूछा, “इसकी माँने गोली खाई थी, कैसे ?”

“कैसे क्या ? खेतमें घास छील रही थी। गोली आकर लग गई, उसे ही क्या, जाने किस-किसके लगी थी, पर इसकी माँने तो पानी भी नहीं माँगा। फ़ौज क्या कम थी। सारे गाँवमें भर गई थी। जिसे चाहा लूटा, जिसे चाहा मार डाला। जवान बूढ़-बेटी तो उनकी आँखोंका काँटा बन गई थी। पूछो मत बेटा...और बेटा, गाँववाले क्या कम थे। उन्होंने भी सब तार काट दिये, खम्भे उखाड़ डाले और जो सरकारी आदमी थे, सबको मारकर भगा दिया। रेलतक छीन ली थी, कहते थे—गांधी बाबाका हुक्म है। अंग्रेजी राज मिट चुका है।—मेरा बेटा भी उन्हींमें था।”

“तुम्हारा बेटा ?”

“हाँ, मेरा बेटा भी गोलीसे मारा गया। उसने तार काटे थे। न जाने दिमागमें क्या समा गया था। उछल-उछलकर इन तारोंमें भूलकर जाता था। जितने जवान छोकरे थे, बस उनका यही पेशा था—तार काटना, खम्भे उखाड़ना, पुल तोड़ना और बस इसीमें एक दिन गोली खाकर मर गया। भागा भी तो नहीं। कई छोकरे भागकर बच गये, पर वह...।”

कहते-कहते बुढ़ियाकी आँखें भर आई, गला रुँध गया। उसने बच्चे-को अपने पास खींच लिया। फिर बोली, “भला कोई बात है। इसकी माँ बेचारी क्या इन कामोंको जानती थी, बेचारी गरीब औरत घास खोदकर पेट पालती थी। एक यही लड़का उसके था। बाप पहिले ही मर चुका था।

उसका मन एक गहरे विषाद और एक गहरी करुणासे भर रहा था। उसकी थकान मिट गई थी। कम-से-कम उसका ध्यान अपनी ओर नहीं था। वह तीव्रतासे बुढ़िया और उसके बच्चेकी बात सोचने लगा था। उसने कहा, “तो इसका बाप भी मर गया। उसे भी गोली लगी थी।”

“नहीं बेटा। वह तो बीमार था। गोली इसकी माँको लगी थी।”

वह अचकचाया, “पर तुमने कहा था, तुम्हारे बेटेको गोली लगी थी।”

“हाँ, मेरे बेटेको गोली लगी थी, पर इसका बाप बीमार था।”

“इसका बाप तुम्हारा बेटा नहीं था?”

“नहीं।”

“यह तुम्हारा पोता नहीं है?”

“नहीं।”

गाँव पास आ गया था और हवाकी तेजी साँय-साँयमें पलटने लगी थी। उसको यह कहानी बड़ी रहस्यमय लगी। बुढ़िया कहती रही—
“इसका बाप बहुत बीमार रहकर मर गया। इसकी माँ घास छीलने गई, तो फिर नहीं लौटी। फ़ौजने उसे गोलीसे मार डाला। मेरा बेटा भी तभी मरा था। कई दिन बाद जब मैं कस्बेसे लौटी, तो ऐसी ही रात पड़ गई थी। उस खेतके पास आकर सुना—कोई सुवक-सुवककर रो रहा है। एक बार तो मैं डर गई। फिर मुड़कर देखा, तो यह लड़का बैठा था। इसके बदनपर कोई कपड़ा नहीं था और रो-रोकर इसने आँखें सुजा ली थीं। मुझसे देखा नहीं गया।”

बीचमें टोक कर वह बोल उठा, “और तब तुम उसे अपने साथ ले गई?”

“और क्या करती! मेरा बेटा मर गया था और मैं अकेली थी। बेटेके पीछे मेरा मन रो-रो पड़ता है, पर जब इसे देखती हूँ, तो जैसे कोई घावपर मरहम लगा देता है। लेकिन बेटे, डेढ़ साल हो गया, यह इस जगहको नहीं भूला। जैसे ही साँझ होती है, रोज़ यहाँ आ जाता है।”

“रोज़?”

“हाँ।”

“रोता है?”

“पहिले रोता था, पर अब चुपचाप बैठा रहता है।”

“बैसे तुमसे हिल गया है?”

“हाँ। दिनभर मेरे पास रहता है।”

“और रहेगा भी?”

बुढ़ियाने अचरजसे उसे देखा, “रहेगा नहीं तो कहाँ जायगा? कौन इसे पालेगा? बेचारा मासूम बच्चा। उन्होंने इसकी माँको मार डाला और मेरे बेटेको खा गये। इसे माँ चाहिए और मुझे...।”

वे अब गाँवमें प्रवेश कर चुके थे और कुत्ते भूँकने लगे थे। बुढ़िया यहीं रुक गई और अपनी ही बात काटकर बोली, “यह मेरी भोंपड़ी है। रात यहीं ठहर जा। अब कहाँ जायेगा।”

उसने एक बार उस घरको देखा, जो बुढ़ियाकी तरह थका हुआ और कंकाल था और फिर बिना कुछ कहे, उसके पीछे पीछे अन्दर चला गया। अन्दर जा रहा था, तो सहसा एक बार मनमें उठा—क्या सचमुच वह जाग रहा है अथवा यह कोई स्वप्न है!

१९४८]



पर्वतसे भी ऊँचा

विष्णुप्रयागकी थका देनेवाली उतराई और चढ़ाईके बाद जब मैं घाटीमें बसी बल्दौड़ा चट्टीपर पहुँचा, तभी वह भी बद्रीनाथसे लौटता हुआ वहाँ आकर रुका। उस समय दिनके ग्यारह बज चुके थे और आसमान साफ़ था। मेरे सामने चारों ओर ऊँचे-ऊँचे भूधर रातकी शुभ्र-स्वच्छ हिमको मस्तकपर धारण किये, अनन्त सम्पदाके गर्वोन्मत्त स्वामीकी तरह, अहंकारकी मुस्कानसे सज्जित, अनन्तकी ओर निहार रहे थे। नीचे अलख जगाती हुई हर्षोन्मत्त अलखनन्दा, विष्णुगंगाके आत्मसमर्पणको स्वीकार करने पागलोंकी भाँति भागी जा रही थी। प्रकृतिकी इस विशालता और महानताने तब मुझे अभिभूत कर लिया। मैं उस क्षण सब कुछ भूलकर अपने बहुमूल्य दूरवीक्षण यंत्र द्वारा देवदार और ओकके वृक्षोंके परे, सुगन्ध और शक्तिको नाभिमें छिपाये रखनेवाले कस्तूराको खोजने लगा। कुछ क्षण पूर्व दाई (बोभा ढोनेवाला)ने मुझे बताया था— 'भालू और कस्तूरा, और कभी-कभी बाघ भी उमपार नीचेतक उतर आते हैं। तब साहब लोग उनका शिकार करते हैं।'

यद्यपि तब उनके आनेकी कोई संभावना नहीं थी, तो भी मुझे लगा कि हो सकता है वृक्षोंकी छायामें कोई कस्तूरा, मेरी तरह, साँस लेने रुक गया हो, पर मैं यंत्रका उपयोग पूरी तरह कर भी न पाया था कि वह तंग घाटी अनेक व्यक्तियोंके मुक्त अट्टहाससे गूँज उठी। चकित होकर मैंने उस दिशामें देखा। एक दाईने खिलखिलाते हुए कहा, 'सुना बाबूजी !'

‘क्या ?’

‘यह बाबा कहते हैं, दर्शन तो हो गये, पर अब घर कैसे पहुँचें ?’

तब मेरी दृष्टि हँसीके पात्र उस बाबापर गई। देखा—एक क्षीणकाय

वृद्ध है, जिसका पतला मुख क्षीरके समान श्वेत बालोंसे ढका हुआ है परन्तु उनके बीचसे भाँकते हुए उसके दोनों नयन अमित विश्वाससे पूर्ण हैं। उसके पैर लड़खड़ाते हैं। उसने एक मैली धोती और कन्धेकी ओर लगनेवाले बटनोंका एक कुरता पहना है, जिसके भीतरसे निकलता हुआ जनेऊ उसके द्विजत्वका साक्षी है। उसकी कुल सम्पत्तिमें एक लाठी, एक कम्बल तथा एक वैसी ही मैली धोतीकी गणना की जा सकती है।

मे अपना निरीक्षण पूर्ण करूँ, इसमें पूर्व चट्टीके एक दूकानदारने पूछा।
'क्यों बाबा, क्या बात है?'

बाबाने उत्तर दिया, 'भूखा हूँ, चला नहीं जाता।'

'भूखे हो तो रोटी बना लो।'

'कैसे बना लूँ?'

'क्यों? आँटमें कुछ नहीं है?'

बाबाने नहीं सुना। जान पड़ा, वह बहरा भी है। प्रश्नके जोरसे दोहराये जानेपर उसने बताया कि उसके पास कुछ नहीं है।

'जान पड़ता है बाबा! तुम पंडोंके चक्करमें पड़ गये थे। बड़े दुष्ट होते हैं ये लोग। सब कुछ छीन लेते हैं।'

बाबाने वधिरके-से उसी शान्त भावसे कहा, 'पंडेने कुछ नहीं छीना। उसे तो बस आध सेर आटा दिया। मेरे पास वही था।'

फिर एक अट्टहास उठा जिसमें बाबाने भी योग दिया। एक दूकानदारको शायद बाबाके भोलपनपर कुछ दया आई। वह उठा और एक तसलेमें पावभर आटा और नमक ले आया। बोला, 'लो बाबा, आटा मथो और इस भट्टीपर रोटी बना लो। तब यह पड़ा है।'

उस क्षण बाबाके लड़खड़ाते हुए पैर और भी लड़खड़ाने लगे। नयनोंमें तरलता चमक उठी पर उसके बाद उसमें जो स्फूर्ति उमड़ी बहू अलखनन्दाके लिए स्पर्द्धाके योग्य हो सकती है। देखते-देखते उसने

आटा मथा और उसकी दो मोटी-मोटी रोटी बनाई। एक रोटीको तवेपर डाला, पलटा और फिर भट्टीमें डाल दिया।

आसपासके व्यक्तियोंने यह सब देखा और हँसते हुए कहा, 'बाबा ! ऐसे वेसबरे मत बनो। रोटी कच्ची है।'

बहरे बाबा और भी बहरे हो गये। कुछ ही क्षणोंमें उसने दोनों रोटियाँ भट्टीसे निकालकर फिर तसलेमें रखीं। फिर नलपर जाकर हाथ-पैर धोये और अन्तमें तसलेको लेकर, मेरे पास ही उस तंग और नीची काली दीवारोंवाली चट्टीमें आ बैठा। दो क्षण मौन रहा, संभवतः तब वह अन्नपूर्णाका स्मरण कर रहा था। उसकी मुद्रा बता रही थी कि क्षुधा उसे क्रूरतासे पुकार रही है और वे क्षण युग बन चले हैं। किसी तरह वे बीते और उसके बाद उसने कच्ची पक्की रोटीको मसल-मसलकर निगलना शुरू किया।

दाईने फिर मजाक करते हुए कहा, 'वेसबरे बाबा ! रोटी कच्ची है।'

बावाने अब मुस्कराकर गरदन उठाई और बोला, 'रोटियाँ कच्ची नहीं हैं। मैं तो घर भी ऐसी ही बनवाता हूँ। मेरे दाँत कहाँ हैं जिनसे करारी रोटियाँ चबाऊँ?'

बाबा, साग लोге ?' दूसरेने ठठोली की।

नमक पड़ा है।' बावाने शान्त भावसे हाथ हिलाते हुए कहा।

मैं अबतक चुप था, परन्तु मेरे नयन उसकी प्रत्येक गतिविधिका निरीक्षण कर रहे थे। वह कैसे तसलेमें पड़ी हुई रोटीको तोड़ता और निगलता, कैसे रोटीका कच्चा-पक्का ग्रास गलेमें अटकता हुआ उतरता, फिर कैसे वह हिचकी लेता।

किसीने फिर कहा, 'बाबा मरेगा।'

दूसरा कुछ घृणासे बोला, 'अरे, यूँ ही माँगता-खाता चला जायगा। ऐसे दम्भियोंको मौत नहीं आती।'

मैंने एक बार उस व्यक्तिको देखा और फिर बाबाको। कहनेवाला

सम्पन्न व्यक्ति था। वह उस श्रेणीका था, जो कहीं भी हो नियमसे दिनमें चार बार खाते हैं। जिनके आगे-पीछे नौकर घूमा करते हैं। उसपर भी वे श्रमके भारसे पिसते रहते हैं। उनके लिए बाबाकी जातिके नर-कंकाल, जो केवल श्रद्धाके बलपर बीहड़ वनों, विकराल नदियों और भयानक पथरीले मार्गोंको पार कर जाते हैं, दम्भी और पाखंडी ही होते हैं।

कुछ अच्छा नहीं लगा। क्या बाबा सचमुच दम्भी है ? मेरी दृष्टि फिर उसपर जा ठहरी। वह रोटियाँ निगलकर फिर नलकी ओर जा रहा था। उसके पैर पूर्वतः लड़खड़ा रहे थे। कौन जाने, वे कहां जवाब दे दें ? उसे अभी सैकड़ों मील चलना है। शीत बढ़ रहा है और गिरि-शृंगोंका हिम भी दिग्विजयके लिए निकल पड़ा है। परन्तु उसके पास कोई गरम कपड़ा नहीं है ? क्या इसके घर कोई नहीं है ? क्या कहीं दूर ग्राममें बैठी इसकी वृद्धा पत्नी, इसके पुत्र-पौत्र, कोई इसकी राह नहीं देखता, कोई इसे याद नहीं करता ? ... सहसा मुझे अपने घरकी याद आ गई। मेरी पत्नीने लिखा था—‘मुन्ना आपकी यादमें पागल हो रहा है। वह आपके कमरेमें जाता है और प्रत्येक वस्तुको उठाकर कहता है, यह मेरे पिताजीकी है; मुझे ताँगेमें बिठाकर पिताजीके पास ले चलो...।’

तब मेरे नयन भर आये और मेरे मनने कहा—इस बाबाकी भी कोई याद करता होगा। इसे घर पहुँचना ही चाहिए। मैं इसकी सहायता करूँगा। पंडे-पुजारियोंको पैसे देता हूँ। पत्थरके देवतापर चढ़ावे चढ़ाता हूँ, फिर हाड़-मांसके इस पुतलेको कैसे भुला दूँ ? मेरे जैसे भावुकोंकी भावनापर डकैती डालनेके लिए, जिन लोगोंने स्थान-स्थानपर मठ-मन्दिर और मूर्तियाँ स्थापित की हैं पाखंडी वे हैं, बाबा तो...!

तभी सहसा मेरा ध्यान भंग हो गया। देखा—बाबा मेरे सामनेवाली बेंचपर आ बैठा है और एक बीड़ी सुलगानेका प्रयत्न कर रहा है। मैंने यन्त्रवत् उससे पूछ लिया, ‘बाबा, कहाँ रहते हो?’

बाबाने बिना किसी झिझकके कहा, 'मुरादाबाद जिलेमें जूमना पाड़ा गाँव है।'

'बड़ी दूर है, कैसे जाओगे?'

'अजी, दूर क्या है? बस, हरिद्वार पहुँच जाऊँ, समझ लो, घर पहुँच गया। वहाँ मेरा भाई है।'

'सगा भाई?'

'अजी गाँवका है; पर, तुम जानो जी, परदेशमें गाँवका भाई सगा भाई है। फिर वहाँ बेटी है, बहन है। दिको बेंटीके यहाँ तो क्या जाऊँगा, पर बहनके तो जा सकता हूँ। और दिकोजी ! मैं तो धोखेमें आ गया। आती बेर कोटद्वारसे आया। हरिद्वारसे आता तो रुपये लेकर आता...।'

मैं न टोकता तो बाबा रुकनेवाला नहीं था। मैंने अनुभव किया कि, बाबाको किसी बातकी भी चिन्ता नहीं थी। वह १६५ मील दूर हरिद्वार जानेकी बात ऐसे कह रहा था जैसे हवाई जहाजसे जाना हो। मैंने टोककर पूछा, 'बाबा, घरपर कौन है?'

बाबा हँसा। बोला, 'सब है। दिको बाबूजी, बात यह हुई। अब तुमसे क्या छिपाना? उसने मना किया था और बेटेने भी। एक बेटा है सोलह सालका।'

'क्या करता है?'

'दो लड़कियाँ है, अपने घरकी है।'

एक अट्टहास उठा। बाबाने मेरा प्रश्न नहीं समझा। मैंने उसे फिर दोहराया। बाबा बोला, 'बाबूजी, घरपर एक भैंस है, दो गायें हैं। आपकी दयासे एक ग्याभन है। उसे क्या डर है? बस जी, उन्होंने बहुत मन्ना किया। उनकी मरजीसे आता तो रुपये देते, पर मैंने भी कैलाश जानेकी ठान ली थी। सो चल पड़ा। कह आया—भागवान, तेरा बस एक कम्बल लिये जा रहा हूँ।'

उसने बीड़ीका कश खींचा और एक क्षण रुककर कहा, 'और दिको

बाबूजी। बात तो उन्होंने भी ठीक ही कही थी। अगले महीने धेवतीकी शादी है। अब तुम जानो, भात दे लो या दर्शन कर लो। पर तुम जानो मुझे भी धुन थी। चल पड़ा।'

'तो क्या अभी कैलाश जाओगे?'

'अजी, चला तो कैलाशके लिए था, पर किसीने रास्ता नहीं बताया। नेपाल पहुँच जाता तो बाबूजी! कैलाश भी पहुँच जाता। दिको बाबूजी तुम्हें बताऊँ। मैंने प्रेमसागरमें पढ़ा था कि कैलाशमें शिवजी रहे हैं। बस, तभी उनके दर्शनोंकी ठान ली। मैंने सोचा, कैलाश भी द्वारकाकी तरह बसा होगा। बाबूजी, मैं द्वारका हो आया हूँ।'

कहते-कहते वह गर्वसे भर उठा। बोला, 'बाबूजी! द्वारकापुरीके चारों तरफ पानी ही पानी है, ऐसा पानी कि मुँहमें दो तो जानो नमक भर गया। पर वही द्वारकाकी भूमिमें कुण्ड है, उनका पानी मीठा है। उसकी मायाका पार नहीं, बाबूजी।'

मैं कुछ कहूँ उससे पहले ही वह फिर हँसा, 'पर अच्छा हुआ, यहाँ आ गया। बादल बनते देख लिये।'

'अच्छा!'

'हाँ जी, बस पहाड़ोंमेंसे धुआँ-सा उठता है और बादल बन जाते हैं। बड़ा अच्छा हुआ। भगवानके दर्शन हो गये। उसकी माया देख ली। अब तो चला ही जाऊँगा। और न भी जाऊँ तो क्या है!'

मैंने सहसा कहा, 'जाओगे कैसे, ऐसे ही माँगते-खाते?'

वह तनिक भी अप्रतिभ नहीं हुआ। उसी सरल स्वाभाविक विश्वाससे बोला, 'दिको बाबूजी! भूख लगती है तो सब माँगते हैं। प्रेमसागरमें मैंने पढ़ा है कि गाय चराते-चराते एक बार श्रीकृष्णजीको बड़ी भूख लगी। तब उन्होंने श्रीदामाको उस वनमें यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके पास भिक्षा माँगने भेजा था।'

और फिर उसने उसी मस्तीमें वह सारी कथा मुझे सुना दी, जिसमें

ब्राह्मणोंने तो भिक्षा नहीं दी थी, पर उनकी पत्नियोंने दी थी। सुनकर मुझे ऐसा लगा कि यह बाबा मुझसे कुछ माँगे, तो मैं भी इसे दूँ।

पर इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ, वह फिर बोल उठा, 'पर दिको बाबूजी ! भूख एक दिनकी हो या तीन दिनकी, आदमी खाता उतना ही है जितना उसका पेट हो।'

जैसे एक झटका लगा। मैंने दृष्टि उठाकर उसे देखा। वह अपनी भोली हँसी हँस रहा था। कह रहा था, 'ज्यादा कोई खा ही नहीं सके। जो खावे वह पाप करे। तुम जानो श्रीकृष्ण कोई भिखारी थोड़े थे, भगवान थे। उन्हें भी भूख लगी और उन्होंने भोजन माँगा, और कुछ नहीं माँगा।'

फिर एक झटका लगा। घृणा धुली, श्रद्धाने आदरको जन्म दिया। मेरा हाथ जो जेबसे रुपये निकालनेको बढ़ा था, एकाएक रुक गया। यह सब एक क्षणमें ही हो गया। दूसरे क्षण बाबाने बीड़ीका अन्तिम कश खींचा और लकड़ी उठाई। बोला, "अच्छा बाबूजी चलता हूँ। दिको, दर्शन तो हो ही गये। अब मर भी गया, तो कोई बात नहीं। पहुँच गया, तो फिर किसी दिन कैलाशको चल दूँगा।'

और वह चल पड़ा। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। वह उस दुर्गम पर्वत-मार्गपर एक-एक कदम रखता हुआ आगे और आगे बढ़ रहा था। आसपासके सभी व्यक्ति न जाने क्यों हँसना भूल गये थे। उसके उठते ही मैं भी उठा। दो कदम चला। चाहा पुरानूँ, 'ओ बाबा ! तुम्हें बहुत दूर जाना है, लो एक रुपया तो लेते जाओ। दो-चार दिनकी छुट्टी मिलेगी।'

पर तभी मेरी दृष्टि उसकी दूर होती हुई लड़खड़ाती आकृतिपर पड़ी। फिर सामनेके गगनचुम्बी पर्वत-शृंगको देखा। सहसा लगा— बाबा, उस शृंगके ऊपर होकर बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़ रहा है। मैंने आँखें मलीं, पर वह आकृति उसी तरह आगे बढ़ती चली गई। उसकी दृढ़ताने मेरी दया-भावनाको झकझोर दिया। उसके सरल पर अमित विश्वासके सामने गर्वोन्मत्त पर्वत और अभिमानिनी सरिताएँ नितान्त हेय जान पड़ीं।

मुझे उस क्षण लगा—उसे कुछ देनेका विचार करना उसे छोटा करनेकी स्पर्धा करना है। नहीं, नहीं ! मैं उसे क्या दे सकता हूँ ? मुझे तो उलटे उस महानके विश्वासके एक अंशकी आवश्यकता है कि जिसके सहारे मैं इन अलंघनीय घाटियोंको हँसते-हँसते पार कर जाऊँ। अगस्तके पास, पाण्डवोंके पास, स्कॉटके पास, कुक, लिविंगस्टन और कोलम्बसके पास यही विश्वास तो था !

तब मैंने हाथ जोड़कर मन ही मन उस महान्को प्रणाम किया और चुपचाप अपने स्थानपर लौट आया।

१९५०]



जजका फ़ैसला

सवेरा होनेपर हमारे मैकिण्ड क्लासके डिब्बेमें काफी यात्री आ गये थे । जब गाड़ी स्टेशनसे चली, तो वे सब मौन थे, परन्तु मार्गमें न जाने किस-किस सूत्रसे होकर उन सबमें वार्तालाप आरम्भ हो गया । विहटा स्टेशन गुजर जानेपर सहसा एक प्रौढ सज्जन, जिनकी सघन श्वेत भौंहे चमकीले नयनोंपर छज्जेकी तरह छा रही थी, बोले, “यहाँपर एक बार बहुत भयंकर दुर्घटना हो गई थी । रेल-यात्राके इतिहासमें कई कारणोंसे वह अभूतपूर्व रहेगी । उसमें सौसे भी ऊपर यात्रियोंकी जान गई थी और उसमें भी कुछ अधिक यात्री घायल हुए थे ।”

इसपर नदीकी तरह चर्चाने अपना मार्ग विलकुल बदल लिया । यद्यपि हममेंसे कोई भी यात्री उस दुर्घटनाका साक्षी नहीं था, तो भी कुछ लोगोंने दूसरी दुर्घटनाओंको देखा था और उनका वर्णन करते-करते वे ऐसे सहम रहे थे जैसे वे दुर्घटनाएँ अभी घट रही हों । एक स्वस्थ और लम्बे-तगड़े युवकने जब दो आपबीती रोमाचकारी घटनाएँ सुनाई, तो हम सब ठगेंसे उसे देखने रह गये । वह इंजीनियर था । एक बार वह चलती ट्रेनके नीचे आ गया था यद्यपि उसका शरीर ज़रूमोंसे भर गया था, तो भी उसके प्राण बच गये थे । कैसे बच गये थे, यह वह स्वयं भी नहीं जानता था । जब वह गिरा तो गाड़ी स्टेशनमें प्रवेश कर रही थी । उसकी गति निरन्तर धीमी हो चली थी और उसने डिब्बेमें चढ़नेवाली पैड़ीको कसकर पकड़ लिया था । लेकिन दूसरी घटना बहुत भयंकर थी । पौड़ी-गढ़वालसे कोटद्वार लौटते समय उसकी बस ढाई सौ फुट नीचे खड्डोंमें जा पड़ी थी । दस व्यक्ति वहीं मर गये थे और पाँच अस्पतालमें पहुँचकर चल बसे थे, पर वह कुछ ज़रूमोंके साथ बच गया था । कैसे

बच गया, यह पूछनेपर वह इतना ही कह सका, “बस बच गया। अब आपके सामने बैठा हूँ।”

उस युवककी यह कहानी सुनकर हम सबको रोमांच हो आया और हमने उसे बहुत-बहुत बधाई दी। पर उसने शरारतसे मुस्कराकर कहा, “दोस्तो ! मैंने मौतको ही नहीं छकाया, बीमा कम्पनीसे हर्जानेके रुपये भी वसूल किये।”

इसपर एक क़हक़हा लगा और जब वह शान्त हुआ तो दुर्घटनाकी चर्चा शुरू करनेवाले प्रौढ़ सज्जन, जो एक सेवा-निवृत्त जज थे बोले, “अपने इंजीनियर मित्रकी तरह मौतको छकानेका अवसर तो मुझे नहीं मिला पर हाँ, इस दुर्घटनासे सम्बन्धित एक विचित्र मामलेका न्याय करनेका मौभाग्य मुझे अवश्य प्राप्त हुआ है।”

एक मित्र बोल उठे, “आपका मतलब क़हूटा रेल-दुर्घटनासे है ?”

“जी हाँ।”

“शायद इसमें कुछ षड्यन्त्रकारियोंका हाथ था। आजकल राज-नीतिक सत्ता प्राप्त करनेके लिए सैकड़ों निर्दोष व्यक्तियोंकी जान ले लेनेका फ़ैशन-सा हो गया है।”

जज महोदयने निहायत गम्भीरतासे गर्दन हिलाकर कहा, “मित्रो ! उस मामलेका सम्बन्ध न तो किसी प्रकारकी राजनीतिसे है और न दुर्घटनाके कारणोंसे।”

“तो ?”

“उसका सम्बन्ध मानव-चरित्रसे है।”

इसपर इंजीनियरने अनुमान लगाया, “जी हाँ, ऐसे अवसरोंपर कुछ शरारती लोग अपना उल्लू सीधा करनेसे नहीं चूकते। जब शरीफ़ यात्री भयके कारण चीखते-चिल्लाते, इधर-उधर भागते हैं, तो वे लोग सहायता करनेके बहाने उन्हें लूट ले जाते हैं।”

“आप ठीक कहते हैं”, एक तीसरे भाईने उनका अनुमोदन किया,

“वे लोग घायलों और मुर्दों तककी जेब कतरनेसे नहीं चूकते।”

इसी प्रकार चौथे, पाँचवें, छठें और सातवें यानी डिब्बेके हर यात्रीने अपनी उर्वर कल्पना-शक्तिका प्रयोग करके अनुमानोंका ढेर लगा दिया, लेकिन जज साहब हर बार सिर हिलाकर उन सबको गलत साबित कर देते थे। आखिर जब उन सबके अनुमानोंका खजाना खाली हो गया तो जज साहबने कहना शुरू किया, “उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रिमें जो यात्री सफर कर रहे थे उनमें एक महिला भी थीं। वे अपूर्व सुन्दरी थीं। यद्यपि उनके विवाहको पाँच वर्ष बीत चुके थे, तो भी वे नवविवाहित दुल्हनकी तरह लगती थीं, उसी तरह मोहिनी और लजीली। उनके लम्बे पतले नील नयन, पतले नासापुट, कोमल मुख, किंचित नीले-भूरे सघन केश-देखकर भूख मिटती थी। वे प्राचीन कालकी उन सुन्दरियोंमेंसे थीं जिनके देखने मात्रसे तिलक-पुष्प कुसुमित हो जाता था और जब वे मृदु मन्द गतिसे मुस्कराती थीं तो चम्पाके फूल खिल उठते थे।

“इन पाँच वर्षोंने उनके व्यवहारमें जो कुछ अन्तर डाला था वह यही था कि अब वे कुछ नटखट भी हो चली थीं और इसके कारण वे अपने पतिको और भी प्रिय हो गई थीं। उनके पति उस ट्रेनमें उनके साथ थे। वे इन्टर क्लासमें थे और उनके साथियोंने उनके लिए पूरी बर्थ छोड़ दी थी। उनमेंसे बहुतोंको यह गलतफ़हमी थी कि वे अभी विवाह करके लौट रहे हैं। बहरहाल उनकी जिन्दगी एक रंगीन पैमानेकी तरह थी, जो केवल उन्हींको नहीं महका रही थी बल्कि आस-पासवालोंको भी खुशबूसे तर कर रही थी। वे प्यारके उन क्षणोंको जी रहे थे, जिनकी याद बहुतोंके जीवनका सम्बल होती है और गाड़ी उड़ी जा रही थी खड़-खड़ाती, चिल्लाती, धुआँ उगलती और अन्धकारकी छातीमें प्रकाशका छुरा भोंकती।”

छुरेकी उपमा देनेपर यात्री कुछ चौंके, पर कथा-सूत्रकी उत्सुकताने उन्हें मौन ही रखा और जज साहब एक क्षण बाहर भाँक फिर बोलने

लगे। उन्होंने अब अपनी कोहनी खिड़कीकी पुश्तपर टिका ली थी और उनके मोटे ओंठ कुछ इस तरह ऐंठ रहे थे जिस तरह हमला करनेसे पूर्व मेढक खानेवाला साँप ऐंठता है, जिसके दाँत तो होते हैं पर उनमें ज़हर नहीं होता। उन्होंने कहा, “रात हो गई थी और रेलगाड़ी पूरी गतिसे दौड़ रही थी। प्रायः सभी यात्री ऊँघ रहे थे, पर वह दम्पति अब भी प्रेमालापमें व्यस्त था। पत्नीने कई बार कहा, ‘अब सो जाइये।’

“पतिने मुस्कराकर जवाब दिया, ‘न जाने क्यों आज नींद भी तुमसे बातें करनेको उत्सुक है।’

“‘तो मैं सोती हूँ। सपनोंमें उसमे बातें करूँगी’, पत्नी खिल-खिला पड़ी।

“पति बोला, ‘अब जो है वह क्या सपनेसे कुछ भिन्न है। तुम स्वयं एक सपना हो।’

“पत्नी हँस पड़ती, ‘स्वप्न एक भावना है, पर मैं सत्य हूँ। तुम्हारे सामने बैठी हूँ, तुम मुझे छू सकते हो।’

“और इस तरह बातें चल रही थीं। वे प्रेमियोंकी निरर्थक बातें थीं। आदि और अन्तसे हीन पर जीवनको शक्ति और सुगन्धसे भरने-वाली। लेकिन कुछ भी हो, समयकी शक्ति अजेय है। आखिर उनकी पलकें भारी हो आई, परन्तु वे अलसाई भुकी पलकें उन दोनोंके हृदयको और भी मादकतासे भरने लगीं। वे मर्मर-ध्वनिमें फुसफुसाने लगे... , तभी अचानक एक झटका लगा, वे बुरी तरह हिल उठे। गाड़ी जैसे लड़-खड़ाई, शड़ाकछू-शड़ाकछूका अनवरत उठनेवाला शब्द कहीं टकराकर भयंकर वेगसे चीख उठा। क्षण भरके लिए समय और गतिमें संघर्ष छिड़ गया। भीषण गड़गड़ाहटके साथ सब कुछ उथल-पुथल होने लगा। यात्री चीखे और जागनेसे पूर्व गिर पड़े। देखते-देखते समूचा वातावरण यात्रियोंके आर्तनाद और घायलोंकी कराहसे भर उठा। अन्धकारने उसकी भीषणताको और भी बढ़ा दिया। उस दम्पतिने एक बार गिरते-

गिरते एक दूसरेको पुकारा और फिर उस प्रलयकारी गड़गड़ाहटमें खो गये ।”

हम यात्रियोंको लगा कि जैसे वह दुर्घटना अभी घट रही है । हमारे हृदय धक-धक करने लगे लेकिन सौभाग्यसे वह दिनका समय था । इंजीनियरने साहस करके पूछा, “तो गाड़ी पटरीसे उतर गई और वे दोनों मारे गये ।”

“मैंने अभी कहा था कि उस दुर्घटनामें मौसे भी ऊपर व्यक्तियोंकी जान गई थी, पर वे दोनों उनमें नहीं थे ।”

“क्या ?” इंजीनियरने चकित होकर पूछा, “क्या वे बच गये थे ?”

“जी हाँ, वे बच गये थे । पति महोदयके शरीरपर अनेक घाव थे, पर वे आश्चर्यजनक रूपसे साधारण थे, परन्तु उनकी रूपवती पत्नीके घाव असाधारण रूपसे भयंकर थे । उनके दाहिने पैरकी हड्डी टूट गई थी और अनेक छोटे-मोटे घावोंके अतिरिक्त उनके मुखपर दाहिनी ओर, सिरसे लेकर ठोड़ीतक एक बड़ी दरार-सी पड़ गई थी । इस दुर्घटनाके दो दिन बाद जब पति महोदयको उठने-बैठनेकी आज्ञा मिली, तो सबसे पहले उसने अपनी पत्नीको देखनेकी इच्छा प्रकट की । उसे मालूम हो चुका था कि वह जीवित है और ज़िलेके बड़े अस्पतालमें लेजाई गई है । वह बराबर उससे मिलनेको तड़फड़ा रहा था लेकिन डाक्टरने उसे बताया, ‘मित्र, तुम्हें जल्दी नहीं करनी चाहिये । उनकी हालत अभी ठीक नहीं है ।’

“पति महोदयने पूछा, ‘वह होशमें तो है ?’

“‘जी हाँ । अब उन्हें होश आ गया है ।’—अन्तिम वाक्य उसने धीरेसे कहा ।

“‘तो मुझे वहाँ ले चलिये । मैं उसे देखना चाहता हूँ । वह मेरी पत्नी है ।’

“‘जानता हूँ मित्र’ । डाक्टरने यथाशक्ति अपनेको संयत रखते

हुए कहा, 'यह भी जानता हूँ कि वे अच्छी हो जायँगी। पर...'

“‘पर क्या?’ उसने चीखकर पूछा, ‘क्या उसके अधिक चोट लगी है?’

“‘यही समझ लीजिये पर वे ठीक हो जायँगी। अवश्य ठीक हो जायँगी।’

“यह सुनते ही उसका बाँध टूट गया और वह सिमकियाँ भरने लगा। डाक्टरने उसे हर तरहसे सान्त्वना दी पर उसे शान्ति नहीं मिली। डाक्टरने अन्तमें कहा, ‘अभी कई दिनतक उसके मुँहकी पट्टी नहीं खुल सकती। आप देखकर क्या करेंगे।’

“वह आँसुओंमें बड़बड़ाया, ‘डाक्टर, मैं उसका मुँह नहीं, उसे देखना चाहता हूँ। उसे...’

“और वह फिर सिमकियाँ भरने लगा और बार-बार अपनी पत्नीका नाम लेने लगा। डाक्टर आखिर मनुष्य था। उसने कोशिश करके उसका तवादला उसी अस्पतालमें करवा दिया जहाँ उसकी पत्नी थी। शर्त यह थी कि वह पत्नीको देख सकेगा परन्तु बोल न सकेगा। उसकी पत्नीको बताया गया था कि उसका पति अभी उठने लायक नहीं है।”

“आप कल्पना कर सकते हैं कि जब उसने अपनी घायल पत्नीको देखा होगा, तो उसकी क्या दशा हुई होगी। उसका हृदय भयंकर तूफानकी गतिसे धक-धक कर रहा था। वह रह-रहकर बात पीड़ित रोगीकी तरह काँप उठता था। उसने देखा; उसकी आँखोंके आगे धुआँ-सा उठा। उसकी पत्नीका एक पैर काट दिया गया था। उसके पूरे सिर और मुँहपर पट्टियाँ बँधी थीं। वह देख नहीं सकती थी। वह धीरे-धीरे उसके पास पहुँचा। बहुत धीरे-धीरे। दरवाज़ेसे उसके पलंगतक पहुँचनेमें उसे एक युग लग गया। एक युग लम्बे जितने क्षणतक वह खड़ा रहा फिर... फिर पुकारना चाहा, ‘विमल...’

“विमल उसकी पत्नीका नाम था लेकिन वह पुकार नहीं सका।

उसे सहसा चक्कर आ गया और वह वहीं गिर पड़ा। शीघ्रतासे उन लोगोंने उसे वहाँसे हटा दिया। उसकी पत्नी कुछ नहीं जानती थी, कुछ जान भी न सकी। होशमें आनेके बादसे वह रह-रहकर फुसफुसा उठती, 'उन्हें... उन्हें बुला दो... उन्हें बुला दो, वे कहाँ हैं? वे कहाँ हैं?' पर उसका स्वर बड़ा क्षीण था और संघर्ष प्रायः गतिहीन। अगले दिन उसके पतिने जो एक ही रातमें बूढ़ा हो गया था, बड़े डाक्टरसे पूछा, 'क्या आप समझते हैं, मेरी पत्नी ठीक हो जायेगी? मुझे साफ़-साफ़ बता दीजिये।'

"डाक्टरने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें कहा, 'मिस्टर! आपकी पत्नीके प्राण तो बच जायेंगे पर मुझे दुख है, उसका एक पैर और एक आँख जाते रहेंगे और मुँह भी कुछ टेढ़ा हो जायेगा।'

"'मुँह भी कुछ टेढ़ा हो जायेगा।' वह फुसफुसाया।

"'मुझे बहुत अफ़मोस है मिस्टर! बहुत अफ़मोस है। चार दिन पूर्व आपकी पत्नी अपूर्व सुन्दरी रही होगी पर अब...। अब आपको सन्न करना चाहिये।'

"और डाक्टर चला गया। वह कई क्षण आँखें फाड़ें उसे जाने देखता रहा। बड़बड़ाता रहा—अपूर्व सुन्दरी, सन्न, टेढ़ा मुख, एक पैर, एक आँख, अपूर्व सुन्दरी! उसके साथियोंने देखा—घंटोंतक उसकी यही दशा रही। वह मदोन्मत्तकी तरह हँसा और बड़बड़ाया—अपूर्व सुन्दरी, एक पैर, एक आँख, टेढ़ा मुख, अपूर्व सुन्दरी! फिर मिस-कियाँ भरने लगा।

"डाक्टरोंके लिए यह एक समस्या हो गई। उन्होंने सलाह करके उसे अस्पतालसे मुक्त करनेका निश्चय किया और जब बड़े डाक्टर यह निश्चय सुनानेके लिए उसके पास पहुँचे, तो उनके अचरजका ठिकाना नहीं रहा—वह पूर्ण शान्त था। उसने इस निश्चयका स्वागत किया। केवल जानेसे पूर्व एक बार पत्नीको देखनेकी इच्छा प्रकट की।

“और जब वह पत्नीके पास पहुँचा, तो न तो उसका दिल काँपा, न वह गिरा। इसके विपरीत वह दृढ़तासे उसके बिल्कुल पास जा खड़ा हुआ। फिर सहसा उसने हाथ उठाया, नर्सने एकदम मना किया। वह रुक गया पर दूसरे ही क्षण उसने फिर हाथ उठाया, फिर गिरा लिया, पर तीसरी बार उसने दोनों उठाये। नर्सने तीव्रतासे रुकनेका इशारा किया, पर इस बार वह नहीं रुका बल्कि तेजीसे आगे झपटा और उसके दोनों हाथ घायल पत्नीके गलेपर जम गये. . . .

“क्षण भरमें उस कमरेकी दुनिया पलट गई। नर्सोंका पागलोंकी तरह भयसे चिल्लाते हुए भागना, उसका दाँत भींचकर शैतानी शक्तसे गला दबोचना, पत्नीकी भयानक चीख और. . . और उसके बाद. . .

“उसके बाद उसने मृत पत्नीका एक सुदीर्घ क्षणतक चुम्बन किया और फिर पसीनेसे तर हाँपते हुए हस्पतालके अधिकारियों और कर्मचारियोंकी भीड़से कहा, ‘मैं अब कहीं भी चलनेको तैयार हूँ।’

यहाँ आकर जज महोदय मौन हो गये। उनका मोटा मुख आँसुओं और पसीनेसे तर था, पर हम सब जैसे एक दुःस्वप्नसे जागे हों। हमारे हृदय आतंकसे धड़क रहे थे और गाड़ी स्टेशनमें प्रवेश कर रही थी। इस बार भी इंजीनियरने साहस किया। एक सुदीर्घ निश्वास छोड़कर उसने कहा, “तो यह मामला था जिसका आपको फ़ैसला करना पड़ा।”

“जी हाँ।” जजने शीघ्रतासे उठते हुए कहा। उन्हें वहीं उतरना था।

एक सज्जन जो अपेक्षाकृत युवक थे और जिनकी आँखें आँसुओंसे भरी थीं, बोले, “निस्सन्देह आपने उसे मुक्त कर दिया होगा क्योंकि वह. . . वह. . .।”

परन्तु वह आगे नहीं बोल सका, उसका गला सूँध गया। जजने उसे देखा और कहा, “अगर आप उस मुकदमेमें जूरी होते तो क्या करते?”

“निम्मन्टेड व्हाइ तेने” दममेंमे कई एक माथ बोले।

जजने एक विचित्र मुस्कराहटसे कहा, “उस दिनकी जूरीने भी यही कहा था। पर मित्रो ! मैं उसके साथ अन्याय नहीं कर सका। मैं जानता हूँ, मैंने बहुतसे मुकदमोंमें अन्याय किया है, पर इस फ़ैसलेपर मुझे सदा गर्व रहेगा। मैंने उसे फाँसीकी सज़ा दी थी।”

“फाँसी !” हम सब हकबकाकर बोल उठे।

नीचे उतरते हुए जजने इतना और कहा, “उसे जीवित रखना उसकी पवित्र भावनाका अपमान होता।”

और फिर वे मुसाफ़िरोँकी भीड़में खो गये।

१९५२]



अभाव

ज्यों-ज्यों प्रोफ़ेसर वर्माकी तृष्णा बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों अभावकी रेखा भी गहरी होती जाती थी। रसवादी प्रोफ़ेसर और रस-सागरके बीच एक अभेद्य दीवार थी, जिसके पार वे रसके लहराते समुद्रको देख तो सकते थे, पर उसतक पहुँचना असम्भव था। वह उनके लिए मृगतृष्णा बन गया था। इसी कारण अनजानेमें एक नई प्रवृत्ति उनमें जन्म ले रही थी—वे अपने पास-पड़ौसके तथा सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका सूक्ष्म अध्ययन करने लगे थे। हर आदमीके साथ सुख-दुःख लगा रहता है इसलिए जैसे ही वे किसीके दुःखको खोज निकालते, अनजानेमें ही उनका हृदय उल्लाससे भर उठता। परन्तु दुनिया तो दुनिया है। विचित्रता उसका गुण है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि प्रोफ़ेसर किसी व्यक्तिके दुःखका लेशमात्र अंश भी न ढूँढ़ पाते। तब उसको हँसते देखकर उनकी छातीमें छुरियाँ चलने लगतीं और वे लम्बी साँस खींचकर कहते, 'आह ! कितना सुखी मनुष्य है ?'

इधर इसी तरहकी एक घटनाने उन्हें बेहद त्रस्त कर दिया था। बात यह थी कि अभी-अभी उनके पड़ौसमें एक नया परिवार आ बसा था। केवल दो व्यक्ति थे, पति और पत्नी। दोनों सुन्दर, सुसंस्कृत और मधुर-भाषी। सदा हँसते रहते और जब किसीसे बोलते, तो मुखसे मानो फूल झड़ते। देखते-देखते वे पड़ौसकी चर्चाका विषय बन गये। हर एक गोष्ठीमें, चाहे वह पुरुषवर्गकी हो अथवा नारी-वर्गकी, उनकी सज्जनता, विनम्रता और विद्वत्ताकी चर्चा बड़ी श्रद्धासे की जाती और सबको उनके सुखी जीवनसे ईर्ष्या होने लगती। स्त्रियोंकी सभामें उनकी पत्नीकी विशेष सराहना की जाती। युवतियाँ कहतीं—कैसी सुन्दर है;

गोरा-गोरा रंग, सुआ-सी नाक, काली कजरारी आँखें और सुडौल शरीर ! जी करता है, बैठे-बैठे देखा करें। और हमेशा हँसते ही रहे हैं।

“हाँ बहिन ! हमेशा हँसते ही रहे हैं जैसे फूल झड़ते हों और बोली कितनी मीठी है। जाते-जाते पूछ लेगी, ‘कहो बहिनी ! क्या बना रही हो।’ ‘अजी बहिनजी, हमें भी दिखा दो क्या बुन रही हो !’ ‘ओहो बड़ा सुन्दर हाथ है तुम्हारा।’—ऐसे ही सबका मन बढ़ाती रहे हैं।”

“और बहिन ! एक बार पूछो तो दस बार बतावे है। फिर-फिरकर समभावे है। इस तरह बतावे है कि बस मनमें उतरता चला जा है। उसपर सिफ़त यह है कि ज्यादा बात भी नहीं करे।”

एक साथ कई युवतियाँ उनकी हाँमें हाँ मिलतीं। एक कहती, ‘सो तो है ही बहिन।’

दूसरी बोलती, ‘हाँ जी ! बड़ी भली है, परमात्मा उसे सुखी रखे।’ तीसरी कहती, “जी करे है बहिन कि सदा उसके साथ रहूँ।” और फिर एक क़हक़हा लगता। कोई मनचली कह उठती, “दुर पगली ! उसका मालिक क्या तेरी जानको रोवेगा ?”

जब हँसी रुकती तो बूढ़ी दादी बोल उठती, “वहू, मुझे तो उसकी एक बात बड़ी प्यारी लगे है।”

“क्या जी ?”

“बस हमेशा काम करती रहे है और सब काम करे है। नहीं तो नये ज़मानेकी लुगाई क्या ऐसी हो हैं। बाज़ार जा है। मगर क्या मजाल जो कभी पत्ता चाटे। सीधी जा है और सौदा लेकर लौट आवे है। घरमें बुहारी-भाड़ू, चौका-बासन सब आप करे। काते भी है। कहवे थी, ‘माँजी ! कातना मुझे बड़ा प्यारा लगे है। घर-घरमें तो जैसे भगवान् गावे हैं। मोहिनी-सी छा जावे है।’ चक्की भी पीसे है।”

वहूने अचरजसे कहा, “जी क्या सच !”

“और क्या झूठ कह हैं ! तेरी तरह ना है। दो हरफ पढ़े और मेम-

साब सेजपर जा सोई। और उसे क्या कम सुख है। मालिक पलकोंपर रखे है। दोनों जून दोनों जने हवाखोरीको जा हैं जैसे मीता-रामकी जोड़ी हो।”

दूसरी बह कहती, “पर माँजी, एक बात है; अभी उसकी गोद सूनी है। उमर तो उसकी काफ़ी हो गई।”

माँजी जवाब देती, “बह, देखनेमें तो लौडियाँ-मी लगे है। दिन आएँगे तो गोद भी भरेगी। आज-कल बच्चे ज़रा बड़ी उमरमें हो है।”

इस तरह जहाँ भी दो औरतें मिलतीं, घरमें, मेले-ठेलेमें, हाट-बाज़ारमें, शादी-नामीमें, वहीं उनकी चर्चा आप-से-आप अनजाने ही चल पड़ती। प्रोफ़ेसर वर्माकी पत्नी भी सब बातें सुनती थी। वह स्वयं उसकी बड़ी प्रशंसक थी क्योंकि उसने अपनी आँखोंसे अपनी छतसे सब कुछ देखा था। उनकी छत-से-छत मिलती थी। जब प्रोफ़ेसरकी पत्नी ऊपर आती, तो कभी-कभी पड़ोमिनसे दो बातें कर लेती थी। पर अभी वे बातें बहुत आगे नहीं बढ़ी थी। एक तो प्रोफ़ेसरकी पत्नी कम बातें करती थी और करती थी, तो साधारण औरतोंकी बातोंमें उसे ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। लड़ाई है, लड़ाईकी वजहसे जीना दूभर हो गया है। महंगाई बढ़ रही है, और महंगाई छोड़िये, पैसा है पर चीज़ नहीं है। खरीजका न जाने क्या हुआ? दियासलाई, मिट्टीका तेल, चीनी, मसाले, इन सबके अभावमें गिरस्ती बस जंजाल बन गई है।

पड़ोसिन मुस्कराकर कहती, “बहिन! यह तो जीवनका एक रस है। अभाव न हो तो भावको कौन पूछे। अपनी असलियतका पता आदमीको ऐसे ही ज़मानेमें चलता है।”

प्रोफ़ेसरकी पत्नी भी अनायास मुस्करा उठती, “सो तो तुम ठीक कहती हो बहिन, पर जीको दुख तो होता ही है।”

“दुख तो बहिन माननेका है। मानो तो दुखका अन्त नहीं है और मानो तो मौत भी सुखदायी है।”

और फिर प्रोफ़ेसरकी पत्नीकी ओर देखती और हँसकर कहती, “पर बहिन, दुनियामें रहकर इस मानतासे कौन बचा है ? वे कहते थे कि दुख सभीको होता है। पर हाँ, दुखको दुख मानकर भी जो उसे सहनेकी शक्ति रखते हैं उनके लिए दुख भी मुख हो जाता है।”

प्रोफ़ेसरकी पत्नी उसके पतिकी विद्वत्तापूर्ण युक्तिका क्या जवाब देती और बात एकदम रुक जाती। कभी बेबी रो उठती, कभी प्रोफ़ेसर पुकार लेते। प्रोफ़ेसरको यह सब पसन्द नहीं था। पत्नी जब-जब उसकी प्रशंसा करती, वे अनमने-से हो उठते। कभी-कभी तो चिनचिना पड़ते। —“छोड़ो भी उसकी बातें, बनती है।” पर पत्नीको ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती थी। फिर भी वह सोचा करती थी—शायद ये सच कहते हैं, वरना कोई इतना खुश कैसे रह सकता है। मैं उससे मेल बढ़ाऊँगी तब उसकी अमलियतका पता चलेगा।

और मेल बढ़ानेका एक मौक़ा अचानक दूसरे ही दिन उसके हाथ आ गया। यद्यपि उसका आरम्भ दुखसे भरा हुआ था, पर इसीलिए वह स्थायी था। बात यह थी कि माँकी तरह बेबी भी अक्सर मुँडेरपर चढ़कर उनके घरमें भाँका करती थी। ठीक मूँडेर पर पीपलके दरख्तकी कुछ शाखाएँ झुक आई थीं। अक्सर वह उन्हें तोड़ने लगती थी। उस दिन वह जैसे ही उन्हें तोड़नेको उठी, पैर स्पट गया और वह धम्मसे नीचे आ गिरी। उसकी चीख निकल गई। प्रोफ़ेसरकी पत्नी नीचे थी, हड़बड़ाकर दौड़ी। देखा—बेबी बुरी तरह रो रही है और उसका चेहरा खूनसे भरा है। उसका दिल धकमे रह गया, “हाय ! यह क्या हुआ। बेबी, बेबी !”

बेबी धीरे-धीरे संज्ञा खो रही थी और उसे सँभालती-सँभालती माँ खुद पागल हो चली थी, पर ठीक इसी समय मुँडेरके पीछेसे वही मुस्कराता हुआ चिरपरिचित चेहरा उभर आया। हाथमें शीशी और डिब्बा था। उन्हें मुँडेरपर टिकाकर, वह ऊपर चढ़ी और फिर फुर्तीसे इधर कूद पड़ी।

क्षण भरमें यह सब हो गया और दूसरे क्षण बेबी उसकी गोदमें थी। रूईसे माथेका रक्त पोंछती-पोंछती वह बोली, “जल्दीसे दूध हो तो ले आओ। न हो तो निरी ब्राण्डी ही दे दूंगी।”

प्रोफेसरकी पत्नी जैसे जागी। कहा, “दूध है, अभी लाती हूँ।”

“और चम्मच भी।”

“जी।”

पत्नी गई और वह खून पोंछती रही। माथेपर दाहिनी ओर गहरा घाव बन गया था। उसे ‘डीटोल’से साफ़ किया और फिर धीरे-धीरे उसमें पाउडर भर दिया। फिर पर्दा बाँधने लगी। बेबी पूरी तरह होशमें नहीं थी। जब दूधमें ब्राण्डी मिलाकर चम्मचसे उसे पिलाई, तो उसने आँखें खोलीं। सुन्दर गुलाबी चेहरा सफ़ेद चिट्ठा हो गया था। वह मुस्कराई और बोली, “वस बेबी! घबरा गई। अरे शेर तो न जाने कितनी बार कूदते हैं।”

बेबी आँखें खोले देखती रही। न हँसी, न रोई और न बोली। प्रोफेसरकी पत्नीकी आँखें कृतज्ञतासे भर आई। बोली, “आपने...”

“अरे छोड़िये भी! बेबीको डाक्टरके पास ले जाना होगा। प्रोफेसर साहब आएँ तो कह दीजिये, और देखिये, बेबीको लिटाए रखना चाहिये। जल्द गहरा है।”

तभी जीनेमें खटखट हुई। प्रोफेसर कालेजसे लौट आये थे। पड़ोसिनने सामान सँभाला और अपने घर लौट चली। जाते-जाते फिर कहा, “ब्राण्डी छोड़े जाती हूँ। जरूरत होगी तो फिर दीजियेगा।”

प्रोफेसरने यह सब मुना और बेबीको खूनसे तर देखा तो घबरा उठे। बोले, “यह क्या हुआ?”

“बेबी मुँडेरसे गिर गई।”

“कहाँ चोट लगी? ज्यादा लगी क्या?”

“सिरमें ज़रूम गहरा है । पड़ोसिनने ‘फ़र्स्टएड’ दी है । कहती है, अभी डाक्टरके पास ले जाना होगा ।”

प्रोफ़ेसर तभी बेबीको लेकर डाक्टरके पास गये । मरहम-पट्टी हुई । डाक्टरने कहा, “प्रोफ़ेसर ! आपकी पत्नी बड़ी चतुर है ।”

“जी !”

“पट्टी बड़ी अच्छी तरहकी है । ट्रेंड है ।”

प्रोफ़ेसरके जीमें आया कि कहें, डाक्टर, जिसने पट्टी बाँधी है वह मेरी पत्नी नहीं है । पर न जाने क्या हुआ, वे बोल न सके । चुपचाप बेबीको लेकर लौट आये ।

तभी ऊपरसे आवाज़ आई, “मुनिये तो ।”

देखा वही थी । पूछ रही थी, “क्या कहा डाक्टरने ?”

प्रोफ़ेसरकी पत्नीने जवाब दिया, “आपकी तारीफ़ कर रहा था । कहता था ज़रूम गहरा है । देर लगेगी पर डर नहीं है ।”

वह मुस्कराई, “सब ठीक हो जायेगा ।”

और रात होनेसे पहले एक बार फिर उसने पूछा । इस बार उसके पति भी थे । और फिर वे दोनों रोज़ सबरे घूमकर लौटते तो फूलोंके कई गुच्छे ले आते । पूछते, “बेबी कैसी है ?”

“ठीक है ।”

“ये फूल उसे दे दीजिये ।”

दिन बीतते, ज़रूम भरता और साथ-ही-साथ पड़ोसिनका प्रेम भी बढ़ता । कभी-कभी छतसे आकर वह बेबीको देख जाती । अक्सर कोई न-कोई खिलौना ले आती । फूलें हुए उड़नेवाले गुब्बारे, सजी हुई गुड़िया, दो घोड़ोंकी गाड़ी या सुन्दर सलोनी गाय !

प्रोफ़ेसर देखते और एक अनिर्वचनीय पीड़ासे भर उठते । कहते, “मना क्यों नहीं करती ।” पत्नी कहती, “कैसे करूँ ? सोचती हूँ, इस

बार जरूर मना करूँगी, पर वह आती है और ऐसे प्रेमसे बोलती है, जैसे बेबी उसीकी है। वस, मैं बोल भी नहीं सकती।”

प्रोफ़ेसर और भी चिनचिनाने, “वाहियात ! यह सब वन्द होना चाहिये ।’

“तो क्या करूँ ?”

“मना कर दो !”

“पर जानते हो, इन्हींकी बदौलत बेबी बची है।”

और तब पत्नीकी आँखें भर आतीं। प्रोफ़ेसर उसे देखकर मुँह फेर लेते। शायद उनका दिल भी उमड़ता—प्रेमसे या घृणासे, कौन जाने ? पर उधरका क्रम उसी तरह चलता रहा। यद्यपि जैसे-जैसे ज़रूम भर रहा था वैसे-वैसे उसका आना भी कम हो रहा था पर साथ ही प्रेम गहरा हो रहा था।

एक दिन आया, बेबीका घाव भर गया पर अर्द्धचन्द्राकार एक निशान वहाँ बना रहा। चन्द्रमाके कलंककी तरह यह रेखा प्रोफ़ेसरकी पत्नीको अच्छी नहीं लगी लेकिन पड़ोसिन मुस्कराकर बोली, “हलो ! बेबीके माथेपर चन्द्रमा ! शंकर बाबाका चन्द्रमा ! कैसा सुन्दर, कैसा प्यारा ?”

बेबी हँस पड़ी। सन्ध्या होते-होते उसने छतपरसे आवाज़ दी, “ज़रा सुनोगी, बहिन।” प्रोफ़ेसरकी पत्नी शीघ्रतासे आई, “क्या है जी !”

“लो यह क्रीम है। धीरे-धीरे दो उँगलियोंसे घावपर मलिये। देखिये ऐसे धीरे-धीरे मालिश कीजिये। निशान मिटा नहीं, तो इतना फीका पड़ जायेगा कि दूरसे कोई जान न सकेगा—चन्द्रमामें कलंक है।”

प्रोफ़ेसरकी पत्नीने कृतकृत्य होकर कहा, “आप बहुत अच्छी हैं।”

“यानी बहुत खराब !”

पत्नी धकसे रह गई, “जी ! नहीं, नहीं जी।”

पड़ोसिन खिलखिलाकर हँसी, “आप तो डर गई। पर कहा करते हैं कि किसीको यह कहना कि तुम बहुत अच्छे हो ऐसा ही है जैसे यह कहना

कि तुम बहुत बुरे हो। क्योंकि जो आदमी अच्छा-ही-अच्छा है वह अभी तो कहीं दिखाई देता नहीं। लेकिन जाने भी दो यह तो विद्वानोंकी बातें हैं। वे जानें और जानें तुम्हारे प्रोफ़ेसर। हमें तो यों ही हँस-खेलकर जीवन काट देना है। और हाँ ! कल आप हमारे घर आइयेगा।”

“कल क्या है !”

“उनका जन्म दिन !”

“बधाई ! बहुत-बहुत बधाई ! बहिन ! तुम्हारा मुहाग अचल रहे।”

“धन्यवाद बहिन ! पर अमली बधाई तो आपके आनेकी है।”

“ज़रूर आऊंगी जी।”

“और प्रोफ़ेसर भी।”

“कह दूंगी।”

“कहना नहीं लाना होगा। घबराइये नहीं, उनके द्वारा न्योता पहुँच जायेगा।” और वह फिर खिलखिला पड़ी। प्रोफ़ेसरकी पत्नी भेंप गई। पड़ोसिनने फिर कहा, “बेबीको न छोड़ आइयेगा।”

“जी नहीं, सभी आएँगे।”

“धन्यवाद !”—उसने कहा और लौट गई।

प्रोफ़ेसरने जब सुना तब एक बार तो मनमें उठा कि मना कर दें। फिर सोचा यह तो बुरी बात है। इसके अलावा उन्हें पाससे देखनेका जो अवसर मिलेगा, उसे खोना ठीक नहीं होगा। इसीलिए वे अगले दिन ठीक समयपर पड़ोसीके घर पहुँचे। द्वारपर उन दोनोंने सदाकी तरह खिलते हुए सबका स्वागत किया। जिस कमरेमें वे बैठे थे वह बहुत बड़ा नहीं था। फ़रनीचर भी सादा और कम था, पर जो था सुन्दर था और ठीक जगहपर लगा हुआ था। एक ओर फ़र्श था, जिसपर दूधसी नई चादर बिछी थी। तकिये भी उतने ही स्वच्छ और कोमल थे। कारनिस पर नाना प्रकारके पशु-पक्षी सजे थे। छोटी गोल तिपाइयोंपर शान्ति-

निकेतनके बने सुन्दर और रंगीन फल रखे हुए थे। लाल रंगके खूबमूरत फूलदानोंमें रखे हुए ताजे फूलोंके गुलदस्तोंसे भीनी-भीनी महक आ रही थी। आदमी भी ज्यादा नहीं थे। कुल मिलाकर पाँच पुरुष, चार स्त्रियाँ और चार बच्चे थे। एक पारिवारिक परिचय-गोष्ठी थी और सब छुट्टीके 'मूड'में थे। आनन्द-विनोद और मधुर हास्यका वातावरण था जैसे उनके लिए दुनियामें न कही पीड़ा थी, न विषाद। चारों ओर बस प्रमोद ही प्रमोद था। घरमें हँसी थी, आसमान हँसता था, हवा हँसती थी और उनके बीचमें बसा हुआ मानव भी हँसता था।

देखा, एक कोनेमें फूलोंका अस्त-व्यस्त ढेर लगा है। एक मित्र बोल उठे, "जिधर देखो फूल, मानो आप लोग मनुष्य नहीं फूल हैं।" पति-देव बड़े जोरसे हँसे, "अजी पूछिये मत ! इन्होंने तो आज मुझे फूल ही समझ लिया था।" दूसरे मित्र हँसे, "कुशल मनाइये, इन्होंने आपको मसल नहीं दिया।"

एक नवयुवती बोली, "अजी, फूल नहीं फूलोंका देवता समझा होगा।"

पत्नीने मुस्कराकर कहा, "अजी, क्या उपमा दी आपने ! इनसे तो पत्थरके देवता कहीं अच्छे।"

एक क़हाक़हा लगा। पतिने हँसते-हँसते कहा, "क्यों नहीं। बेचारोंपर कितना ही अत्याचार कर लो वे बोलेंगे थोड़े ही। पर भाई ! मुझसे तो यह सब सहा नहीं जाता। पहले ठंडे पानीमें नहाइये। फिर पूजा करिये। फिर पूजा करवाइये। यह खाइये, देवीका प्रसाद, यह देवताका, यह आपकी दासीका, यह टीका लगवाइये, लीजिये मेरी माँगमें सिन्दूर भर दीजिये। भला कोई अन्त है इस पूजाका ! बाप रे ! पत्थर हीकी हिम्मत है !"

और तब ऐसा क़हक़हा लगा कि हँसते-हँसते सबके पेटमें बल पड़ गये। आँखोंमें आँसू भर आये, पर क्या मजाल वह भेंपी हो। उसी तरह

हँसती रही। फिर हँसी-हँसीमें कामकी बातें चलीं। बधाइयाँ दी गई और सूचना मिली कि चाय तैयार है। सब उठे और मेज़पर पहुँचे। प्रोफेसरने अब एक बार फिर उन्हें ध्यानसे देखा, “वही उल्लास ! वही उमंगोंकी वेगवती धारा।”

‘क्या है यह’—उन्होंने सोचा और म्यान मन चुपचाप चीनी घोलने लगे। सामने प्लेटोंमें ताजे रसगुल्ले थे, गुलाब जामुनें थीं, पेड़े थे, पेठेकी डलियाँ थीं और थे गरम-गरम समोसे, दाल भीजी, टिकिया। कहते हैं, हँसते-हँसते और चार जनोंमें ज्यादा खाया जाता है। प्रोफेसर भी हँसते थे और खाते थे, पर रह-रहकर उनके हृदयमें जैसे कोई सुई चुभ उठती थी। वे ‘मी’ करना चाहते थे, पर कर नहीं सकते थे। इसलिए पीड़ा और भी असह्य हो उठी थी। तभी अचानक उन्होंने देखा—बेबी खेलती-कूदती चागों ओर दौड़ रही है। कभी इस खिलौनेको छूती है कभी उसको। ध्यान आया कि कहीं कुछ तोड़ न दे इसलिए पुकार लें। पर जैसे ही उन्होंने पुकारना चाहा, बेबी भागी। उसका पैर तिपाईमें लगा। तिपाई उलट गई और उसपरके खिलौने, कीमती फूलदान चूर-चूर होकर फर्शपर बिखर गये। जैसे भूडोल आया। प्रोफेसर क्रोध चिल्ला उठे, “कम्बख्त ! तूने यह क्या किया !”

जैसे क्षण भरके लिए प्रशान्त मागर उबल उठा। सबकी दृष्टि उस ओर उठी। गृहिणीने एक बार क्रोध प्रोफेसरको देखा फिर सहमी-सकपकाई बेबीको, और फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। देखते-देखते बेबीको गोदीमें भर लिया और पागलोंकी तरह चूमने लगी, “बेबी, मेरी बेबी ! जानती हो, तुमने आज एक बहुत बड़ा काम किया है, बहुत बड़ा !”

और फिर प्रोफेसरकी ओर मुड़कर उसने कहा, “आप बड़े निरदयी हैं। ऐसे प्यारे बच्चेको ताड़ते हैं। खिलौनोंका मूल्य खेलनेमें है और जब उनसे खेला जायेगा, तो उनका टूटना जरूरी है।”

फिर क्षण भरके लिए रुकी, जैसे साँम लेती हो। धीरेसे बोली,

“न जाने कबसे रक्खे थे। न कोई छूता था, न खेलता था। देखते-देखते आँखें थक गई थीं। आज बेबीने उसी थकानको दूर किया है।’

और कहकर उन्होंने फिर बेबीको जोरसे चूमा और फिर उतार-उतारकर सारे खिलौने उसके सामने डालने लगी, “खेलो और तोड़ो, मेरी बच्ची ! खूब तोड़ो। आखिर इनका अन्त आना ही चाहिये, आना ही चाहिये।”

जैसे कमरेमें निस्तब्धता छा गई। अपलक-अवाक् सब उस नारीको देखते रह गये। वह अब भी उसी तरह हँस रही थी, हँसे जा रही थी पर उस हँसीके पीछे पीड़ाका जो अदृश्य सागर लहरा रहा था वह आज प्रगट हो गया था। प्रोफ़ेसरने उसे स्पष्ट देखा। यह उनकी विजय थी। उनके हर्षका अवसर था, पर न जाने क्यों वे एक अनिर्वचनीय सहानुभूतिसे भर उठे और मन-ही-मन उन्होंने कहा, ‘इतने बड़े अभावको हृदयमें छिपाकर भी जो इतना खुलकर हँस सकता है उस व्यक्तिको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।’

१९४६]



बच्चा माँका था

याज्ञिकने गम्भीर आवाज़में कहा, “आप मुझे माफ़ कर देंगे । आज मैं आपको एक बहुत ही गन्दी कहानी सुनाने चला हूँ । उसकी गन्दगीने मेरे मनको छुआ है, लेकिन आप जानते हैं जबतक सौन्दर्यका अस्तित्व इस दुनियामें है, गन्दगीको कोई नहीं मिटा सकता । उम्मी गन्दगीके बीचसे अक्सर कमलके सौन्दर्यका जन्म हो जाता है ।

“स्वर्गके साथ नरककी कल्पना मानवने यह दुनिया देखकर ही की है । उसने सदा देखा है कि शहरकी सुन्दर बस्तीके साथ एक और बस्ती भी होती है, जो नगरसे कुछ दूर सीली और सड़ी हुई ज़मीनपर बसी रहती है । मकानोंकी कल्पना कुछ ज्यादा मुश्किल नहीं है । तंग और बदबूदार कोठरियोंको हम उस बस्तीवालोंके प्रासाद, भवन या घर कह सकते हैं । सफ़ाईकी उनमें ज़रूरत नहीं होती क्योंकि वहाँके रहनेवालोंका काम नगरकी सफ़ाई करना होता है । आप घबराइये नहीं, इस बस्तीमें, जिसमें क़दम रखनेको सूखी ज़मीनके दर्शन दुर्लभ है, जिसमें सदा नरककी मशहूर नदी वैतरणी बहती रहती है और सदा सैलाब आया रहता है, यदि कभी किसी पाप कर्मके कारण आपको गुज़रना पड़े, तो आप नाक दबा लेंगे और आँख बन्द कर लेंगे, लेकिन फिर भी उस बस्तीका नक्शा आपके दिलपर (यदि आपके दिल है) साकार हो उठेगा । उसकी गन्ध आपके दिमाग़को तर कर देगी । आप जानते हैं, उस बस्तीमें केवल कुत्ते और सुअर ही नहीं बसते बल्कि आपकी तरहके हाथ-मुँहवाले आदमी भी बसते हैं, जो आपकी तरह खाते-पीते, सोते-जागते और सोचते-विचारते हैं । अन्तर केवल इतना है कि उन्हें बन्धन नहीं है । आटा गूँधते-गूँधते वे उसी बर्तनमें पानी पी सकते हैं या शौच जा सकते हैं, फिर उन्हीं हाथोंसे

आटा गुंध सकते हैं। माँ-बापके पास ही बहू-बेटे और भाई-बहिन आज्ञादीके साथ सो सकते हैं। जहाँतक सोचने-विचारनेका सम्बन्ध है, यह बात उनकी बुद्धिसे परे नहीं है कि बस्तीकी सबसे खूबसूरत भंगिन कौन है और उसकी दोस्ती किन-किन लोगोंसे है ?

“लेकिन आप यदि मेरा विरोध करनेको तैयार हैं, यद्यपि मेरा विश्वास है कि आप हैं नहीं, पर मैं कल्पना कर लेता हूँ कि आप कहते हैं, ‘याज्ञिक, क्या ये मानव नामधारी जीव, जिन्होंने दुनियाकी सफाईका ठेका लिया है अपनी सफाई और भलाईके बारेमें नहीं सोचते ?’

“मैं कहता हूँ—सोचते हैं। आपका ऐश्वर्य देखकर उनके दिलमें हसरत और उमंगें पैदा होती हैं। उनके दिमागमें जोरसे गड़गड़ाहट उठती है और जोशमें आकर वे कभी-कभी तो दारूकी भरी बोतल खाली कर देते हैं और फिर घर (यदि आप उन कोठरियोंको घर कहें) जाकर सीले फर्शपर पड़े हुए किसी टामलोटमें (जिसे आपने रद्दी करके कूड़ेपर डाल दिया था,) या टीनके डिब्बेमें या कहिये मिट्टीकी हाँडीमें जोरसे ठोकर मारते हैं, जो या तो दीवारसे टकराकर बज उठती है या फूट जाती है। यहींतक नहीं, इसके बाद वे अपनी घरवाली या बहिन, या माँ, या बेटा (मतलब स्त्रीसे है) या जो कुछ भी है उसे दस-पाँच उलटी-सीधी सुनाते हैं। इस उलटी-सीधीकी व्याख्या करनेका साहस मुझमें नहीं है पर संकेतके लिए मैं कह सकता हूँ, वह गन्दी गालियोंका नंगा रूप होता है। गालीके बाद मार-पीट हो जाना एक मामूली-सी बात है।

“यह पुरुषोंके सोचनेकी बात है। स्त्री-वर्ग कुछ अलग सोचता है और कुछ कम भी सोचता है क्योंकि स्त्रियोंको सदा और सब जगह कुछ न कुछ रियायतें मिली होती हैं। उन्हें माँ जो बनना पड़ता है। आप चौंके होंगे कि ऐसी बस्तीमें रहने वाली भी क्या माँ होती होंगी। पहिले मुझे भी शंका हुआ करती थी। मैं सोचा करता था कि मेरी जातिको छोड़कर यानी हिन्दुस्तानियोंको छोड़कर (यद्यपि उस बस्तीवाले भी हिन्दुस्तानी

हैं पर वे मेरी वस्तीके बाहर रहनेके कारण मेरी गणनामें नहीं थे) और किसी जातिमें 'माँ' नहीं होती पर एक दिन मैंने स्टेशनपर देखा, एक अंग्रेज मेम साहब सुबक-सुबककर रो रही थीं। सामने गाड़ीमें दो छोटे-छोटे बच्चे (लगभग ६-७ वर्षके) खड़े थे। वे भी रो रहे थे। गाड़ी चली और मेम साहबकी सुबकियाँ बँध गई। वह रूमाल हिलाना भूल गई। मेरा दिल न जाने क्यों भर आया, मैं हठात् कह उठा—'तुम माँ हो ?' वह सच-मुच माँ थी। उसने साहस बटोरकर कहा—'मेरे बच्चे स्कूल जा रहे हैं, वहीं रहेंगे।'

“वह बात आगे जाकर कहाँ समाप्त हुई, यह कहकर मैं वक्तकी बरबादी नहीं करना चाहता। बात इतनी है कि उस दिन मेरी शंकाको ठेस लगी थी और फिर तो बराबर ठेस लगती रही। आजकी कहानी इसी ठेसकी कहानी है पर मैं रियायतकी बात कह रहा था न ? वह आप जरूर सुनिये। उस वस्तीकी स्त्रियाँ या आप कहें भंगिनें बदसूरत और खूबसूरत दोनों होती हैं। नरकके भी तो बहुतसे हिस्से हैं न ? ऐसे भंगिनों-के रूपके भी हैं। जो बिल्कुल बदसूरत हैं उसकी रियायत बन्द और जो ज़रा रंगकी चिट्ठी, शोख, चुलबुली और चटक-मटककर चलनेवाली है या कभी-कदाच् आँखमें काजल डालनेवाली या दाँतोंमें मिस्मी लगानेवाली है, तो समझिये उसके भाग्य जग गये।”

और याज्ञिकने एक बन्धुकी ओर मुखातिब होकर कहा—“आप भूले नहीं होंगे तो आपको याद आ जायेगा कि शेख उमरके लड़केने अपनी शादीके वक्त क्या कहा था ?”

लेकिन वे बन्धु उस बातको भूल गये थे। भूल जाना भी चाहिये। नरककी बातको अपने दिमागमें स्थान देना भी नरकमें जानेसे कम नहीं है। याज्ञिक ठहरा निर्लिप्त आदमी; उसे सब कुछ याद था। वह बोलता रहा, “उस लड़केका विवाह जिस लड़कीसे होनेवाला था वह ज़रा सीधी-सादी थी, सो लड़केको पसन्द नहीं आ रही थी। उसने अपने एक दोस्तसे

कहा था, अब्बासे जाकर कह दो कि उस लड़कीसे वे खुद निकाह पढ़ा लें। मैं तो चमेली भंगिनसे शादी कर लूँगा।’

“आप सोचिये यह कितनी बड़ी रियायत है। शेख उमरका लड़का क्यों? लाला उजागरमलने ठीक दोपहरी और खुली गलीमें प्यारी भंगिनके साथ जो कुछ किया, वह मेरी आँखोंने देखा था। और यही क्यों? आपने कई भंगिनोंकी गोदमें जो धूपसे चमकते हुए बच्चे देखे होंगे वे क्या इन रियायतोंकी कहानी नहीं सुनाते?

“अलीगढ़से आगरा जानेके लिए जब मैं मोटरमें सवार हुआ तो कुछ भंगिनें मेरे पाससे गुजर गईं। उसी मोटरमें एक और महाशय मेरे पास बैठे थे। वेश-भूषासे वे आर्य-समाजी जान पड़ते थे। मुझसे बोले, ‘आपने इनको देखा?’

‘किनको?’ मैंने पूछा था।

‘इन्हीं भंगिनोंको।’

‘हाँ, देखा है।’

‘इनकी गोदियोंमें कितने खूबसूरत बच्चे थे?’

मैं इस बातका जवाब न दे सका क्योंकि उस वक्त इतनी बारीकीसे देखनेका अवसर मेरे पास नहीं था, पर वे महाशय फिर बोले, ‘जानते हो ये बच्चे किनके हैं?’

‘किनके हैं? जिनकी गोदियोंमें हैं उनके ही हैं!’

‘नहीं।’ उन महाशयकी मुद्रा ज़रा कठोर हो उठी थी, ‘नहीं महोदय! ये बच्चे इनके नहीं हैं, ये बच्चे तो हमारे हैं।’

“और कहते-कहते उन महाशयकी आँखें लाल हो आई थीं। मुझकी मुद्रा कमानकी तरह खिंच गई थी। उन महाशयको वहीं छोड़कर मैं कूँगा कि अलीगढ़ और इस जगह जहाँ मैं रहता हूँ सैकड़ों मीलका अन्तर है लेकिन इन रियायतोंकी कहानी सब जगह एकसी है। सभी जगह मानव हैं और सभी जगह स्वर्ग और नरक! इनसे डरनेकी ज़रूरत

नहीं। दुनिया नाहक इनसे डरकर इन्हें छिपानेकी चेष्टा करती है, पर सूरजका प्रकाश लोहेकी दीवारोंको भी छेद कर भीतर जा पहुँचता है। उसे तो छिद्र चाहिये और छिद्र कहाँ नहीं होते ?

“तो आइये आपको इसी बस्तीमें, इन्हीं मानव नामधारी जीवोंके एक घरमें ले चलें। बस्तीका फ़र्श वही सीला और बदबूदार है। कूड़ा जहाँ-तहाँ पानीपर फैल गया है; यानी कीचड़ है। घर क्या, वस एक कोठरी है जिसमें दो खाट, कुछ आपके उतरन-पुतरन कपड़े, दो चार मिट्टीकी हाँडियाँ, टीनके टामलोट और... आप चौंके क्यों ? अच्छा ! ये खिलौने देखकर आप चौंक गये। आप देखते नहीं खाटपर वह कौन लेटा है और वहीपर सिर धरे कौन बैठी है ?

“कहानी यहीसे शुरू होती है और यहीं आकर समाप्त भी हो जाती है। आपमें उसे प्रत्यक्ष देखनेका साहस नहीं है। मैं ही आपको सुना देता हूँ; आप सुन लीजिये और सुनकर जो विचार आपके मनमें उठें मुझे बता दीजिये।

“उस तंग कोठरीमें जहाँकी दीवारोंपर सीलनके निशान काफ़ी ऊँचे थे, दो चारपाइयाँ बिछी थी। एक अपेक्षाकृत नई थी और उसीपर अपेक्षाकृत नये कपड़े भी बिछे थे। उन कपड़ोंपर एक बालक लेटा था या कहिये लिटा दिया गया था। उसी खाटकी पट्टीपर सिर धरे एक टक बच्चेको निहारती, उसकी माँ चन्दो भंगिन बैठी थी। वह बच्चेको निहार रही थी क्योंकि बच्चा बोलता नहीं था। चुपचाप पड़ा था जैसे मांसका लोथड़ा हो। उसे तेज़ बुखार चढ़ा था और चौधरीने चन्दो भंगिनको विश्वास दिलाया था कि बस्तीके कोनेपर जो पीपलका पेड़ है, उसीपर रहनेवाले भूतने बच्चेको पकड़ा है।

“चन्दोके दिलपर क्या बीत रही होगी। यह कोई माँ ही जान सकती है, परन्तु अचरज यह था कि उस समय बच्चेको एकटक निहारती हुई चन्दो न जाने क्या सोच रही थी ? उसका मन कहीं दूर, बहुत दूर भटक गया था।

“उस समय रात थी। कोठरीके एक आलेमें किरासिन तेलकी डिबियाँ मुँह फाड़े काली रोशनी उगल रही थीं और दूर कहीं बस्तीसे गाली-गलौज-की तीखी आवाज़ कोठरीकी दीवारोंसे आ टकराती थी लेकिन चन्दोका ध्यान इन दोनों बातोंकी ओर नहीं था। वह तो सोच रही थी दो वर्ष पहिलेकी एक बात और सोचकर जैसे सिरसे पैरतक सिहर उठती थी। न जाने उसमें क्या था कि इस बस्तीमें रहनेवाली औरतमें भी सोचनेका माहा पैदा हो गया था।

“चन्दो वैसे बस्तीकी खूबसूरत और रंगीन औरतोंमेंसे थी; दो वर्ष पहिले भी वह खूबसूरत और रंगीन थी। उसे याद आ रहा था कि मायकेकी बस्तीके सारे भंगी भाई-होकर भी उसपर फ़िदा थे। पाससे गुज़रती तो तरह-तरहके टूटे-फूटे श्रृंगारिकतासे भरे पद गुन-गुनाने लगते थे। इन्हें सुनकर चन्दोको कभी गुस्सा नहीं आया ! उलटे एक सिहरन-सी तन-बदनमें जाग उठती थी परन्तु इस बस्तीकी बात क्या ? वह जो शरीफ़ोंकी बस्ती है, जहाँ वह रोज़ ही शरीफ़ोंका मैला उठाने जाया करती थी, वहाँके शरीफ़ज़ादे भी उसपर आँख गड़ा देते थे। शेख़ उमरके लड़के जैसे मनचले उससे शादी करनेको भी तैयार थे पर वह क्या होनेवाली बात थी, शादीसे जो कुछ मुराद उनकी होती थी, वह तो चन्दो भी जानती थी।

“दिन निकलते-निकलते वह भाङू-टोकरी उठाकर चलती और जब सूरज खूब ऊँचा चढ़ आता, तो थककर घर लौट आती। आते-आते वह सारी बातोंको जो उसने सुनी थीं सोच जाती। वे वादे उसके कलेजेपर रखे थे, जिनमें उसे कुछ आनोंसे लेकर कानोंके बुन्देतक भेंट किये गये थे। भेंटका कारण एक ही था कि वह रंगकी चिट्ठी और चालकी चंचल थी। आँखें भी उसकी बड़ी और लम्बी थीं।

“लेकिन चन्दो थी कि अभी पकड़ में नहीं आई। एक बार एक लड़के-ने घरमें ही रास्ता रोक लिया तो वह बोल उठी—‘लाला ! बड़ी माँजीसे

सिफारिश करे देती हूँ कि लालाका विवाह कर दो। लाला ! हम भी क्या इस जोग है कि तुम्हारा बदन छू सकें ?’

“और सचमुच अगले दिन उस चन्दोने माँजीसे कही तो दिया—‘माँजी ! लालाका विवाह कब करोगी ? हम तो आस लगाये बैठी हैं।’

“माँजी बोलीं—‘मैं तो आज विवाह कर दू पर वह माने तब तो ?’

“चन्दो हँसी थी—‘माँजी ! यह भी क्या पूछनेकी बात है ! लड़की ढूँढ़कर विवाहका बन्दोबस्त करो। देखो फिर लाला कैसे मना करते हैं ?’

“माँजी भी हँसी थीं पर ऊपरके कमरेमें बैठे लाला गुस्सेसे काँप उठे थे कि मिले तो इस हरामजादी भंगिनकी बच्चीके काट-काटकर टुकड़े कर दें, इसकी इतनी मजाल...।

“और सोचती-सोचती चन्दो बहुत दूर आ गई कि उसका विवाह भी हो गया। समुरालमें आई। पतिको देखा बरता और उसके आदमियोंका मैला साफ किया। पति वैसा ही था जैसा होता है कि वक्तपर खुशामद कर लेता और बेवक्त मार-पीट। कभी-कभी गाली-गलौज भी हो जाती, तो कभी दोनों साथ-साथ झाड़ू टोकरी लेकर काम पर जाते।

“यहाँकी बस्तीमें भी उसकी सूरतकी धाक थी सो रम्मू (पति) किसी कदर चन्दोसे दब जाया करता था, क्योंकि उसीको लेकर तो वह पंचायतमें छाती ठोककर बैठता था। वैसे उसके आसामी भी ऊँचे दर्जेके लोग थे और इन्हीं ऊँचे घरोंमें चन्दो भंगिनको जाना पड़ता था।

“उसके रूपकी बात देरतक छिपी नहीं रही थीं। कदरदानोंके कान बड़े होते हैं। उनकी आँखें पत्थरके उस पारसे मोतीको पहिचान लेती हैं। चन्दो भी पहिचान ली गई थी कि फिर तो चाहनेवालोंकी वह चहेती बन गई थी। लेकिन चन्दो थी कि टरकाती रही। बार-बार काँटेको निकालकर फेंक देती और जालसे बच कर चली आती पर...।

“इस ‘पर’ के आते ही चन्दो फिर काँप उठी। यहीं सिर उठाकर बच्चेको देखा। वह उसी तरह शान्त निस्तब्ध लेटा था। छाती जल्दी-जल्दी

उठ बैठ रही थी। उसका दिल भर आया। पानीकी दो बूंदें खाटपर टपक पड़ीं। उन्हींके साथ याद आ गई उसे वह पुरानी बात। उस दिन रम्मूसे काफी तेज लड़ाई हो चुकी थी। रम्मूने इतना मारा था कि कमरमें नील पड़ गये थे और उमी दिन लालाने कहा था—‘चन्दो। मुंह-माँगा वर दूंगा।’

चन्दो जैसे काँपी थी।

‘बोल।’

और चन्दोको याद आया कि कल इसी घरकी औरतें गीत गा रही थीं :—

“चढ़ती जवानीका यार छोरा वामनका

ताली देवै था जी छोरा वामनका...”

सोचकर चन्दो बोली नहीं थी। चुपचाप लालाकी ओर देख भर लिया था। और फिर...

“चन्दोने जोरसे रोकर पट्टीमें मिर दे मारा। बच्चा चौककर काँप उठा। उसने आँखें खोल दी, कैसी बड़ी-बड़ी आँखें, सुआ जैसी नाक, ऊँचा माथा, धूप जैसा रंग ! चौककर चन्दोने उसे उठा लिया। गोदमें भरकर और भी जोरसे रो उठी जैसे दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, जैसे कोई बच्चेको उससे छीनकर ले जा रहा था, फिर क्षणभर बाद फुस-फुसा उठी, ‘तुझे ! तुझे तो नरम-नरम गद्दोंपर सोना चाहिए था, डाक्टर हकीम तुझे देखने आते, गोरी-गोरी नसों तेरी देख-भाल करतीं। उस ऊँची अटारी-के बाहर खड़े होकर लोग पूछते, ‘सेठजी, बच्चा कैसा है?’

“आप कहेंगे यह कर्मिनी भंगिन क्या सोच रही थी ? मैं कहता हूँ इसमें उसका कसूर ही क्या था ? उसे अपने बापका ठीक पता नहीं था। न जाने कहाँसे उसकी माँने उसे पाया था और उसे अपने बच्चेके बापपर भी शंका थी। रम्मू क्या उसका बाप था ? हर्गिज नहीं ! इस बच्चेके बाप तो लाला... थे। वही जो मायाकी शैयापर सोते हैं, मायाकी थालियोंमें भोजन करते हैं, माया जिनके पाँव पखारती है...।

“और सोचती-सोचती चन्दो न जाने क्यों उठ खड़ी हुई। चल भी पड़ी। चालमें उसकी अजीब तेजी आ गई थी। उसने कीचड़से भरी बस्तीको पार किया और फिर शहर और बस्तीके बीचके खाली मैदानको भी पार किया, जिसमें अँधेरेके कारण बार-बार ठोकरें खानी पड़ी थीं। नगरमें वह सीधी लाला...के मकानपर पहुँची और यहाँ पहुँचकर जैसे उसकी नींद टूटी। उसने चौंककर देखा कि वह मकान बिजलीके प्रकाशमें नहा रहा है मानों अपनी सफेदीका मैल उतारता हो...।

“उसने एक बार मकानको देखा और फिर बच्चेको, जो अब फिर चुप होकर निढाल-सा हो गया था। जैसे उसे फिर करेण्ट छुआ दी गई हो। वह शीघ्रतासे मकानमें घुस गई। अन्दर भी प्रकाश था और उस प्रकाशमें घरकी बहू-बेटियाँ इधर-उधर बैठी थीं। एकने काम संभाला था, दूसरी किसी पत्रिकाके पन्ने पलट रही थी। पास ही एक बच्चा फेन-सी शय्या पर सोया था। चन्दोने देखा और दिलसे आह निकल गई। मनने कहा, ‘अभागिन ! इस बच्चेको इसी शय्यापर सोना था।’

और तभी सहसा घरकी माँजीने उसे देखा। चौंककर बोली, ‘तू क्यों आई रातको?’

चन्दो क्या कहे? घबराकर रो उठी, ‘माँजी!’

माँजी बोलीं अचकचाकर, ‘अरी क्या है? तू रोती क्यों है, चन्दो?’

चन्दोको इतनी देरमें साहस मिला। बोल उठी, ‘माँजी। बच्चा बीमार है। डाक्टरके गई थी।’

‘तो फिर क्या कहा डाक्टरने?’

एकदम कह गई, ‘पिलानेको ‘रम’ बताई है। हो तो दे दो न?’

माँजीने आवाज दी, ‘किसुन रे ! शीशीमें रम चन्दोको दे जा।’

और बोलीं, ‘बच्चेको सर्दी लगी है और पगली तूने उसे कुछ ओढ़ाया भी नहीं। क्या घरमें कपड़ा नहीं था?’

चन्दो फिर काँपी पर साहस करके हंआँसी-सी बोली, 'माँजी हम गरीब है।'

'चल हट!'—माँजीने दुत्कारा, 'इतना मिलता है तो भी गरीब-की गरीब! ओछे तो सदा ओछे ही रहते हैं न!'

चन्दो खूनका घूट पी गई। और माँजी उठकर एक रजाई ले आई, 'बच्चेको इसमें लपेट ले।'

चन्दोने रजाई ली और रम ली। लौट चली। मकानका नक्शा उसके दिमागमें उतर चुका था और एक अजीब घबराहटसे उसे कँपकँपी आ रही थी।

ड्योढीपर अचानक लाला मिल गये। दोनोंकी आँखें मिली, दोनों चौके और काँप उठे।

'तू रातको क्यों आई?' लाला बोले।

किसी तरह बोली, 'बच्चा मर रहा है...'

और आगे वाणीने साथ नहीं दिया पर मनने कहा, तुम देखो यह तुम्हारा बच्चा है, यह दवाके बिना, पथ्यके बिना, देख-भालके बिना मर रहा है। इसे बचा लो। और यही सारे बिना वाणीके शब्द उसके दिमागपर हथौड़ेकी तरह पड़े। वह काँपी, थरथरी और फिर शीघ्रतासे ड्योढी पार करके भाग चली। बच्चेको उसने छातीसे चिपका लिया। रजाई उसने फेक दी। रमकी शीशी दीवारमें दे मारी और आँधी-सी बस्तीकी ओर चल दी। मानों कहीं मनकी बात सुनकर दिल दुत्कार उठा था, 'इसका बच्चा, इस कमीनेका? नहीं, बच्चा इसका नहीं हो सकता। इसे तो मैंने रक्त दिया है। मैंने जीवन, स्पन्दन और चेतना दी है। मैंने प्राण दिये हैं। मैं इसकी माँ हूँ; बच्चा मेरा है, बच्चा माँका है।'

और यही तर्क चन्दो भंगिनकी चालमें गति बनकर प्रवेश कर गया। वह बढ़ती चली गई, बढ़ती चली गई कि सहसा रम्मूने उसे देख लिया।

चीख उठा वह, 'कहाँसे आ रही है, हरामजादी कुतिया।' (ये गालियां सम्य भाषाकी हैं। रम्मूने कुछ और ही कहा था।)

चन्दोकी गतिको एकदम ब्रेक लग गया। दिलमें आग भर उठी। जीमें आया कह दे, 'तुझे कह दें क्या पड़ी है, मर जाने ! तू पूछने वाला कौन होता है, मूँडी काटे।' पर न जाने क्या हुआ ? वह तेज नहीं हुई, धीरेसे बोली, 'पीपलतक गई थी इसे लेकर।' और बच्चेको उसने हाथोंमें लेकर आगे बढ़ा दिया। रम्मू अचकचाया। चन्दो कभी इतना धीरे नहीं बोली थी। उसने एक बार चन्दोके चेहरेको देखा और फिर बच्चेको।

और देखकर चौंक उठा, 'लेकिन यह तो....

चन्दो सहसा बोली, 'लेकिन क्या....

दोनोंने एक साथ बच्चेको देखा। वह शान्त था। उसकी आँखें खुली हुई थी। पलकों स्थिर थीं।

१९४१]



माँ-बाप

जैसे ही ताँगा डाकघरके पास आया, एक लड़का लपककर उसमें आ बैठा। वह लगभग बारह-तेरह वर्षका होगा। उसका शरीर बहुत गन्दा था, और कपड़े बिल्कुल फटे थे। ताँगेवालेने एक निगाह उसपर डालकर पूछा, “कहाँ था बे, तू अब तक?”

“खटीकोके बासमे गया था,” लड़का तलखीसे बोला।

“बासमें?”

“हाँ!”

“फत्ती आ गई?”

“फातिमा?”

“हाँ।”

“आगई।”

“मुझे पूछ रही थी?”

“तुझे?”

“हाँ-हाँ, गधे! क्या वह मुझे पूछ रही थी?”

लड़का शरारतसे मुसकराया। बोला, “पूछ रही थी, कि वह कहाँका रहनेवाला है!”

“सच?”

“सच!”

“और कुछ पूछा था?”

“नहीं तो!”

“पूछा होगा, गधे!”

“तेरी कसम!”

“उल्लूका पट्टा ! मेरी कसम खाता है !”

“तो तू एतबार क्यों नहीं करता ?”

देखते-देखते दोनोंकी वाणी तेज हो उठी। दोनों विशुद्ध अनार्य भाषामें बातें करने लगे, जो भद्दी होते हुए भी श्रुति-मधुर थीं। ताँगेमें केवल एक सवारी थी। उसने गरदन उठाकर अचरजसे इस अद्भुत युगल जोड़ीको देखा। आँखें मिली। ताँगेवाला एकदम चुप हो गया। उसके पीले मुखपर गहरी मुसकराहट दौड़ गई। उसने तहमदके एक पल्लेसे पसीना पोंछकर, घोड़ेको टिटकारी दी। बोला, “चलो बेटा !” फिर मुड़कर सवारी से पूछा, “लुधियाने जायेंगे ?”

जवाब मिला, “दिल्ली।”

“दिल्ली ! बड़ा चक्कर पड़ेगा।”

“हाँ ! पर...”

सहसा लड़का बीचमें ही बोल उठा, “फत्तीकी माँ भी आ गई है !”

ताँगेवाला चौंका। बोला, “फत्तीकी माँ ?”

“हाँ !”

“क्यों आई है ?”

“तू नहीं जानता ?”

“नहीं !”

“इमी बिरतेपर पूछता था ?”

“अबे बता भी !”

लड़का फिर शरारतसे हँसा। कहा, “फ्रँसला करनं आई है !”

अब ताँगेवाला भी हँसा। बोला, “फ्रँसला करेगी ?”

“हाँ वशीर मियाँ कहते थे।”

ताँगेवाला पीछे मुड़ा। कहा, “तू जानता नहीं, गधे ! ये सब कुत्ते हैं !”

लड़का बड़ी लापरवाही, परन्तु तलखीसे बोल रहा था। बोला,

“बशीर मियाँ मान गये हैं !”

“सच ?”

“हाँ !”

“क्या फ़ैसला करेंगे ?”

“बशीर मियाँ फत्तीको तलाक दे देंगे !”

“नहीं, बे !”

“सच !”

“खा मेरी कसम !”

“तेरी कसम ! बुढ़िया भी मान गई है !”

तांगेवालेने गहरी साँस खींची। सवारीने फिर अचरजसे उसकी ओर देखा। तांगेवालेके नेत्र चमक रहे थे। पसीना पोंछकर उसने घोड़ेकी रास ढीली कर दी।

शहर पीछे छूट गया। धूपकी तेज़ीमें हवाका एक-आध भोंका मुरझाये हुए प्राणोंमें जीवन डाल जाता था। वह बदसूरत लड़का बड़ी लापरवाहीसे सिनेमाके इश्क़िया गीतकी एक कड़ी गुनगुनाने लगा था। तांगेवाला किसी मीठी कल्पनामें डूबा हुआ था। और तांगा आगे बढ़ रहा था। सवारी चुपचाप दोनों टाँग फैलाये पिछली बर्थपर बिखरी पड़ी थी। कभी-कभी आँख उठाकर वह दोनोंपर एक नज़र डाल लेती थी।

स्टेशन अब दूर नहीं था। सहसा तांगेवालेको फिर कुछ याद आ गया। पूछा, “फत्तीके कोई बच्चा है ?”

लड़केने गाना रोककर कहा, “हाँ, एक लड़का है !”

“बुढ़िया क्या कह रही थी ?”

“लड़केके बारेमें ?”

“हाँ-हाँ !”

“लड़का बशीर मियाँका है ! उसीको मिलेगा !”

“यही फ़ैसला हुआ है ?”

“हाँ।”

“लेकिन फत्तीसे भी पूछा था?”

“क्या?”

“गधा है तू! मैं कहता हूँ, फत्तीसे पूछा था कि लड़का किसका है?”

“किसका होगा? अपने बापका है?”

“अबे बापका तो होता ही है, पर बाप है कौन?”

अचरजसे भरकर लड़का बोला, “बाप कौन है?”

“हाँ, हाँ!”

“बाप बशीर मियाँ है, फत्तीका मालिक!”

तांगेवाला बड़े जोरसे हँस पड़ा। कहा, “खूब कही बे तूने!”

लड़का नहीं बोला।

तांगेवाला फिर बोला, “अबे, तुझे पता है कि फत्ती और बशीर मियाँकी कैसी निभती रही है? दोनोंको एक-दूसरेकी शकलसे भी नफ़रत है! और फिर फत्ती तो मुद्दतसे उसके घर गई ही नहीं!”

“फिर कहाँ रहती थी?” लड़का पूछ बैठा।

“माँके पास!”

“कुछ भी हो,” लड़का बोला, “बशीर मियाँ फत्तीके घरवाले हैं! लड़का उन्हींको मिलेगा!”

“कैसे मिलेगा?”

“पंचोंका फ़ैसला जो हुआ है!”

तांगेवाला एकदम गंभीर हो उठा। बोला, “लेकिन बच्चा मेरा है!”

मानो भूचालका झटका लगा। लड़का अचरजसे बोला, “तेरा?”

मवारिनें एक बार फिर अचरजसे तांगेवालेको देखा।

वह दृढ़तासे बोला, “हाँ, बच्चा मेरा है!”

लड़का हँस पड़ा। बोला, “तूने तो फिजूल ही मेहनत की ! बच्चा बशीर मियाँको मिलेगा !”

“उस पाजीने क्या किया है ?”

“उसने काजीके सामने फत्तीसे निकाह किया है, और वह इसी शर्तपर तलाक़ देनेको राज़ी हुआ है, कि लड़का उसीको मिलेगा !”

“पाजी ! गधा ! बेईमान !”

तांगेवाला क्रोधमें कुछ और कहता, परन्तु तांगा स्टेशनके कंपाउण्डमें प्रवेश कर चुका था, और कई कुली एक साथ तांगेपर झपट पड़े थे ।

सवारी चुपचाप उतरी, पैसे दिये, और हैण्डबैग उठाकर रेलके पुलपर गायब हो गई। जाते-जाते एक बार उसने उन दोनोंको देख भर लिया, परन्तु कहा कुछ नहीं।

अब तांगेवालेने निहायत तलखीसे लड़केको पुकारा, जो उचककर पानवालेकी दुकानपर लटके हुये रस्सेसे वीड़ी सुलगा रहा था। कहा, “चल, बे, लौंडे ! पुलपरसे सवारी ला !” फिर वह तांगेको वहीं छोड़कर मुसाफिरखानेमें बैठे हुए दूसरे तांगेवालोंमें जा बैठा, जो बड़ी बेतकल्लुफीसे दर्द-जिगरकी कहानियाँ सुना रहे थे।

उसी सन्ध्याको तांगेवालेने, जिसका नाम अहमद था, फ़ातिमाकी माँके पास जाकर चुनौती दे दी, “फ़ैसला नहीं होने दूंगा।”

बुढ़िया अचरज और गुस्सेसे बोली, “कौन है तू ?”

“फत्तीके सामने बताऊंगा !” अहमदने तलखीसे जवाब दिया।

“अच्छा, अच्छा बता देना ! बहुत देखे हैं मैंने तेरे जैसे !”

“हँ !” अहमद ऐंठकर रह गया।

बुढ़िया चीखती रही, “निकल पड़ते हैं घरसे बाहर कि किसीकी इज्जत उतार लेंगे ! अपनी तो धोये बैठे हैं ! दूसरोंकी भी साक़ कर देना चाहते हैं !”

“इज्जत-विज्जत मैं कुछ नहीं जानता ! बच्चा बशीर नहीं ले सकता !”

“नहीं ले सकता ?”

“हाँ।”

“वह बच्चेका बाप है !”

“नहीं !”

“कौन पूछता है तेरे ‘नहीं’ को ? उसने फ़ातिमासे निकाह किया है।”

“फ़ातिमासे पूछा था ?”

“पूछा था !”

“क्या कहती थी ?”

“यही कि बच्चा वशीर मियाँका है !”

अहमदको गहरा धक्का लगा। सक्तेमें आ गया। कुछ बोलते न बना।

बुढ़ियाने उसे देखा, मुसकराई, धीमी पड़कर बोली, “और हो भी क्या सकता है ? इज्जतका सवाल है। रो-पीटकर राजी किया है, कि तलाक़ दे दे। कहने लगा, ‘तलाक़ तो दे दूंगा, पर बच्चा मैं लूंगा ?’ मुझे भी बुरा लगा था। फ़ातिमा भी तभीसे रोये जा रही है। माँ बच्चेको अपना खून पिला-पिलाकर पालती है। और हमारे पास कौन पैसा जमा है ? माँके दिलको तो तू जानता ही है। कलेजेपर पत्थर रख लेना पड़ा।”

मुनकर अहमद गुस्सेसे भर गया। बोला, “अच्छी बात है ! तलाक़ दे लेने दे ! कम्बस्तका मिर फोड़ दूंगा !”

“किसका ?”

“वशीर मियाँका !”

बुढ़िया पास आकर बोली, “आखिर तू चाहता क्या है ?”

“यही कि बच्चा वशीरको न मिले !”

“पंचोंका फ़ैसला हो चुका है ! अब उसके खिलाफ कुछ नहीं हो सकता !”

“फ़ैसला हो चुका ?”

“हाँ।”

“तलाक़ मिल गया ?”

“हाँ !”

“वह बच्चेको ले गया ?”

“हाँ !”

“बदमाश कही का ! मुझमें औलादवाला बन गया !”

उसके दाँत कटकटाने लगे, नसें ऐंठ चलीं। अगर बशीर सामने होता, तो शायद वह उसे काट डालता। लेकिन सामने तो बुढ़िया थी। ऊपर आसमानमें रातका आगमन होने लगा था। धीरे-धीरे अंधकार घरतीपर उतर रहा था। बुढ़िया मिट्टीके तेलकी ढिबरी जलाकर आलेमें रख गई। कुछ देरतक वह उस ढिबरीको, जो काली रोशनीके बादल बना रही थी, देखता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर बोल उठा, “फत्ती कहाँ है ?”

“अन्दर पड़ी है !”

“एक बात कहूँ ?”

“कह !”

बहुत धीरे-से वह बोला, “फातिमाका निकाह मुझसे पढ़वा दे !”

“तुझसे ?”

“हाँ, वह मुझे चाहती है !”

“तूने फ़ातिमासे पूछा था ?”

“वह तो शुरू से ही मुझे चाहती है।”

बुढ़िया पूरी घाघ थी। बोली, यह तो मैं जानती हूँ, पर तू पूछकर देख न ! कालूमियाँ नाक रगड़ गये हैं !”

“सच ?”

“हाँ।”

“क्या खाकर निकाह पढ़ायेगा ? सबेरे खाना मिला, तो शामका ठिकाना नहीं।”

“यही बात मैंने कह दी थी।”

“क्या कहा उसने फिर?”

“कहता क्या? अपना-सा मुँह लेकर चला गया।”

अहमद गर्वसे हँस पड़ा। बोला, “तो तुम राज़ी हो?”

“मैं?” बुढ़िया मुसकराई।

“तुम्हारे हाँ किये बिना तो मैं पूछूँगा भी नहीं।” कहकर ताँगेवाला भी मुसकरा उठा।

दोनों चुप थे। थोड़ी देरके लिए उस कोठरीमें सन्नाटा छा गया।

बुढ़िया उठकर बोली, “फातिमा अगर राज़ी है, तो मैं मना नहीं करूँगी।”

अहमद हँस पड़ा। बोला, “चाँदीसे मढ़ दूँगा, देख लेना!” कहकर वह गर्वमें भरकर उठा, और बाहर चला गया।

उसे जाते देखकर बुढ़ियाके भुर्रियोंमें भरे चेहरेपर अद्भुत मुसकराहट दौड़ गई। कानोंके लंबे-लंबे बाले हिल उठे। उसके ओंठ पान खानेमें अब भी लाल थे। बुढ़िया हो गई थी, लेकिन आँखोंकी चमक अभी मन्द नहीं पड़ी थी। हाथ-पैरोंमें जान थी। अहमदके जाते ही ढिबरी उठाकर अन्दर चली गई, और आवाज़ बुलन्द करके पुकारा, “फत्ती!”

कोई जवाब नहीं मिला। केवल पासकी दूसरी कोठरीसे सुबकनेकी आवाज़ आती रही। बुढ़िया उसी कोठरीमें चली गई। रोशनीमें उसने देखा, फत्ती आँधे मुँह फर्शपर पड़ी है। सुबकियोंके कारण उसका शरीर हिल-हिल उठता है। ढिबरी एक आलेमें टिकाकर वह फत्तीके पास जा बैठी। क्षणभर उसकी कमरपर हाथ फेरती रही। फिर बोली, “अब क्यों रोती है? अहमदने हाँ कर ली है।”

फत्तीने सहसा सिर उठाकर माँको देखा। उसकी आँखें लाल हो रही थीं, और चेहरा पीला पड़ गया था। भर्राये गले से बोली, “माँ!”

माँने कहा, “सच, अहमद हाँ कर गया है!”

लेकिन फातिमाने माँके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा। बुढ़ियाकी

गोदीमें सिर रखकर सुबक उठी। बुढ़ियाने प्यारसे उसे हाथोंमें थाम लिया। फिर धीरेसे पूछा, “सच बता, बच्चा अहमदका है?”

फ़ातिमाने फिर सिर उठाया। माँकी ओर देखा। फिर जोर-जोरसे रो उठी।

बुढ़ियाने धीरे-धीरे उसे लिटा दिया। कहा, “कल सबेरे ही निकाह पढ़वा दूंगी। रोती क्यों है? तू जीती रही तो ग़हूर जैसे कई बच्चे तुझे मिलेंगे!”

अगले दिन सबेरे जब सूरजने पूरबके समुद्रसे सिर निकाला, तो फ़ातिमाने भी आँखें खोलीं। उसका चेहरा अब भी मुरझा रहा था। कलकी बात उसके दिलमें ताज़ा थी। ग़हूरका रोता हुआ चेहरा उसकी छातीमें कसक पैदा कर रहा था, और वह रह-रहकर चौंक उठती थी, ‘ग़हूर!’ और ग़हूरकी जैमे आवाज़ आती, ‘अम्मी!’ फिर वही ‘ग़हूर!’... ‘अम्मी!’...और तब वह मुँह में आँचल ठूसकर फफक-फफककर रो उठी।

लेकिन इन बातोंके ऊपर एक उम्मीद थी, जो घावोंपर मरहमका काम करती थी। इसीलिए वह उमड़ते हुए आँसुओंको पी जाती थी, और छातीपर पत्थर रखकर धड़कते हुए दिलको थाम लेती थी। यह उम्मीद अहमदकी थी। वह जानती थी, कि कैसे धीरे-धीरे जब वह बशीर मियाँसे दूर हटती जा रही थी, तो अहमद उसके नज़दीक आता जा रहा था। होनेको तो काल् मियाँ, नत्थे खाँ और रमज़ान मियाँ भी थे। परन्तु अहमदकी-सी बात उनमें नहीं थी। इसीलिए वह एक दिन अपनेको उसके सामने अर्पण कर बैठी थी। उसी समर्पणका फल था ग़हूर, जिसे दुनिया बशीर मियाँका बेटा समझती थी।

बशीर मियाँका ध्यान आते ही फ़ातिमा सिरसे पैरतक सिहर उठी। लगा, जैसे वह नफ़रत और गुस्सेसे तड़प उठेगी, जैसे...तभी बाहर किसीने जोरसे पुकारा, “फत्तीकी अम्मा!”

फत्तीकी अम्मा दौड़ी हुई आई। बोली, “कौन है?”

वह वही अहमदका साथी बदसूरत और मुँहफट लड़का था। उसकी गोदमें गफ़ूर था। रोते-रोते बालकका मुँह आधा रह गया था। आँखें सूज आई थीं। फत्तीने भाँककर देखा, तो निगाह उसीपर जा अटकी। वह मछलीकी तरह तड़प उठी। पर वह कोठरीके बाहर नहीं जा सकती थी। बुढ़ियाने व्याकुल हो पूछा, “क्या बात है, रे?”

“बशीर मियाँ मर गये।”

“मर गये?” बुढ़ियाका मुँह खुला-का-खुला रह गया। फ़ातिमा काँप उठी। लड़का उसी तरह बोला, “हाँ, अहमदने कल रात उसे मार डाला।”

“अहमदने?”

“हाँ, रात वे दोनों लड़ पड़े।”

“कैसे रे?”

लड़केने कहा, “रात बशीर मियाँ गफ़ूरको कन्धेपर बिठाये बाज़ारमें लौट रहे थे। रास्तेमें अहमद मिल गया। देखकर बोला, ‘किसका बच्चा ले आये मियाँ?’

“बशीर मियाँने कहा—‘किसका क्या?’

‘हाँ, यह किसका है?’

‘मेरा।’

“अहमद हँसा। बोला, ‘तुम्हारे बापके भी बच्चे हुए हैं, जो तुम्हारे होंगे?’

“बस फिर बात बढ़ गई। यहाँ तक कि अहमदने पत्थर उठाकर बशीरके सिरमें दे मारा। सिर फट गया। सारी रात अस्पतालमें पड़े रहे। अभी-अभी जान निकली है।”

बुढ़िया सकतेमें आ गई। फ़ातिमा खड़ी थी, बैठ गई। बैठ क्या गई गिरते-गिरते बची। गफ़ूर लड़केकी गोदसे उतरकर माँको ढुंढ़ने चल दिया।

बुढियाने उसे देखा, तो लपककर उठा लिया। छातीसे चिपकाकर बोली—“अहमद कहाँ है ?”

“जेलमे।”

“जेलमे ?”

“जेलमे।” कोठरीमे फातिमा फुसफुसाई और दोनो हाथोसे छातीको दबा लिया।

तांगेवाले लडकेने कहा—‘मरनेसे पहिले बशीर मियाँने मुभसे कहा था कि

“क्या कहा था ?”

‘कहा था कि गफूरको फत्तीको सौप देना। कहना गफूरका बाप कौन है, यह हर कोई नहीं जानता, परन्तु उसकी माँ फातिमा है, यह सब जानते हैं। इसीलिए गफूरको वही अपने पास रखे, जिससे वह निकाह करेगी, अब वही उसका बाप कहलावेगा।’

बुढियाको कुछ सूझ नहीं पडा। उसे खुशी हुई या दुख, यह बताना भी प्रायः असम्भव था। वह धीरे-धीरे वहाँसे हटकर फातिमाकी कोठरीमे चली गई। बोली, “ले, गफूर आ गया है।”

फातिमाने दोनो हाथ फैला दिये। बच्चा लपककर गोदीमे चिपक गया। फातिमाकी आँखोसे आँसू बहने लगे। उसने बच्चेको दोनो हाथोसे छातीमे दबा लिया, और फिर शून्यमे खो चली।

बुढिया फिर बोली, “अहमदके आनेकी कोई उम्मेद नहीं है।”

फातिमाने सुन लिया। सुनकर उसे लगा, अम्मा यह नहीं कहती, तो क्या हो जाता ? गफूरको छातीसे चिपकाये हुए हथौडेकी यह चोट उसे अच्छी नहीं लगी। उसकी आँखोमे बेतहाशा आँसू उमड आये, और वह माँकी ओर देखती ही रह गई।

तभी अचरजसे भर कर उन दोनोने देखा, अपना भारी भरकम बदन

संभाले कालूमियाँ चौकमें आकर खड़े हो गये हैं। उनके मुखपर विश्वास है और आँखोंमें मुसकराहट।

उन्होंने कहा, “फत्तीकी अम्मा, सच कहता हूँ, गफूर मेरा लड़का है। मैं उसे जानसे भी ज़्यादा प्यार करता हूँ। वे दोनों कुत्ते थे जो लड़कर मर गये।”

अचरज कि बुढ़िया अब गफूरके इस तीसरे बापको झिड़कियाँ देकर बाहर नहीं निकाल सकी।

१९४९]



ताँगेवाला

सान दिन बाद आज फिर अहमदने ताँगा जोडा । जाने लगा तो एक बार अन्दर आया, देखा—बीबी उमी तरह हमीदको कन्धेसे चिपकाये घूम रही है । कुछ क्षण वह चुपचाप खड़ा देखता रहा, फिर बोला, 'कछ हल्का पडा ?'

'नहीं ।'

फिर सन्नाटा छा गया, परन्तु जब वह बाहर जानेको मुँडा तो बीबीने कहा, 'हकीमके होने आना ।'

'अच्छा ।'

'और देखना, बचकर रहना ।'

अहमदकी आवाज तलखाहटमे भर गयी, बोला, 'मैं बक्कूफ नहीं हूँ ।'

बीबीने कुछ जवाब नहीं दिया । उसी तरह घूमती रही । वह चुपचाप बाहर चला आया । ताँगा तैयार था, घोड़ा उसे देखकर हिनहिनाया । उसने अपने बड़े लडकेसे जो ताँगामे बैठा था, कहा, 'चल बे गफूर, नीचे उतर ।'

गफूर नीचे उतर गया तो फिर कहा, 'घरमे रहना, समझा ?'

'अच्छा ।'

'अन्दरसे कुडी दे लेना ।'

'अच्छा ।'

ताँगा मुँटा । अहमदने एक बार फिर गफूरको देखा । ओठ कुछ फटनेको फडफडाये पर वह बोला नहीं, घोड़ेको टिटकारी दी और आगे बढ़ गया । उसने गली पार की । सामने सदाकी जानी पहचानी सड़क

थी। वे ही दूकानें वही सूर्य और उसकी सफेद चिट्ठी धूप, जो सदाकी भाँति आज भी प्रकाश और छायाका खेल खेल रही थी। वे ही मोड़ थे जिनके किनारोंपर फलवाले फल बेचते थे, चाटवाले चाट और ढेर सारे अखबार लिये अखबारवाले चिल्लाते, खबरवाला, एक आनेमें, गाँधी-जिन्ना अपील एक आनेमें।

पर आज जैसे सब कुछ वही होकर भी उसे और-और-सा लग रहा था, जैसे किसीने मकानकी नींवका पत्थर हटा दिया हो, जैसे किसीने, चाणक्यकी भाँति, जीवन-वृक्षकी जड़को जला देनेकी प्रतिज्ञा कर ली हो। वह साहस बटोरकर आगे बढ़ा और उसने लालचभरी निगाहोंसे चलनेवाले आदमियोंको देखा, पुकारा, 'आइए बाबूजी, लाला साहब... !'

पर वे बाबूजी और लाला साहब गरदन झुकाये आगे बढ़ गये। जैसे सन्हे अपने साथेसे डर लग रहा हो। उसने मोड़ पार किया। दूसरे ताँगेवाले मिले। साँव-सलाम हुई और अपने रास्तेपर बढ़ गये। मोड़के चारों कोनेपर राइफल थामे सिमाही खड़े थे, जो बे-मौतकी मौतकी तरह डरावने और घृणास्पद मालूम होते थे। उन्हींके डरसे उसने पार्कका चक्कर काटा और पुकारा, 'आइए बाबूजी, रीगल, सिन्धिया हाउस, कनाट प्लेस।'

कई बार पुकारा; पर कोई नहीं आया। वह दूसरे कोनेपर पहुँचा, आवाज लगायी, 'फतहपुरी, चाँदनी चौक, घण्टाघर !'

तभी तीसरे कोनेपर कुछ लोग दिखाई दिये। उसने वहाँसे पुकारा, 'बाबूजी, जामा मस्जिद, दरियागंज।'

'दरियागंज बाबूजी, आइए।'

बाबू लोगोंने उसपर एक दृष्टि डाली। कहा, 'नहीं भाई।'

'कहाँ जाइएगा?'

'कहीं नहीं।'

वह निराश होकर पीछे लौटा। मोड़पर आकर उसने देखा—वे

बाबू लोग एक और ताँगेमें बैठकर दरियागंज चले गये हैं। वह अचकचाया—
वे मेरे ताँगेमें क्यों नहीं बैठे? उन्होंने मुझे मना क्यों किया? क्या
उसने पैसे कम लिये हैं? पर मैंने तो पैसेका जिकर भी नहीं किया था,
तो?... विचारोंकी उलझनमें ताँगेकी गति धीमी पड़ गयी। सिपाही
चिल्लाया, 'क्या देखता है बे, जल्दी कर।' वह चौंका। एक बार
सिपाहीको देखा और रास ढीली करके टिटकारी दी, 'चलो
बेटा!'

पर आवाजमें तलखी नहीं थी, दर्द था। वह दूरतक उसी दर्दमें बढ़ा
चला गया। अनेक व्यक्ति पास आकर चले गये, पर उसने पूछा तक नहीं कि
कहाँ चलोगे? उसके मनमें कुछ कड़वी बातें उठ रही थी, पर वह उन्हें
किसीसे कह नहीं सकता था। इसीलिए उनका धुआँ मस्तिष्कमें घुट रहा था।
उसने फिर आँखें उठायी; देखा—वही शहर है। वे ही दूकानें, ऊँची-
नीची और एक दूसरीसे सटी हुई। वे ही आदमी हैं। वे ही युवक-
युवतियाँ सुन्दर और फैशनपरस्त, पर न जाने आज उनकी आँखोंमें क्या
है। वे एक दूसरेको ऐसे देखते हैं, जैसे सदियोंके दुश्मन हैं। अभी कुछ दिन
बीते यहाँ कन्धेसे कन्धा भिड़ता था, सवारियाँ पुकारती थी और सदाके
बदनाम ताँगेवाले मुस्कराकर आगे बढ़ जाते थे। फिर एक दिन उसी
बाजारमें ऐसी कड़वाहट फैली कि राह चलना कठिन हो गया। सहसा कोई
चिल्ला उठता, शोर मचता—छुरा चल गया।

जनता पागलोंकी तरह इधर-उधर भागती। पुलिस आती और जिनको
पकड़ सकती, पकड़ ले जाती। आस-पासके दूकानदार, दफ्तरसे लौटते
हुए बाबू, विद्यार्थी और बैंकके चपरासी, वे सब अपने भाग्यको ठोक लेते।
जो बचते वे सोचते—कौन जाने, कल हमारी बारी आ सकती है। अधि-
कारी कहते—हम बेवस हैं, बदमाश जनतामें हैं। जनताको हमसे सहयोग
करना चाहिये। पर अधिकारियोंकी दृष्टिमें जो बदमाश थे, जनता उन्हें
धर्म और जातिका रक्षक मानती थी। यह गन्दा और न समाप्त होनेवाला

चक्कर था और अखबारवाले चिल्लाते थे—गांधी जिन्ना अपील एक आने में ! लाहौर हत्याकाण्डके समाचार एक आने में !

मानों सभ्यताकी दौड़में आगे बढ़ जानेवाला आजका आदमी, आदमीको भूलकर, उसके सुखकी खोजमें लगा हुआ है, मानों पुस्तक पढ़नेके लिए विद्यार्थी, पुस्तक जलाकर प्रकाश पैदा करना चाहता है...

वह ताँगेवाला अहमद आज कुछ इसी तरहके विचारोंको अपनी भाषामें सोच रहा है और घूम रहा है। कोई भी उसके ताँगेमें बैठनेको तैयार नहीं है। उसके दिलमें दर्द उठता है और दर्दमें तस्वीरें—गफ़ूर चौकमें घूम रहा है। शायद आँख बचाकर बाहिर भाग जाना चाहता है, पर उसकी अम्मी चिल्लाती है। उसकी गोदमें हमीद चिपका हुआ है। उसका बुखार उसी तरह है...

उसने गरदनको झटका दिया। आँखें फिर ऊपर उठीं। आदमियोंकी भीड़ बढ़ रही थी। उसके नेत्र चमके, पुकारा, 'बाबूजी ! रीगल, कनाट सरकस, सिन्धिया हाउस'।

बाबूजी बोले, 'इण्डिया गेट चलोगे ?'

'आइए।'

'क्या लोगे ?'

'वही तीन रुपये।'

तभी उसने देखा, बाबूजीके दूसरे साथीने कानमें फुसफुसाया। बाबूजी मुड़कर आगे बढ़ गये जैसे किसीने छातीपर मुक्का मार दिया हो; तिलमिलाकर उसने पुकारा, 'क्या बात है, बाबूजी ?'

'हम नहीं जाते।'

'बाबूजी।'

'कह दिया, नहीं जाते, जाओ।'

वह देख रहा था, उसके साथी दूसरा ताँगा ले आये। वह जैसे स्वप्नमें

या, आँखें खुल रही थीं, पर मस्तिष्क सो रहा था। शीघ्रतासे पुकार उठा, 'बाबूजी ! आइए, दो रुपये दीजिए ।'

'नहीं ।'

'डेढ़ रुपया !'

दूसरा तांगा पास आ गया था। आँखोंसे आँखें मिलीं। अहमद काँप उठा जैसे किसीने उसके पेटमें छुरा भोंक दिया हो। वह एक गहरे और कड़वे दर्दसे तिलमिलाया। नमों गैटने लगी। जीमें आया, तांगेमें आग लगा दें और ...

तभी दिमागमें एक झटका लगा। आँखोंके आगे तिरमिराये उठने लगे। उन्हींमें उसने अपने बेहोश वच्चे और भग्न-हृदया बीबीको देखा। वह तूफानके पत्तेकी तरह बेवस फिर मुड़ा। दूसरे कोनेपर कुछ लोग खड़े थे। पास जाकर उसने पूछा, 'कहाँ जायँगे बाबूजी ?'

'मोरी गेट ।'

'तो आइए ।'

उसने प्रसन्न मन तांगा मोड़ा। बाबूजीने उसे ध्यानसे देखा, फिर न जाने क्या हुआ, मुह फेर लिया। अहमद बोला—'आइए न !'

'नहीं ।'

'बाबूजी !'

'कह दिया नहीं ।'

'बाबूजी यकीन रखिये, तांगेवाला पहिले तांगेवाला है ।'

मुनकर बाबूजी चौंके। अहमदने उसी व्यग्रतासे कहा, 'बाबूजी ! अब तक बोहनी भी नहीं की है । आइए ।'

बाबूजीने उसे फिर देखा। वह फिर बोला, 'बाबूजी !'

बाबूजी उसकी ओर बढ़े, परन्तु तभी उनके साथीने कहा—'भइया ! जमाना बड़ा खराब है। जानबूझकर मौतके मुंहमें हाथ देना अच्छा नहीं है।' बात यद्यपि धीमे स्वरमें कही गई थी, परन्तु अहमदने मुन ली। वह

निश्चय

तिलमिलाकर बोला, 'बाबूजी ! दुनिया एतवारपर खड़ी है।' साथीने एक बार उसे देखा, फिर लापरवाहीसे कहा, 'थी, पर अब नहीं है।'।

और वे मुड़कर दूर चले गये। वह बेबस उन्हें देखता ही रह गया। वह पसीनेसे तर हो रहा था और भीड़ छूट रही थी। उसने सोचा—एतवार क्या अब रहेगा ही नहीं ? एतवारपर दुनिया चलती है, नाई गलेपर उस्तरा चलाता है...।

तभी सुना, किसीने पुकारा, 'ओ तांगेवाले, इधर आओ।'।

वह दौड़ा, 'जी आइए।'।

वे दो युवक थे, स्वस्थ और सुन्दर ! उन्होंने सफेद खद्वरके करते पाजामे पहिने थे। उनकी आँखोंपर धूपके चश्मे थे और सिरपर हैट।

तांगेमें बैठकर बोले, 'कनाट सरकारस।'।

अहमदका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने घोड़ेको टिटकागी दी, 'शावाम मेरे खिलाडी !'

उसका दिल कृतज्ञताके भारसे दबा जाता था। वे दोनों युवक उसकी दृष्टिमें फरिश्ते थे। उसने कई बार मुड़कर उन्हें देखा। फिर सहमा बोल उठा, 'बाबूजी, क्या होगा ?'

'किस वानका ?'—एक युवक बोला।

"इस भगड़ेका।"

'एक दिन सब ठीक हो जायेगा।'।

"पर कब, जब घर जल चुकेगा ?"

दूसरा युवक मुस्कराया, 'शायद ?'

तांगेवाला दर्दभरे स्वरमें बोला, 'बाबूजी ! सबेरेमे अबतक कोई सवारी मेरे तांगेमें नहीं बैठी।'।

"क्यों ?"

'क्योंकि मैं मुसलमान हूँ और वे हिन्दू थे। तांगेवाले तकरीबन सभी मुसलमान हैं और जानेवाले ज्यादातर हिन्दू। इसलिए जो भी आता था

हिन्दूका तांगा ढूढता था। मुस्लिम बस्तीवाले मुसलमान भी शायद ऐसा करते होंगे।'

युवक बोल उठा, 'जरूर करते होंगे।'

'पर बाबूजी! हम लोगोंका इन बातोंसे क्या मतलब है। हम तो मजदूर हैं। ऐसा करेंगे तो खायगे कहाँ से। पहिले पेट है, फिर कुछ और...।'

युवकने पूछा, 'तांगा तुम्हारा है?'

अहमद बोला, 'नहीं बाबूजी! मैं तो नौकर हूँ। एक दिन खाली जाता है, तो पेटपर चोट लगती है। अब तो हफ्ते बीत जाते हैं। सच कहता हूँ, इस हफ्तेका राशन नहीं ला सका। छोटा बच्चा बुखारमें भुन रहा है। उसकी दवाईका कोई ठिकाना नहीं। न जाने क्या होनेवाला है। पहिले तो कभी ऐसा नहीं होता था।'

दूसरे युवकने, जो अबतक चुपचाप बैठा था, सहानुभूतिसे भरकर कहा, 'सब ठीक होगा, मेरे दोस्त! इस गैतानियतमेंसे ही भलाई पैदा होगी और तब तुम्हारा राज होगा।'

अहमद हँसा, 'हमारा राज! यूनियनवाले भी यही कहते हैं। पर बाबूजी! काम तो हम तब भी इसी तरह करेंगे?'

युवक बोला, 'काम छोड़ दोगे तो राज कैसे करोगे? जब काम करनेवालोंका राज्य होगा तभी शान्ति होगी। जो निठल्ले हैं वे लड़नेके अलावा और कुछ नहीं मोच सकते।'

अहमदको ये बातें बड़ी अच्छी लगी। सहसा उसके जीमें उठा—मैं इनसे पैसे नहीं लूँगा।

तभी युवक बोल उठा, 'तांगा रोको भाई! हम यहीं उतरेगे।' सामने कनाट सरकस था। युवक उतरे और पैसे चुकाकर एक ओर चले गये। पैसे ठीक थे। अहमदने मुट्ठी मीचकर उनकी गरमी महसूस की, फिर शीघ्रतासे अड्डेकी ओर मुड़ा। पुकारा, 'अजमेरी गेट, हाँज काजी!'

मनमें सोचा, आज यदि दो रुपये भी मिल गये तो मैं हमीदको डाक्टरके पास ले जाऊँगा। न जाने अब वह कैसा होगा ? शायद उसका बुखार हल्का होगा; शायद तेज.. उसने गरदनको फिर झटका दिया और मदाकी तरह पुकारा—अजमेरी गेट, होज काजी।

×

×

×

फिर समयका क्रम घड़ीकी टिक टिकके साथ आगे बढ़ता चला गया। सैकड़की सुईने एक चक्कर काटा, मिनिट बनी। मिनिटोमें घटे बने। दोपहर बीत गई और मध्याह्न पहुँची। करपूका समय भी पास आने लगा। अहमदको भी घर लोटनेकी जल्दी है, लेकिन उसकी जव्रमें सिर्फ दस आन पेमे है।

उसका दिल टूट चुका था, परन्तु फिर भी वह आशा और लालच-भरी निगाहोंसे ताक रहा था। वह बार-बार पुकार उठता था, 'बाबजी, आइए ।'

'मरदारजी ।'

'भइयाजी कहा चलोग ?'

भइयाजी, मरदारजी और बाबजी सब उसपर एक दृष्टि डाली और आग बढ़ गयी। भीड़ तेजीसे छटने लगी। उसका दिल धक-धक कर उठा। मन बड़ा पापी था—शायद अब भी कोई सवारी मिल जाय, इसलिए उसने रास ढीली की, पर तभी याद आया—उसे हकीमके पास जाना है।

'लेकिन कैसे ?'

लेकिन अब उसने किसी ओर ध्यान नहीं दिया। वह लौट पड़ा। वही चिरपरिचित बाजार, वे ही सड़क, वे ही फेरीवाले, वही गली और वही मकान। दूरमें देखा—गफूर दरवाजेपर खड़ा है, मदाकी तरह नगा और गदा। अहमदको देखकर भागा, 'अब्बा ।'

'क्या है बे ?'

अब्बा तुम आये नहीं !'

‘हमीदका क्या हाल है?’

‘पड़ा है।’

उसने जल्दीसे घोड़ा खोला। उसके बदनपर हाथ फेरा। घोड़ा हिन-हिनाया। अहमदने धीरेसे कहा, ‘कोई फिकर नहीं, एक दिन हम जीतेंगे।’

तभी दरवाजेपर आहट हुई, ‘गफूर!’

अहमदका माथा ठनका। धीरेसे कहा, ‘मे हूँ।’

‘कहाँ थे अब तक, देखो तो...!’

‘क्या है।’

‘हमीद?’

घोड़ेको वहीं छोड़कर वह अन्दर गया। देखा—बीबीकी आँखे रोते-रोते लाल हो रही हैं। उसका रहा सहा दम टूटने लगा, ‘क्या हाल है?’

‘आँख नहीं खोलता। चुप पड़ा है।’

उसने हाथ लगाया और झटकेसे पीछे हटा लिया जैसे जलता तवा हो। उसकी नस-नस चीख उठी। बीबी बोली, ‘हकीमके पास गये थे?’

‘नहीं।’

‘नही? सारा दिन क्या किया तुमने? मारनेकी सोच ली है, तो चाँसे ही गला घोट दो। ऐसे भी क्या बाप!’

गुस्सेसे उसकी नसें तिड़कीं। बड़े जोरका झटका लगा। बोला, ‘अब जाऊँ?’

‘अब जाऊँ! करपयू नहीं लगेगा क्या? तुम्हें बिल्कुल फिकर नहीं है। तुम ऐसे क्यों हो गये? तुम!’

और वह रो पड़ी। खूनका घूँट पीकर अहमद बोला, ‘दौड़कर जाता हूँ।’

और वह मुड़कर तेजीसे बाहिर निकल गया। वह होशमें नहीं था।

उसका अन्तर्मन गहरे क्रोध और गहरी पीड़ासे त्रस्त था और वह अन्धेकी तरह दौड़ता चला जा रहा था। उसकी आँखोंमें रोशनी थी, पर वह कुछ भी नहीं देख रहा था। वह कई बार आने-जानेवालोंसे टकराया। लोगोंने उसे अचरजसे देखा। देखकर सोचा अवश्य इसने कुछ किया है।

पर वह कुछ भी देखने-सुननेमें असमर्थ, मीधे हकीम साहबके घर पहुँचा। बैठकका दरवाजा बन्द था, पुकारा, 'हकीम साहब !'

'कौन है ?'

'अहमद।'

किवाड खोलकर हकीम साहब बोले, 'इस वक्त !'

'हमीद !'

'कौन हमीद ?'

'आपका बच्चा है हकीम साहब ! आप उसे देख लें।'

'बेवकूफ, अब देखनेका वक्त है ?'

'हकीम सा'ब ! उसकी आँखें बन्द हैं, वह...।'

और दुखी-त्रस्त अहमदकी आँखें आखिर यहाँ आकर संयम तोड़ बैठी ! बाँध टूट गया। हकीम साहब बूढ़े थे, हमदर्दीसे बोले, 'तो बेटे में क्या कल्लू ? नुस्खा लिखे देता हूँ।'

'लेकिन दूकानें तो बन्द हो चुकी हैं।'

'तो मैं क्या करूँ ?'

'हकीम साहब ! कुछ दवा दे दीजिये। उसे बहुत तेज बुखार है। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी। खुदावन्द करीम...'

हकीम साहब बोले, 'पैसे हैं ?'

'जी हाँ। मेरे पास दस आने हैं। आज तमाम दिनमें मुझे दस आने मिले हैं।'

'दस आने ? तुम ताँगवाले बड़े चालाक होते हो।'

'हज़र'—वह गिड़गिड़ाया, 'मैं सच कहता हूँ। कोई हिन्दू मेरे

तांगेमें नहीं बैठा। उन्हें डर था, मैं उन्हें मरवा डालूंगा। हजूर, सिर्फ दो बारके चक्करमें दस आने मिले हैं।’

हकीम सा’व अन्दर चले गये। कुछ क्षण बाद लौटे तो हाथमें एक पुड़िया थी। बोले, ‘लो, चार गोलियाँ हैं। दो-दो घंटेपर देना। खुदाने चाहा तो बुखार उतर जायेगा।’

जैसे अमृत मिला। लपककर गोलियाँ ले लीं। पैसे दिये और सलाम करके फिर दौड़ा। धूप उसी तरह चमक रही थी, पर गलियोंमें सन्नाटा था। मकान कवरिस्तानकी कब्रोंकी तरह मौन-स्तब्ध खड़े थे, पर वह सब ओरसे आँखें मीचे भाग रहा था कि हठात् कोई भारी-सी वस्तु उसके कन्धेपर आ पड़ी, ‘आह’

वह चीखकर मुड़ा। आँखोंके आगे तिरमिरारे उठे। उठते रहे। उनके पीछे एक इन्सानकी सूरत थी, जिसके सिरपर लाल पगड़ी थी, जिसके शरीरपर खाकी कपड़े थे और जिसके हाथमें राइफल थी। उसने कड़ककर पूछा, ‘कहाँ जाता है बे?’

‘घर हजूर।’

‘इस वक्त?’

‘हजूर! बच्चा मरनेवाला है। दवा लाया हूँ।’

‘थाने चलो।’

‘हजूर।’

‘बको मत! बहानेबाज साले। आगे बढ़ो।’

‘हजूर, हजूर, माफ कर दो। मेरा बच्चा मरनेको पड़ा है।’

सिपाहीने उसे क्रूर आँखोंसे देखा। आँखोंसे आँखें मिलीं, फिर सहसा मुड़कर अपने साथीसे कहा, ‘इसकी तलाशी लो।’ साथी आगे बढ़ा। अहमदने हाथ ऊपर उठा दिये। उसकी जेबें खाली थीं, सब कुछ खाली था केवल मात्र आँखोंमें दहकता हुआ पानी भरा हुआ था और वह पानी समस्त भूमण्डलको भस्म कर देनेको आतुर था। वह

उसी तरह गिड़गिड़ाया, 'हज़र ! मेरा बच्चा मरनेको पड़ा है, मुझे जाने दो ।'

इस बिलबिलाहटसे सिपाहीके गर्वको धक्का लगा । उसने पहिले तो कसकर एक लात जमाई, फिर तमतमाकर घूँसे मारने लगा । मार चुका तो तीव्र स्वरमें कहा, 'भाग जा, बदमाश, फिर देखा तो गोलीसे उड़ा दूँगा । तेरे जैसे, शैतानोंने ही दुनियाको तंग कर रखा है ।'

उसका खून खौला और टंडा पड़ गया । वह जैसे था, जैसे नहीं था । सपनेमें आदमी होकर भी नहीं होता है । वह इसी बे-होशीमें भागा चला गया । सामने उसका घर था, किवाड़ बन्द थे । यन्त्रवत् उसने धक्का दिया । वे भड़भड़ाकर खुल गये, पर...

'कोई रोता है... !'

'कौन... ?'

वह काँपा । उसने आँखें मली; एक दुनिया उठी, एक गिरी । यह उसकी अपनी बीबीकी आवाज थी, जो सीधी दिलको छेद रही थी जैसे पेंच लकड़ीको छेदता है, ऐंठ पर ऐंठ देता हुआ !

स्वर पहिचान लिया, तो चेतना जाग उठी, गोलियाँ हाथसे छूटकर घरतीपर बिखर गई और फिर जो ऐंठन पैदा हुई, वह खुदासे भी लोहा लेनेको तैयार थी ।

१९४८



पतिव्रता

प्रदर्शनीमें घूमते-घूमते अचानक चन्द्रा चौंक पड़ी, 'अरे वह कौन है ?'

उसके पतिने अचकचाकर पूछा, "कौन है ?"

चन्द्रा शीघ्रतासे आगे बढ़ती-बढ़ती बोली, "सुमित्रा ! मेरी बाल-सखी !' और उसने गद्गद होकर पुकारा, "सुमित्रा, आ-आ !"

सुमित्राके देखते-ही-देखते चन्द्राने आकर उसे बाहोंमें बांध लिया। आँखें सजल हो उठीं। 'इतना ही बोल सकी' 'सुमित्रा !'

सुमित्रा फुसफुसाई, "चन्द्रा !"

चन्द्रा संभलकर बोली, "कहाँ थी तुम ?"

सुमित्राने उसी तरह कहा, 'और तुम ?'

और फिर दोनोंने आँसू पोंछ डाले। अचानक उन दोनोंके पतियोंने एक दूसरेको देखा। आते-जाते अनेक व्यक्तियोंकी आँखें उठीं, पर वे दोनों चकित, विह्वल भावावेशमें खोयी-खोयी कई क्षण उसी तरह एक-दूसरीको देखती हुई खड़ी रहीं कि चन्द्राके पति मनोहर चतुर्वेदी बोल उठे, "घर लौट चलें चन्द्रा !"

और वे सब घर लौट आये। चन्द्राके पति इसी नगरके प्रसिद्ध वकील थे। सुमित्रा पतिके साथ प्रदर्शनी देखने आई थी कि चन्द्राने अचानक देख लिया। फिर तो दोनोंने एक दूसरेके दुख-दर्दकी बातें सुनीं। पुराने किस्से उखाड़े गये। दबी हुई स्मृतियाँ उभर आयीं। चन्द्रा बोलते नहीं थकी। सुमित्रा हंसते-हंसते रो-रो उठी।

चन्द्रा बोली, “सुमित्रा ! तुमने हँसना कहाँसे सीखा ? स्कूलमें तो तुम गंभीरताकी तस्वीर बनी रहती थी।”

सुमित्रा फिर हँस पड़ी, “जहाँसे तुमने बोलना सीखा !”

चन्द्राने कहा, “मेरा विवाह तो वकीलके साथ हुआ है।”

“तो समझ लो”—सुमित्रा बोली, “मेरे पति सदा खिलते रहते हैं फूलकी तरह।”

“सच ?”

“और नहीं तो।”

“क्या करते हैं ?”

“देशका उद्धार।”

“देशका उद्धार ! कांग्रेसमें है ?”

“नहीं चन्द्रा, उनका कांग्रेससे कोई संबंध नहीं है। वे तो टोस सेवा करते हैं। ऐसी कि लोग जन्म-जन्मतक गीत गाते रहें।”

“कैसे ?”—चन्द्रा साश्चर्य बोली।

सुमित्राने कहा, “बुढ़ापेमें जब हाथ-पैर काम नहीं करते, रोगमें जब प्राणोंपर आ बनती है, अकालमें जब पतिके उठ जानेपर पत्नी असहाया हो जाती हैं, बच्चे शिक्षा के लिए तरसते हैं, कन्याका विवाह नहीं हो पाता और सतीत्वतक तरेमें पड़ जाता है, तब मेरे पति उनकी सहायता करते हैं। उन्हें चिन्ताओंसे मुक्त करके उनके लिए सुख और शान्तिका द्वार खोल देते हैं।”

चन्द्रा अचरजसे बोली, “इतना पैसा है तेरे पतिके पास ?”

सुमित्रा गर्वकी हँसी हँसी; उसने कहा, “पैसा तो अशान्तिका कारण है, चन्द्रा ! वे बिना पैसेके सब कुछ करते हैं।”

“बिना पैसेके !—चन्द्रा अचरजसे भर गयी।

“हाँ, बिना पैसेके”—सुमित्रा गर्वसे उमड़ी।

“आखिर क्या करते हैं वे, सुमित्रा !”

सुमित्रा हंसी, “वे बीमा कम्पनीके एजेण्ट हैं चन्द्रा ! जानती हो कितने शोषणकारका काम है यह ?”

चन्द्रा जोरसे हँस पड़ी, “तो यह बात है बहन ! ...परन्तु कहती हो तुम ठीक हो। बीमा करानेके बाद आदमी निश्चिन्त हो जाता है।”

सुमित्रा और भी गर्वसे उमड़कर बोली, “बीमासे आदमीको व्यक्तिगत लाभ ही नहीं होता, बल्कि समाजका उद्धार भी होता है। एक आदमी थोड़ेसे पैसोंसे अपने परिवारकी उस समय सहायता करता है, जब उसपर कष्टके बादल छाये रहते हैं। अगर बीमा न कराता तो उसकी स्त्री दुराचारमें फँसकर समाजके पाप बढ़ाती या कुत्तेकी तरह दर-दर मारी फिरती और एक दिन आत्महत्या करके समाजका नाश करती। बच्चोंकी दुर्गति होती। गर्ज कि हर अवस्थामें समाजपर भार बनती। दिन-रात ऐसे अनेक दृश्य हम-तुम देखते हैं, परन्तु कितने भाग्यशाली हैं वे लोग, जो जरा-सी दूरदर्शिताके कारण मनुष्यके साथ-साथ समाजकी भी रक्षा करते हैं ? मनुष्यसे ही समाज बनता है। क्या कहूँ, चन्द्रा ! बीमाके अनगिनत लाभ हैं। मानसिक शान्ति, शारीरिक स्फूर्ति, आर्थिक सुविधा, परिवारका प्रेम, समाजमें प्रतिष्ठा और सदाचारके अमूल्य नियम अनायास ही आदमीके हाथ लग जाते हैं। इन बातोंके अलावा इस दुनियामें है ही क्या, जिसकी आदमीको जरूरत है।”

चन्द्रा बड़ी प्रभावित हुई, बोली, “तुम तो खूब समझती हो, सुमित्रा। मुझे अचरज हो रहा है, क्या तुम वही सुमित्रा हो, जो क्लासमें सबसे पिछली बेंचपर साड़ीमें मुंह छिपाकर बैठा करती थी ?”

सुमित्रा तनिक गम्भीर हुई, “सब उनकी कृपा है, चन्द्रा ! मुझे उन्होंने आदमी बना दिया है, नहीं तो...।”

बीच हीमें चन्द्रा बोल उठी, “सच कहती हो, बहन ! साथी अच्छा मिल जाता है, तो जीवन बन जाता है, नहीं तो घर-घरमें महाभारत मचा है।”

और फिर बातें आगे नहीं बढ़ पायीं। खानेका बुलावा आ गया। कुछ भी हो, उस दिन चन्द्राकी गृहस्थीमें हर्षका सागर उमड़ आया; फूल-फूल उठी। सुमित्राने लाख चाहा कि वह घर लौट जाये, पर चन्द्रा नहीं मानी, बोली, “सात वर्षमें तुम्हारे दर्शन हुए हैं। सात दिन भी नहीं रहोगी? तुम्हें देखकर सारा बचपन याद आ गया है। जैसे अब भी स्कूलमें पढ़ने जाती हूँ। गुरुआनियोंका प्रेम, उनकी ताड़ना और उनके आशीर्वाद, सब कलके-से जान पड़ते हैं। कैसी थी वह जिन्दगी?”

“कैसी थी, चन्द्रा?”

“जानती हूँ, पर बता नहीं सकती। शब्द क्या हृदयके भावोंको ठीक-ठीक व्यक्त कर पाते हैं? कहते हैं, जो ईश्वरको जान लेते हैं, वे फिर उसके स्वरूपका वर्णन नहीं कर पाते। इसी प्रकार, सुमित्रे! मैं आज उस जीवनको पहिचान गई हूँ। तब कैसे बताऊँ, वह जीवन कैसा था?”

सुमित्राने अचरजसे चन्द्राको देखा। उसकी आँखें सजल थीं। मुखपर प्रभातकी अरुणिमा दिखर गई थी। शरीर भावावेगसे काँप रहा था। वह स्तम्भित-चकित उसे देखती रही; देखती रही, बोल नहीं सकी।

×

×

×

आखिर तीसरे दिन, इस शर्तपर चन्द्राने सुमित्राको जाने दिया कि वर्षमें दो-तीन बार वह उन लोगोंसे मिलने जरूर आयगी। लेकिन उस घटनाके बाद एक नहीं, बल्कि दो वर्ष बीत गये, पर सुमित्रा और चन्द्राका मिलन नहीं हो सका। सुमित्राने अनेक बार याद किया। चन्द्रा तो कई बार स्वप्नमें चौंक कर उठी कि सुमित्रा आई है; लेकिन धीरे-धीरे वे दोनों ही उस बातको भूल गयीं। अगर मनुष्य भूलना न जाने तो जिन्दगीका इतना लंबा रास्ता कैसे पूरा हो? परन्तु तीसरे वर्ष अचानक फिर एक दिन वे इस गोलाकार सृष्टिमें एक दूसरेके पास आ पड़ीं। चन्द्रा अपने पतिके साथ दिल्ली सैर करने गयी थी। वकील साहबने रुपया अपने साथ न रखकर

बैंकमें जमा कर दिया था। उस दिन रुपया लेनेके लिए जैसे ही वे बैंकके खजांचीके पास पहुँचे तो चौंक पड़े, “कृष्ण बाबू !”

खजांची मुस्कराकर खड़ा हो गया, “वकील साहब, आप !” उस दिन फिर चन्द्रा और सुमित्रा छातीसे छाती जुड़ाकर रो उठीं। उलाहनें दिये गये। सफाइयाँ पेश हुई और फिर, बात क्षमाके ऊपर आकर समाप्त हो गयी। सुमित्राकी गोदमें डेढ़ सालका विनोद था और चन्द्राके साथ भी साल भरकी प्रतिमा आयी थी। चन्द्राने विनोदको छातीसे चिपका लिया और सुमित्राने प्रतिमाको। सुमित्रा बोली, “प्रतिमा तो चीनी लड़की जान पड़ती है; मानो मोमकी गुड़िया हो।”

चन्द्राने कहा, “और विनोद जापानी लड़का है।”

सुमित्रा खिलखिला पड़ी, “जापान चीनको खाये जा रहा है। मुझे दोष मत देना फिर।”

चन्द्रा भी हँस पड़ी, “जो लड़ते हैं वे प्रेम करना भी जानते हैं और फिर चीनको खाना क्या आसान है ?”

“सच क्या ?”

“और नहीं तो।”

“तू लड़ती होगी वकील साहबसे।”

“जो बाहर लड़ता है, वह घरमें कैसे लड़ेगा ? तू इतना भी नहीं जानती। अंगरेज बाहरके दुश्मनसे लड़नेके लिए कैसे घुल मिल गये हैं ?”

सुमित्रा बोल उठी, “मैं यह सब कुछ नहीं जानती। हाँ, इतना जानती हूँ कि लड़ना अच्छा नहीं है। सबरे जाते हैं, सन्ध्याको थके लौटते हैं। ऐसी हालतमें मैं क्रोध करूँ या लड़ूँ, तो उनका जीवन एक भार बन जाये। पहले बीमा कंपनीमें थे। पैसे तो मिलते थे, परन्तु जीवनका आनन्द नहीं था। हर वक्त मारे-मारे फिरते थे। बच्चा तड़प रहा है, परन्तु उन्हें जाना है। मैं बीमार हूँ, पर वे रुक नहीं सकते। अब बात यह है, दस बजे गये,

पाँच बजे लौट आये। बातें करते हैं, घूमने जाते हैं। परमात्माने विनोदको भेजा है। फूल खिलता है और माली देखकर प्रसन्न होता है।”

चन्द्राने उसकी बातें ध्यानसे सुनीं। उसने कहा, “तुम ठीक कहती हो। बीमाके काममें तो आज यहाँ, कल मेरठ, परसों लाहौर। इसमें आनंद कहाँ ? पीछे घरकी चिन्ता लगी रहती है और चिन्ता जीते जी शरीरको खा जाती है।”

“यही तो चन्द्रा ! लोग समझते हैं, खूब घूमनेको मिलता है। नयी दुनिया, नयी चीजें, तीर्थ मन्दिर और न जाने क्या-क्या ? यह तो सच है, परन्तु जब मन चिन्ताओंसे भरा होता है, तो ताजमहलकी सुन्दरता मट्टीके घरोंदेमे ज्यादा अच्छी नहीं लगती। रही तीर्थकी बात, मो बहन ! मन चगा तो कठौतीमें गंगा। अब देखो, छुट्टी मिल जाती है। सालमें एक माहकी छुट्टी लेकर कहीं घूम आओ। कोई चिन्ता नहीं, मुक्त-स्वच्छन्द, कही रात बिताओ, कहीं दिन। परिवार साथ है और मन स्वस्थ। तब मैं कभी जाती भी तो क्या कुछ देख पाती थी। ये दिन भर लोगोंके दरवाजे भाकते फिरने और मैं धर्मशालाकी कोठरीमें पड़ी रहती। सबसे बढ़कर एक और बात है, अब महीनेमें गिनी-गिनाई तनखाह घरपर आ जाती है। पता रहता है कि कितना खर्च करना चाहिए ? तब कोई निश्चित बात ही नहीं थी। कभी राजा बन गये; कभी फकीरीकी नौबत आ गयी। कोई जीवन था ?”

ये बातें और भी आगे बढ़तीं; परन्तु चन्द्राको आगे जाना था। इसी-लिए वकील साहब आकर बोले, “गाड़ीका वक्त होता आ रहा है। चलोगी या नहीं ?”

चन्द्रा और सुमित्रा—दोनों चौंक पड़ीं। बच्चे छातीसे चिपके-चिपके सो गये थे। चन्द्राने उठते हुए कहा, “आज्ञा दो, बहन ! रुक नहीं सकूंगी, पर प्रतिज्ञा करती हूँ कि अगले वर्ष अगर युद्ध तेज न हो गया तो गुडगावाँ जाने समय जरूर मिलूंगी। तुम तो बहुत दूर आ गयी। कभी आना।”

और वह उठकर चल दी। सुमित्रा दरवाजे तक साथ आयी। वह

बोली नहीं। आँखोंने बोलने ही नहीं दिया। आपही दिलकी बातें कहने लगीं। लेकिन कुछ भी हो, चन्द्राने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की! अगले वर्ष गुडगावाँ जाते समय वे सुमित्राके घर पहुँचे; परन्तु उस घरमें तो कोई और सज्जन रहने लगे थे। सुमित्राके पति कुछ दिन हुए नौकरी छोड़कर कहीं चले गये—केवल इतना ही पता उन्हें लगा।

वकील साहबको बुरा लगा, बोले, “अजीब आदमी है। टिककर कोई काम ही नहीं कर सकते। कभी बीमा कंपनी, कभी बैंक? अब न जाने कहाँ होंगे? कौन ढूँढ़े उन्हें? चलो, होटलमें ठहरेंगे।”

चन्द्रा लज्जित हुई परन्तु भाग्य अच्छा था। पड़ोसके सज्जनने आकर बताया कि कृष्ण बाबूने बैंककी नौकरी छोड़नेके बाद नयी दिल्लीमें ‘स्टुडियो’ खोल लिया है। वे सब वहीं गये। पुकारनेपर सुमित्रा आयी। देखकर फूल उठी, “तुम बड़ी अच्छी हो, बहन!”

चन्द्राने वनावटी गुस्सेसे कहा, “तुम बड़ी खराब हो। कितना शर्मिन्दा किया आज?”

सुमित्राने क्षमाके चुने हुये शब्द ढूँढ़ निकाले। चन्द्रा हंस पड़ी। फिर खाना-पीना हुआ। वकील साहब बाहर चले गये। बच्चे खेलने लगे और दोनों सखियाँ बातोंमें लग गयीं। चन्द्रा शिकायत-भरे स्वरमें बोली, “पर बहिन! यह क्या बात है? टिककर कोई काम क्यों नहीं करते?”

सुमित्राने धीमेसे दबे स्वरमें कहा, “यह भी क्या अपने बसकी बात है? उनका जी तो बहुत दुखता है, पर क्या करें?”

“क्यों?”—चन्द्राने पूछा।

“तुम देखो न, बहन! बैंकमें नौकर थे। सोचा था, जीवन यहीं कट जायेगा, पर बात नहीं बनी। इतना परिश्रम करते थे, परन्तु फिर भी डांट-डपट होती रहती थी। छुट्टी मांगते तो नहीं मिलती। रातको देरसे लौटते। मैं बैठी-बैठी थक जाती। एक दिन तो सबेरे चार बजे आये।”

चन्द्रा अचकचायी, “सारी रात काम करते रहे!”

“हाँ बहन, कई बार सारी-सारी रात काम किया और फिर रुपयेका काम। हर महीने दस-पन्द्रह कम हो जाते। वे जेबसे भरने पड़ते! बढ़ जाये तो और भी बुरा। चिन्तामें रात-दिन घुलते रहते। मुझसे देखा नहीं गया। एक दिन कहने लगे, “ऐसी गुलामीसे तो मौत भली!”

मैंने कहा, “कैसी बात मुंहसे निकालते हो? कोई दूकान कर लो।”

कहने लगे, “रुपया चाहिये।”

कहते-कहते सुमित्राका स्वर धीमा पड़ गया। बोली, “तुमसे क्या छिपाना बहन! जो कुछ था वह बेच-बाचकर यह दुकान खोली है। इसी दिनके लिए तो होता है। काम आ गया। पैसा हाथका मँल है। भाग्यमें होगा तो कमा लेंगे।”

और फिर हँस पड़ी, “आओ तो जरा, दिखाऊं तुम्हें कैसा आनन्दका जीवन है।”

और फिर तो चन्द्राके सामने एल्बम् और फोटुओंका ढेर लगा दिया। “देखो ये विनोदके फोटो हैं। देखो स्नान कर रहा है, यह खा रहा है, यह हंस रहा है। यह वे हैं। साइकिलके पीछे में हूँ। यह हम दोनों हैं। यह हम तीनों हैं। विनोद मेरी गोदमें है। और चन्द्रा! यह कितना सुन्दर पोज है? हम दोनों दरवाजेपर झुके खड़े हैं और विनोद चोकमें खेल रहा है। नीचे पढ़ो तो—कलाकार अपनी कृतिपर आपही मुग्ध है।”

चन्द्राके दिलमें धुकधुकी-सी हुई। उस क्षण उसने सोचा कि कितनी भाग्यशालिनी है सुमित्रा! पैसा नहीं, जेवर नहीं, परन्तु कितनी प्रसन्न है!

सुमित्रा बोल उठी, “और सुनो, तुम्हारा फोटो खींचना है। एकमें हम सब होंगे, एकमें सिर्फ तुम और मैं। एकमें विनोद और प्रतिमा। प्रतिमाके तो कई फोटो लूंगी, चन्द्रा! फोटो भी क्या चीज है! हू-ब-हू तसवीर

उतर आती है। जब देखो तब सारी याद ताजी हो जाती है। जब कोई बूढ़ा पुरुष अपनी जवानीका फोटो देखता है, तो उमंगें भर आती हैं, दिल फड़क उठता है। विनोद आज बच्चा है। जब बड़ा होकर देखेगा कि मैं तीन सालका कैसा लगता था, कितना खुश होगा ? सारा जमाना आँखोंमें उतर आयेगा। कितनी ही मीठी, कड़वी स्मृतियाँ साकार हो उठेंगी। जहांगीरकी तरह चाहेगा, एक बार फिर बच्चा बनता तो कैसा होता ?

सच कहती हूँ, चन्द्रा ! ये फोटो आदमीको कवि बना देते हैं। और तुम देखो, मित्र परदेशमें हैं, कारणवश वर्षोंतक नहीं मिल सके। एक-दूसरेको भूल गये। भूलना भी मनुष्यका स्वभाव है। लेकिन अगर एक-दूसरेका फोटो पास हो तो वे कभी नहीं भूल सकते। याद सताती रहेगी और प्रेम बढ़ता रहेगा।”

और न जाने क्या-क्या कहा सुमित्राने ? परिणाम यही हुआ कि तीसरे दिन जब वे लोग बिदा हुए तो अनेक फोटो संभाले हुए थे।

×

×

×

और फिर बहुत दिन बीत गये। फोटो सामने रखकर भी चन्द्रा सुमित्रा एक-दूसरेसे बातें नहीं कर सकीं। सुमित्राने एक दिन कहा था, फोटो पास हो तो मित्रकी याद बनी रहती है, मिलनेकी जरूरत प्रेममें बाधा नहीं डालती। शायद इसीलिए उन्होंने एक-दूसरेसे मिलनेकी जरूरत नहीं समझी।

उन दिनों देशमें किसान आन्दोलनकी धूम थी। देशके सभी विचारशील व्यक्ति अनुभव कर रहे थे कि किसानोंकी दशा सुधरे बिना देशकी उन्नति नहीं हो सकती। उस दिन नगरमें इसी सिलसिलेमें कोई सभा होनेवाली थी। उसमें किसी बड़े किसान नेताका व्याख्यान होनेवाला था, जलसेमें शरीक होनेके लिए आसपासके गांवोंसे हजारोंकी संख्यामें किसान जुटे थे। चन्द्रा पतिके साथ इसी नगरमें आई हुई थी। वकील साहबको किसानोंसे सहानुभूति थी, इसलिए चन्द्रा सहित वे भी जलसेमें आये थे। पहले कविता

पाठ हुआ। फिर एक सज्जन किसानोंकी वर्तमान अवस्थापर बोले। उनके बाद एक स्त्री उठी। उसके साथ एक छः वर्षका बालक भी उठा। बोली, “भाइयो, मेरे पतिके दिलमें किसानोंकी सेवा करनेकी सच्ची लगन थी। इसीलिए उन्होंने अपने कारबारको छोड़कर इस सेवान्त्रतको अपनाया था। अपने शेष जीवनको वह आप भाइयोंकी सेवामें ही बिताना चाहते थे। पर अब वे इस दुनियामें न रहे। अपना काम अधूरा छोड़कर वे वहाँ चले गये, जहाँसे कोई वापस लौट नहीं सकता। पर भाइयो, वे न रहे तो क्या हुआ, मैं तो हूँ। उनके अधूरे कामको मैं पूरा करूँगी, आप विश्वास रखें, उनके स्थानपर मैं अपना जीवन आपकी सेवाके लिए अर्पण कर रही हूँ।”

चन्द्राने ये शब्द सुने, आवाज परिचित जान पड़ी। उमी समय पामका व्यक्ति बोल उठा, “यह वही स्त्री है।”

“कौन?”

“वही जो मोरी दरवाजेके बाहर गरीबोंकी बस्तीमें भोपड़ी डालकर रहती है। बेचारी बड़ी मेहनत करती है। गरीब है, किन्तु क्या मजाल कि कभी आह करती हो। इसका पति गरीब-दुखियोंकी बड़ी सेवा करता था। हालमें ही उसकी मृत्यु हो गयी है।”

माथी बोला, “सुना, उसका पति मगहूर फोटोग्राफर था।”

“हाँ, मगर दुकान बन्दकर देश-सेवामें लग गया, होम्योपैथीकी दवाइयाँ लेकर गाँव गाँव घूमने लगा। फिर औरोंको मौतसे बचाते-बचाते खुद मौतका मेहमान बन गया।”

आवाज हुई, “सुनो, सुनो!”

वह कह रही थी, “भाइयो! यह मेरा बच्चा है, इसकी बात सुनो।”

और बालक बोलने लगा, “मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप बड़े हैं, मैं आपका बालक हूँ, देखिये मैं खदर पहनता हूँ, मेरी माँ कातती है; आप भी कातें। हमारा देश भारत है। भारत गरीब है। हमको देशकी ही चीजोंको अपनाना चाहिये, तभी हमारी गरीबी दूर होगी।”

बच्चा चुप हो गया। वातावरण तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। चन्द्रा चकित, द्रवित बोल उठी, “देखते हो, वह सुमित्रा है और यह विनोद। यह तो कुछ जानती ही नहीं थी।”

वकील साहब बोले, “देख तो रहा हूँ।”

इसी समय कोलाहल मच गया। मंचपर नेता आ रहे थे। लोगोंमें बड़ा उत्साह था। पासके व्यक्ति फिर सुमित्राकी चर्चा करने लगे। लेकिन उस समय व्यवस्था कायम नहीं रह सकी। लोग एक दूसरेको धक्के दे-देकर आगे बढ़ गये।

नेताका भाषण होनेके बाद सभा भंग हो गयी। लोग अपने-अपने घर जाने लगे।

चन्द्रा बोली, “सुमित्रा कहाँ है?”

वकील साहबने इधर-उधर देखा। भीड़ चारों ओर बिखर रही थी। कुछ लोग उनके पास आते जान पड़े। वे किसीसे बातें कर रहे थे। एकने कहा, आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप मेरे साथ चलें। और वहाँ कुछ दिन रहें।

उत्तरमें आवाज स्त्रीकी थी। उसने कहा, “मैं आपकी कृतज्ञ हूँ, परन्तु मेरे पतिने गावोंके बारेमें जो कुछ बतलाया था वह, इतना दर्द-भरा है कि मैं शहरकी बस्तीमें रहनेकी कल्पना भी नहीं कर सकती। अब वे नहीं हैं। उन्हींकी तरह मुझे भी रहना चाहिए। आप सब गावोंमें जायें, और किसानोंकी गरीबी दूर करनेका उपाय सोचें।”

बालक बोल उठा, “माँ, पिताजी कहते थे, गाँवोंके लोग भूखे रहते हैं।”

सुमित्राने बालकको अपने पास खींचते हुए कहा, “तुम्हारे पिताजी ठीक कहते थे। इस अभागे देशमें कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो भूखे ही सड़कोंपर नंगे उछाड़े पड़े रहते हैं। और फिर, यह सब देशमें धनकी कमीके कारण नहीं है। वे कहते थे, हमारे देशमें अब भी बहुत धन है...।”

साथके व्यक्तिने अपनी बात दोहराते हुए फिर कहा, “आप ठीक कहती हैं, परन्तु फिर भी आप अकेली हैं, वहाँ रहनेसे...।”

वह बीचहीमें बोल उठी, “अकेला आदमी सबसे शक्तिशाली होता है; यह बात उनके जीवनसे मैंने सीखी है। आप इस बातको क्यों नहीं समझते।”

वे अब चन्द्राके बहुत समीप आ गये। चन्द्राने चकित होकर सुमित्राको देखा। स्तम्भित होकर उसकी बातें सुनीं और द्रवित होकर चाहा—पुकारें, “सुमित्रे !” कि सुमित्राने उधर देख लिया। वह भीड़ और अन्धकारके कारण चन्द्राको पहचान नहीं सकी, लेकिन चन्द्राने सुमित्राकी आँखोंमें प्रकाशकी तीव्र ज्योति स्पष्ट देखी। वह काँप-काँप उठी—इतनी दृढ़ता ! इतना विश्वास ! ! उससे खड़ा नहीं रहा गया। उसने शीघ्रतासे पतिकी बाँह पकड़कर कहा, “चलो ! हम जल्दी घर लौट चलें !”

वकील साहबने अचरजसे प्रतिहत होकर चन्द्राको देखा। बोले, “पर तुम काँप क्यों रही हो ?”

लेकिन प्रश्नका उत्तर देनेके लिए चन्द्रा बहुत आगे बढ़ गयी थी।

१९४३]



स्नेह

उमा स्नान करके पूजाकी कोठरीकी ओर जा रही थी। उसने देखा : शशिकी कोठरीमेंसे दो आँखें बड़ी उत्सुकतासे उसकी ओर ताक रही हैं। उससे रहा न गया। वह वहाँ जाकर बोली, “क्या कहते हो, शशि?”

शशि काँप उठा। बोला नहीं।

उमाने फिर कहा, “बच्चे! हम आ गये हैं। क्या कहते हो?”

शशि फिर भी नहीं बोला। उसने केवल उमाकी ओर देख भर लिया। उसकी आँखोंमें पानी उमड़ आया था।

उमा कातर हुई। उसने कहा, “तुम रोते हो! क्यों बच्चे?” इस बार शशि बोला, “चाची! तुम चली जाओ, नहीं तो ताई आकर मुझे मारेगी।”

“क्यों मारेगी?”

“यह तो मैं नहीं जानता”—शशिने भोलेपनसे कहा, “पर ताई मुझे किसीसे बातें करते देख लेती है तो मारा करती हैं।”

“हमारे साथ बात करते देखकर वे नहीं मारेंगी। आओ! तुम हमारे साथ चलो।”

“नही, चाची। हम हाथ जोड़ते हैं। तुम चली जाओ। ताई आती होगी।”

शशिकी आँखें फिर भर आई। उमा सहसा कुछ न कह सकी। उसका हृदय शशिके लिए व्याकुल हो उठा। वह अभी इस नये घरमें बहू बनकर आई है। वह न शशिको समझ पाती है, न अपनी विधवा जेठानी निरूपमाको। जिस दिन उसने समुरालमें पैर रखा था उसी दिन निरूपमाने उसे समझा दिया था, “बहू-रानी! इस अभागे

बालकको मुँह न लगाना।” उमाने मोचा था यह बालक अवश्य शैतान होगा। परन्तु इन चार दिनोंमें ही उसे मालूम हो गया, बालक शैतान नहीं है। उसका एकमात्र अपराध यही है कि वह बिना माँ-बापका है।

यह भी क्या अपराध है—उमा वही खड़ी-खड़ी मोचती रही।

और उधर पूजाघरमें उमाको न पाकर निरुपमा वही आ गई। उसने उमाको शशिकी कोठरीके पास खड़े देखा। वह चिल्ला उठी, “जो जान बूझकर साँपके मुँहमें अँगुली डाले उसे कौन बचा सकता है? बहुरानी! मैं अब भी कहती हूँ, तुम शशिको मुँह न लगाओ।”

उमा चौंककर बोली, “मैंने क्या किया जीजी?”

“तुम शशिके कमरेमें क्यों गई थी”,—निरुपमाने शासनके स्वरमें पूछा।

उमा काँप काँप आई। उसने इतना ही कहा, “जीजी! तुम इस बालकसे इतनी नाराज क्यों हो?”

निरुपमा उसी तरह बोली, “नाराज क्यों हूँ, यह जानना चाहती हो? अरे बहू! उस राक्षसने पैदा होते ही अपने माँ-बापको खा डाला है। तनिक बड़ा होते ही अपने ताऊको भी यह निगल गया, और तुम पूछती हो इसका अपराध क्या है?”

और उसने झपटकर बालकको कमरेसे बाहर निकालकर खड़ा कर दिया। बोली, “मैं जानती हूँ, मैं इसका गला नहीं घोंट सकती, परन्तु बहुरानी! अपने भरे घरको फिरसे सूना करनेकी हिम्मत भी मुझमें नहीं है।”

उमः हतभागिन-सी निरुपमाको देखती ही रह गई। वह न बोल सकी, न जा सकी।

×

×

×

और दिनपर दिन बीतते गये। नई बहू उमा अब पुरानी हुई; परन्तु शशिके प्रति निरुपमाकी कठोरता समयके साथ-साथ बढ़ती गई।

एक दिन साहस करके उमाने अपने पतिसे कहा, “आप जीजीको ममभाते क्यों नहीं ?”

अमूल्य बाबू अचरजसे बोले, “किसलिए उमा ?”

“कि वे शशिके प्रति इतनी कठोर न हों !”

“तुम नहीं जानतीं, उमा ! भाभी उमे बहुत प्यार करती हैं, परन्तु प्रकट करना नहीं चाहतीं, इसलिए वे इतनी कठोर हैं।”

उमा अचरजसे बोली, “प्रेममें क्या कठोरता होती है ?”

“हाँ ! होती है। जब संघर्ष होता है, तब प्रेम ताड़नामें बदल जाता है।”

“नहीं !” उमाने कहा, “कठोरता ईर्ष्यामें होती है। एक दिन जब यातना सहते-सहते शशि मर जायगा, तब जीजी क्या उस प्रेमको लेकर चाटेंगी ?”

कहते-कहते उमाकी आँखें छलछला आईं। और उमी समय शशिकी चीत्कार उसे सुन पड़ी। दोनों चौंक पड़े। उमा जल्दीसे उस ओर चली गई। उसने देखा निरुपमा शशिको मार डालनेपर तुली है और बालक बिलबिलाकर कह रहा है, “इस बार माफ कर दो ताई ! अब नहीं करूँगा।”

उमासे यह न देखा गया। उसने निरुपमाके पैर पकड़ लिये। बोली, “अब छोड़ दो जीजी !”

निरुपमाने रुककर तीव्र दृष्टिसे उमाको देखा, मानो कहा, “तुम्हें बीचमें बोलनेका क्या अधिकार है ?”

उमाने पूछा, “बात क्या थी, जीजी !”

क्रोधसे भरी निरुपमा बोली, “तुम्हारे लाड़की बात थी बहू ! अब लड़का चोरी भी करेगा। मैं कहती हूँ मेरे घरमें यह न होगा ! मैंने सबेरे पाँच रसगुल्ले गिने थे। अब चार हैं।”

इतना कहकर क्रोधसे धम-धम करती हुई वे चली गई। उमाने देखा,

उनकी आँखोंमें पानी था। उसके हृदयको ठेस लगी और तीव्र स्वरमें उसने पूछा, “क्यों रे! तूने रसगुल्ला चुराया था।”

शशिने बिलखते हुए कहा, “चाची। कलसे भूखा था। तुमने परसों जो मिठाई दी थी उसके कारण ताईने मुझे रोटी नहीं दी।”

वह ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा, “चाची! बड़ी तकलीफ होती है। मुझे बचा लो, मैं फिर चोरी न करूँगा...”

वह आगे न बोल सका! संज्ञाहीनसा होकर गिर पड़ा।

उमाने यह सब देखा और चीखकर वह भी वहीं गिर पड़ी।

×

×

×

और तीन दिन बाद :

उमाको बड़े ज़ोरका बुखार चढ़ा हुआ था। अमूल्यको डर था कि कहीं उमाकी बीमारी घातक न हो। वह बार-बार बेहोश हो जाती थी। वह गर्भवती थी। निरुपमाने उसकी यह दशा देखकर कहा था, “मैंने इसे कई बार मना किया, अमूल्य। उस अभागे बालककी छाया भी कष्टकी छाया है।”

अमूल्य मुस्कराकर रह गये और थोड़ी देर बाद जब उमाने आँखें खोलीं, तो उसका हाथ अपने हाथमें लेकर बोले, ‘उमा, तुम्हें क्या हो गया?’

उमाने उन्हें देखा और बोली, “शशि कहाँ है?”

“स्कूल गया है।”

“उसे बुला दो। मैं अब न बचूँगी।”

अमूल्य उसके ऊपर झुक आये और प्रेम भरे स्वरमें बोले, “ऐसे मत बोलो उमा!”

उमाने उसी तरह कहा, “आपको दुःख होता है, पर मैं क्या करूँ? मेरे कारण उस बालकको कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे एक बार मेरे पास ला दो।”

इधर ही आती हुई निरुपमाने उन वाक्योंको सुना। वह बोली,

“जिसके कारण तुम इस दशाको पहुँच गई, उसकी देखनेकी साध अब भी बाकी है। तुम्हें उसकी छायासे भी बचना चाहिए, बहू !”

“तुमने यह बया कहा, जीजी”—उमाने हृदयके आवेगको रोकते हुये कहा।

“शशि तब उसके मामाके यहाँ भेजे देती हूँ। इस अभागि बालकके कारण मैं अपनी चाँद-सी बहूको नहीं खो सकती।”—कहते-कहते निरुपमाकी आँखें भर आई।

उमा कोई उत्तर नहीं दे सकी। भावावेशसे उसकी जिह्वा हँधसी गई। उसने कातर दृष्टिसे अपने पतिकी ओर देखा, मानों उसने कहा, “ऐसे तो मैं और भी जल्दी मर जाऊँगी।”

और जब निरुपमा चली गई तो अमूल्य बोले, “मैं कहता हूँ उमा ! कलसे हम दूसरे मकानमें चलेंगे !”

“तब क्या होगा”—उमाने अचरजसे कहा !

“तुम भाभीके अत्याचारको नहीं देख सकोगी।”

“तुम कैसी बातें करती हो जी ? शशिको जब भी और जहाँ भी दुःख होगा तो क्या मेरी आत्मा तड़प न उठेगी।”

उसी समय अमूल्यने खिड़कीके परदेपर किसीकी परछाँही देखी। उन्हें समझते देर न लगी। उन्होंने खिड़की खोल दी। वह शशि था। अमूल्यको देखकर वह शीघ्रतासे लौट चला।

अमूल्य बोले, “शशि, इधर आओ।”

उमा चौंककर बोली, “शशि है !”

लेकिन शशि रुका नहीं। अमूल्यने उमासे कहा, “जिसे तुम स्नेह करती हो, जिसे तुम सुखी देखना चाहती हो, उसके लिए तुम्हें यह मकान छोड़ना ही होगा।”

उमा बोली, “त्याग इसमें क्या है ? पर सोचती हूँ क्या हम कायर नहीं हैं ?”

“परन्तु शशिके दुःखका प्रधान कारण तुम हो, उमा ! तुम बीचमेंसे हट जाओगी तो भाभी इतनी कठोर न होंगी !”

उमाने सोचा—अमूल्य ठीक कहते हैं। दूसरेके अधिकारकी वस्तुको अपना बनाकर कौन सुखी रहा है ? शशि जीजीसे अलग नहीं हो सकता ! और न जाने क्यों उस अभागे बालकपर मेरी इतनी ममता है ! न जाने क्यों ?

उमाका हृदय करुणासे भरने लगा। उसने कहा, “यदि हमारे चले जानेसे उसके कष्ट कम होते हैं, तो हमें चले जाना ही होगा।”

उसने कह तो दिया पर हृदयमें वेदना उमड़ पड़ी और वह सिसक-सिसककर रोने लगी ?

×

×

×

उमाकी गोदीमें अब एक सालका बालक था। शशिके स्कूलके रास्तेमें उमाका मकान पड़ता था। उस मकानकी खिड़कीके पास पहुँचकर शशि रोज चाचीको नमस्ते करता और छोटे अशोकसे हँस-हँसकर बोलता, उमा मोचती शशि अब प्रसन्न है। वह ठीक वृत्तपर खिड़कीपर आ खड़ी होती। कभी वह अन्दर भी आता। उमा पूछती, “क्यों शशि ! कैसे हो ?” शशि कहता, “अच्छा हूँ, चाची ! ताई अब मारती नहीं है।”

उसकी आँखें भर आती। वह मन ही मन कहती—शशि सुखसे रहे, यही मुझे प्रिय है। लेकिन वह सोचती निरुपमा ऐसी क्यों है ? पर इसका उत्तर उसने कभी नहीं पाया।

इसी बीचमें एक दिन उमाने देखा शशि नहीं आया। उसे दुःख हुआ। सोचा शायद उसे बुखार चढ़ा होगा, पर कई दिन बीत गये, शशिको उसने नहीं देखा। वह अब पुराने घरमें नहीं जा सकती थी, क्योंकि निरुपमा उसके अलग होनेसे बहुत क्रुद्ध थी। उसका हृदय घबरा उठा—शशि

सचमुच बहुत बीमार है । लेकिन वह क्या करे ? उसने अमूल्यसे कहा, “तुम जरा उस घर जाकर देखो तो शशि कैसा है ?”

अमूल्यने इतना ही कहा, “मैं अब वहाँ नहीं जा सकता ?”

उमा क्या करे। मन मारकर उसने दो दिन और बिता दिये, पर तीसरे दिन उससे नहीं रहा गया। उसने निरुपमाकी दासीको बुलाकर पूछा, “शशि अच्छा- है, श्यामा ?”

श्यामाकी आँखें सजल हो उठीं। उसने कहा, “वह, तुम्हारी जेठानीने जबसे जाना है कि शशि तुम्हारे पास आता है, तो उन्होंने उसका स्कूल जाना बन्द कर दिया है। उसे खूब मारती है। बेचारा बालक शायद अधिक जी न सकेगा।”

उमा काँप उठी, ‘सच कहती हो, श्यामा !’

श्यामा बोली, “सदासे मैं उनके साथ हूँ। वे नहीं चाहती कोई और शशिसे प्रेम करे।”

“अच्छा चलो श्यामा ! मैं तुम्हारे साथ चलकर जीजीसे पूछूंगी कि प्रेमपर भी क्या किसीका अधिकार होता है ?”

श्यामा बोली नहीं। उमाने अशोकको गोदीमें उठाया और पुराने मकानमें पहुँची। चौकमें शशि चटाईपर लेटा था। वह उसे पहचान न सकी। उसका मुख पीला पड़ गया था। बदनकी हड्डी हड्डी चमक आई थी। वह रोते-रोते विह्वल हो गई।

निरुपमा रसोई-घरमें थी। रोना सुनकर बाहर आई। उमाको देखकर उसका क्रोध उमड़ आया। चीखकर बोली, “तुम यहाँ क्यों आई ?”

उमाने अपनी जेठानीकी ओर तीव्रतासे देखा। बोली, “तुम्हारे अन्तरमें जो आग जली है, उसीकी भूख मिटाने आई हूँ, राक्षसी !”

और उसने अशोकको उठाकर उसके चरणोंपर डाल दिया। आर्द्र-

स्वरमें बोली, “जीजी ! इसे खाकर अपनी आग शान्त कर लो और मेरे शशिको मुझे दे दो !”

निरुपमा उस क्षण स्तम्भित-चकित ब्रुतसी बनकर रह गई ! पर उमाने उसकी ओर देखा भी नहीं। उसने शशिको गोदीमें उठा लिया और चल पड़ी।

१६३४]



अगम-अथाह

गाडीने सीटी दी। रमेशने राहतकी मास खीची कि तभी शीघ्रतासे एक वृद्ध व्यक्तिने खिडकीके पास आकर कहा, “मुझे अन्दर आ जाने दीजिये।”

जैसे उन्होंने ततैयोके छत्तेमे हाथ डाल दिया। एक साथ अनेक क्रुद्ध आँखें उस ओर उठी। मोभाग्यसे यह सतयुग नहीं था, नहीं तो विश्व-मित्र या दुर्वासकी तरह वे उस वृद्धको वही भस्म कर देते। हुआ यह कि रमेशके मित्रने चुपचाप दरवाजा खोल दिया। वृद्ध हाफते-हाफते अन्दर घुस आये—घस आये क्योंकि अनेक नवयुवकोने उनको बाहिर फेंक देनेकी पूरी-पूरी कोशिश की थी। आ गये तो देखा—उनकी देह काँपती है, चेहरा झुर्रियोंसे भरा हुआ है और आँखोमे ऐसा कुछ है कि न देखते बनता है, न दृष्टि हटानेको जी करता है। आँख जैसे बन्द होती है कि हरहराकर फिर खुल जाती है। फिर तो हृदयमे धड़कन ही नहीं होती, ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आगिसे चौरन लगा है।

गानी धीरे-धीरे गति पा रही थी और दूसरे लोगोका ध्यान उस वृद्धकी ओर बढ़ चला था। वे भी जो किसी गहरे वाद-विवादमे व्यस्त थे, धीरे-धीरे फुसफुसाते और फिर चुप होकर उन्हे देखने लगते। वे दयनीय आर कम्पन, पाखानेके पास खड़े थे। सामनेकी बर्थपर जो एक अधेड़ सज्जन बैठे थे, वे एक टक वृद्धकी ओर देख रहे थे। सहसा वे पीछेको खिसके, बोले, “आप यहाँ बैठ जाये।”

वृद्ध चौंके, “जी।”

“आप यहाँ बैठ जाइये।”

वृद्धने ऐसे देखा जैसे स्वयं पानी-पानी हो चले हों, फिर बैठते-बैठते कहा, “भगवान् तुम्हें सुखी रखे, भइया !”

अधेड़ व्यक्तिये फिर पूछा, “आप कहाँ जा रहे हैं ?”

“कहाँ जा रहा हूँ ?” जैसे किसीने वृद्धके अन्तर्मन पर चोट की थी। एक क्षण ऊपर देखा, वहाँ, “क्या बताऊँ, भइया ! जहाँ भी भाग्य ले जायगा, जाऊँगा।” कहते-कहते झुर्रियोंमें एक हल्कासा कंपन हुआ। ओठ हिले, पलके मुँद-सी गयी। खली तो उनमें पानी नहीं था, हल्की चिप-चिपाहट थी। उस व्यक्तिके पास एक युवक बैठा था। वह बोल उठा, “आप दिल्ली रहते हैं ?”

“हाँ बेटा !”

“कोई दुख है आपको ?”

तब तक एक और अधेड़ व्यक्तिका ध्यान उधर खिंच गया। वे बोले, “शायद आपका कोई रिश्तेदार खोया गया है ? आजकल गुमशुदगीकी घटनाएँ बहुत हो रही हैं।”

“जी शायद वह आपका बेटा है ?” तीसरे आदमीने कहा।

रमेशने एक बार उन आदमियोंको देखा, फिर उस वृद्धको। फिर उन आदमियोंको देखा और फिर उस वृद्धको कि वृद्ध बोले, “हाँ बेटा, तुम ठीक कहते हो। मेरा बेटा ही खोया गया है।”

“मैंने कहा था न”, अधेड़ सज्जन बोले, “वह तो आपकी सूरत ही कह रही है। बेटेका दर्द अलग होता है।”

“क्यों जी, दिल्लीमें था ?”

“जी हाँ”

“कित्ता बड़ा था जी ?”

“मोलह वर्षका था।”

डिब्बेकी एकमात्र स्त्रीने अपने बच्चेको गोदमें अन्दरको खींचकर धोतीका पल्ला उठा दिया। ऊपरकी बर्तनपर लेटे हुए महाराष्ट्रीय सज्जनने

अब नीचे भाँका। शोर आप ही आप बुदबुदाहटमें बदल चुका था। एक व्यक्तिने पूछा, “क्यों जी, कैसे चला गया था?”

“जी स्कूल गया था।”

“और फिर लौटकर नहीं आया। मेरे एक दोस्त है, उनका लड़का भी स्कूल गया था, आज तक नहीं लौटा।”

सुनकर वृद्ध कुछ अस्पष्ट स्वरमें बुदबुदाये, पर प्रश्नकर्ताने फिर प्रश्न किया, “कितने दिन हो गये जी?”

“यही दो महीनेसे कुछ ज्यादा।”

“दो महीने? तब तो दिल्लीमें बड़ी मार-काट मची हुई थी।”

वृद्धने गहरी सांस खींची, कहा, “तभीकी बात है। स्कूलमें इम्त-हान हो रहे थे। अचानक कुछ लोगोंने हमला कर दिया।”

“मुसलमानोंने किया होगा।” महाराष्ट्रीय सज्जन बोल उठे।

“जी नहीं।”

“तो?”

“तो आप समझ लीजिये। उन लोगोंने एक जातके सभी लड़कोंको मार डाला।”

“सबको?”

“जी हाँ।”

अवाक्-अपलक यात्रियोंने एक दूसरेको देखा। सबके मन भय और वेदनाके घुएँसे घुट रहे थे। एक व्यक्तिने पूछा, “कितने होंगे जी?”

इसका जवाब दिया रमेशके मित्रने, “कितने थे, यह कभी कोई नहीं जान सकेगा और जाननेका महत्व ही कितना है।”

“पर आपका बेटा क्या...?” ट्रंकपर बैठे हुए युवकने सकुचाते हुए पूछा।

वृद्धके नयन फिर चिपचिपा रहे थे। बोझिल वाणीमें कहा, “कहते हैं, वह डरकर कहीं भाग गया।”

“जी हाँ, हिन्दू, हिन्दूको नहीं मार सकता।”

“अजी कुछ न पूछो, आजकल तो...!”

“आजकी बात नहीं है। आज मुसलमान है कहाँ?”

“है क्यों नहीं?”

रमेशके मित्र हंस पड़े, “मुसलमान अब हिन्दुस्तानमें नहीं हैं, मेरे दोस्त! जो मुसलमान-नुमा सूरतें दिखाई देती हैं, वे उनकी लाशें हैं, चलती-फिरती लाशें।”

और यह कहकर वे और भी जोरसे हंसे। वह हँसी डिब्बे वालोंको बहुत बुरी लगी, जैसे कोई मरघटमें हंस पड़ा हो। महाराष्ट्रीय सज्जनने कहा, “आप पाकिस्तानकी बात नहीं सोचते। वहाँ तो एक भी हिन्दू नहीं बचा है।”

“नहीं बचा है तो अच्छा है; तड़पना तो नहीं पड़ेगा”

नीचे बैठे हुए अधेड़ व्यक्तिने उधर ध्यान न देकर फिर पूछा, “क्यों जी, कुछ अता-पता लगा?”

“जी हाँ, सुना है वह कराची चला गया है। वहाँसे जो लोग बंबई आये हैं, उनसे पता लगा है कि वह भी शायद बंबई आ गया है, वहीं जा रहा हूँ।”

रमेशके पीछे जो व्यक्ति बैठे थे, उन्होंने धीरेसे कहा, “बात समझमें नहीं आती, स्कूलसे भागकर लड़का घर क्यों नहीं आया? कराची क्यों गया और कैसे गया?”

रमेश सबकी बातें सुन रहा था, परन्तु बोलता नहीं था, क्योंकि उसकी दृष्टि बार-बार वृद्ध सज्जनपर जा अटकती थी। वह सोचने लगता था—उस दिन सबेरे जब इनका बेटा स्कूलमें परीक्षा देने गया होगा, तो क्या इन्होंने सोचा होगा कि वह अब नहीं लौटेगा? उसकी माँने प्यारसे उसे दही और लड्डू खिलाया होगा। कहा होगा, ‘बेटा, परचे अच्छे करना और देख, सीधा घर आना! आजकल बुरे दिन हैं।’ और फिर बेटा खिलता हुआ स्कूल गया होगा और फिर सन्ध्याको जब वह बेटेकी राह

देख रही होगी, तब उसने वह दर्दनाक खबर सुनी होगी। तब-तब... रमेश काँपा। उसने गरदनको झटका दिया। उसके नयन भर आये। उसने वृद्धको देखा—वे उसी तरह कह रहे थे, “उसे घूमनेका बहुत शौक था। उमर भी चंचल थी। उसे वे लोग भगाकर ले गये।”

“आपने अखबारोंमें निकलवाया है?”

“जी हाँ। अखबारोंमें निकलवाया है। रेडियोपर भी ऐलान हुआ है, पर आप जानते हैं, वहाँ हमारे अखबार नहीं जाते, न कोई रेडियो सुनता है।”

“जी हाँ। सब कुछ गड़बड़ ही गड़बड़ है।”

रमेशका मस्तिष्क घूमफिरकर फिर वही आ गया। खबर लाने वालेने कहा होगा—स्कूलमें कत्ले-आम मच गया। सब बच्चे मार डाले गये। तब हतभागिनीसी उसकी माँके हृदयसे एक तेज चीख निकली होगी और अपने बच्चेको देखनेके लिए पागलसी आतुर वह बाहिर भागी होगी। किसीने कहा होगा, ‘ठहरो बीबी! वहाँ खतरा है। अभी इन्तजार करो।’ और उसने इन्तजार किया होगा। शायद अब तक कर रही है। अभी भी वह अपने दरवाजेसे बाहिर झाँककर, उस चिर-परिचित मार्गको देखती होगी जिसपर उसका बेटा आता जाता होगा।

रमेशके लिए सोचना असंभव-सा हो गया। वह दिल्लीमें रहता था। उसने उस घटनाकी चर्चा सुनी थी, पर उससे अधिक नहीं जितनी वह आज सुन रहा था। तभी सहसा उसके मित्रने कहा, “सामान उठा लो, रमेश! हम यहीं उतरेंगे।”

गाड़ी धीमी पड़ने लगी और शोर बढ़ चला। रमेशने ऊपरसे होल्डोल उतार लिया। फिर उन वृद्धको देखा—उस धकापेलमें वह उसी तरह शून्यमें ताकते हुए बैठे थे। वह नीचे उतर गया। उतर गया तो जैसे होश आया, परन्तु वृद्धकी भुर्रियाँ और चिपचिपाहटसे पूर्ण दृष्टि वह नहीं भुला सका। वे उमड़-धुमड़कर विचारोंका तूफान पैदा करती ही रहीं। कई दिन बाद जब

लौटकर दिल्ली आना हुआ, तब भी कभी-कभी बिजलीकी तरह वह मूर्ति उसके नेत्रोमें कौंध जाती थी। इन्ही दिनो अचानक एक पुराने मित्र मिल गये। कई बार उनका निमन्त्रण आ चुका था। वास्तवमें उनकी पत्नीका बड़ा आग्रह था। रमेश उन्हें भाभी कहता था। वे कारमें बिठाकर उसे घरपर ले गई। चायका वृत्त था, बिना पुकारे नौकर मेजपर सामान जुटा गया और भाभी चाय तैयार करने लगी। मित्र किसी जमानेमें कालेजके प्रोफेसर थे। कॉंग्रेस-आन्दोलनमें बहुत दिन जेल काटी। अब शरणार्थी-विभागमें कोई बड़ा-सा पद उन्हें मिला था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि चर्चा 'सब रास्ते रोमको जाते हैं' वाली कहावतके अनुसार हर कही होकर शरणार्थियोंकी समस्यापर आ अटकती थी। बातों-बातोंमें रमेश उन वृद्धकी चर्चा कर बैठे। अचरजसे मित्रने मुस्कराकर कहा, "मेरे उन्हें जानता हूँ।"

रमेशने पूछा, "क्या वे आपके पास आये थे?"

"कई बार आये हैं। उनको पूरा यकीन है कि उनका लड़का कहीं न कहीं जिन्दा है।"

"पर क्या यह सच हो सकता है?"

"असम्भव। वह उमी दिन माग गया होगा।"

"पर वह तो हिन्दू था।"

मित्र मुस्कराये, "मौत जान-पात नहीं पूछती। ओर वह तो सामूहिक वध था, बहुत मुमकिन है, हत्यारे उसे न पहिचान सके हो।"

"शायद।"

"ओर नहीं तो वह कहाँ जाता?"

"पर उसकी लाश!"

बात काटकर मित्रने कहा, "ऐसे मौकोपर जो कुछ होता है वह मैं जानता हूँ। कौन कह सकता है, कितनी लाशें उन्होंने जला या दबा नहीं दी होगी। तब तो गिनती कम करनेका प्रश्न होता है।"

भाभीने प्याला ठकसे मेजपर रख दिया और करुणासे उद्वेलित होकर अंग्रेजीमें कहा, “आदमी कितना बर्बर हो गया है !”

मित्र हँसे, बोले, “आदमी वास्तवमें बर्बर ही है। कौन कह सकता है मैं कब तुम्हारा गला नहीं घोट दूंगा। कमसे कम मुझे तो इसमें कुछ असंभव नहीं लगता। और फिर इधर जो कुछ हम देख चुके हैं, वह तो इस संभावना पर मोहर लगाने वाला है। हाँ, यह बात दूसरी है कि कुछ लोग मानते हैं कि एक दिन मनुष्य शारीरिक बलकी तरह बौद्धिक बलका परित्याग करके सम्मिलित जीवनको प्राप्त करेगा। पर जब तक बुद्धि है, बर्बरतासे छूटनेका कोई उपाय नहीं है।”

रमेशने चायकी घूँट भरी और फिर कहा, “भविष्यमें क्या होगा, इसपर विचार करनेसे इतना लाभ नहीं है जितना वर्तमानपर। मैं कहता हूँ, वे क्यों नहीं मान लेते कि उनका लड़का अब दुनियामें नहीं रहा। इस दुखको स्वीकार किये बिना क्या उन्हें शान्ति मिलेगी ?”

“दुख तो यही है”, मित्र बोले, “उन्होंने इस दुखको स्वीकार नहीं किया है। विधिके इस दानका तिरस्कार ही उन्हें साल रहा है।”

भाभीने पूछा, “तुम इसे विधिका दान कहते हो ?”

“कोई चिन्ता नहीं”, वे बोले, “तुम इसे व्यक्तिका दान कह सकती हो।”

रमेशने सिगरेट जलाई और दियासलाईको बुझाते हुए कहा, “तो तुम उन्हें समझाते क्यों नहीं ?”

“समझाना चाहता हूँ”, मित्रने धुएँके उठते हुए बादलोंको ध्यानसे देखा, “पर उनकी आँखें देखकर कलेजा मुँहको आने लगता है। कुछ कहनेको मन नहीं करता। बुद्धि बहुतेरा जोर लगाती है, पर उनकी दृष्टि—रमेश मैं तुमसे क्या कहूँ—सब विचारोंको पाश-पाश कर देती है। तब मैं सोचता हूँ, आज यदि मुझमें नारदकी शक्ति होती तो अपने तपोबलसे, राजाके बेटेकी तरह, उनके बेटेकी आत्माको बुलाकर दिखाता कि जिसे

वे अपना बेटा समझे थे, वह उनका दुश्मन था। तभी तो बुढ़ापेमें तडपाकर चला गया।”

रमेशने उनका प्रतिवाद करना चाहा, पर तभी देखा कोई अन्दर चला आ रहा है, लेकिन यह देखकर कि साहब अकेले नहीं है वह ठिठक गया है। न जाने क्या हुआ, दूसरे ही क्षण रमेश चौककर उठा, “अरे, ये तो वही वृद्ध है।”

मित्र मुड़े, “कोन ?” ओर फिर खड़े होकर कहा, “आइये, चले आइये। ये मेरे मित्र है।”

आज उनके वेशमें इतना ही परिवर्तन था कि हजामत बढ़ गयी थी ओर उसने उनके मुखकी भयकरताको और भी गहरा कर दिया था। वे बैठ गये तो मित्रने कहा, “चाय पियेगे ?”

एक फीकी-सी मुस्कराहट भुर्रियोमें उठी और वही खो भी गयी, बोले, ‘चाय पिउगा, पर पहले मेरी बात सुन लो। मुझे निश्चित रूपसे पता लगा है कि किशोर मुलतान कैम्पमें है।”

“जी, मुलतान ?” मित्रने चौककर सभलते हुए कहा।

“जी हाँ, मुलतान कैम्पमें। बर्इमें एक मज्जन मिल गये थे। वे मिधसे आये थे। मेने उन्हें हुलिया बताया। ठीक उमी तरहका एक लडका उन्होंने मुलतान कैम्पमें देखा था। वही रंग, वही आँखें, वही कपड़े। नीला नीकर, सफेद कमीज, नीली धारीकी जुराबे और काला जूता। माथेपर दाहिनी ओर चोटका निशान भी उन्होंने बताया। अग्रेजी बोलना पसंद करता है और शरारती है।”

रमेशने देखा, कहते कहते वृद्धकी आँखें ऐसी चमकी जैसे घोर अन्ध-कारमें कोई जुगनू चमक उठता है, बार बार चकम उठता है। मित्रने माहस करके पूछा, “पर वह मुलतान कैसे जा सकता है ?”

उन्होंने दृढ़तासे कहा, “वह मुझसे अक्सर मुलतान जानेकी बात कहा करता था। सच तो यह है, उसे पजाब बड़ा प्यारा था। जान पड़ता है,

वह हत्यारेसे जान बचानेके लिए स्कूलसे भाग गया था । स्टेशन पास था । कोई गाड़ी जाती होगी, उसीमें बैठकर चला गया ।”

“हो सकता है ।”

“जी हाँ, यही हुआ है ।”

“तो फिर ?”

“तो आप कृपा करके मुलतान कैम्पके इन्चार्जको लिख दें । ज़रा तसल्लीसे लिख दें । आपकी दयासे उसका पता लग गया तो . . .”

आँसू न जाने कहाँ रुके थे । भुर्रियोंमें अटक-अटककर बहने लगे । रुंधे गलेसे उन्होंने अपनी बात जारी रखी, “आपने मुझपर बहुत मेहर-बानियाँ की हैं । मैं उन्हें नहीं भूल सकता । एक बार और कोशिश कर देखिये । उसकी माँको पूरा यकीन है कि वह मुल्तानमें है ।”

और फिर सदाकी तरह जबसे एक चिट्ठी निकालकर उन्होंने कहा, “उसकी माँने यह चिट्ठी लिखी है । आप भी कैम्प इन्चार्जको लिख दें कि वह उसे समझा दे कि बेटा, तुम्हारी माँ तुम्हारी यादमें तड़प रही है । तुम इसी वक़्त चले आओ; नहीं तो हम दोनों मर जायेंगे ।”

एक बार फिर कुर्तेकी जेबमें हाथ डाला । कई नोट निकाले और बोले, “किशोरकी माँने कहा है, पैसोंकी चिन्ता न करें । जो कुछ है उसीका है ।”

मित्रकी अवस्था बड़ी विषम थी । वे एक टक अपने नीचे धरतीको देख रहे थे । वह न हिलती थी, न डुलती थी । नोटोंकी बात सुनकर उन्होंने दृष्टि उठाई, कहा, “इन्हें आप रखिये । पता लगनेपर यदि ज़रूरत हुई तो मैं फिर मंगवा लूँगा । और देखिये, आप अपना स्याल कीजिये । क्या हालत हो गयी है ! आपको अब समझ लेना चाहिये . . .”

बात काटकर उन्होंने कहा, “मैं सब समझता हूँ । न समझता तो क्या अब तक जोता रहता । पर किशोरकी माँकी बात अलबत्ता है । खाटसे लग गयी है । हर वक़्त दरवाज़ेपर आँखें गड़ाये बैठी रहती हैं । कोई वक़्त-

वेवक्त दरवाजा खटखटाता है, तो चिल्लाकर कहती है—देखो तो कौन है ? शायद किशोर है । ”

फिर जैसे वे कहीं खो गये, जैसे कण्ठ भावोंके उन्मेषमें जकड़ा गया । कई क्षण शून्यमें ताका किये और सन्नाटा गहर गहर कर सबके दिलोंको कचाटने लगा । उन्होंने ही कहा, “आप मेरी चिन्ता न करे । आप बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे । बस आप उन्हें लिख दे । बहुत-बहुत विनती करके लिख दे कि अपना काम है । समझे वे अपना ही बेटा ढूढ़ रहे हैं । ”

और अपनी डबडबाई आँखोंको कोहनीमें पोछकर वे उठे, “तो मैं जाऊँ । आप लिखेंगे ? ”

“जरूर लिखूँगा और हो सका तो मैं आपके जानेका प्रबन्ध भी कर दूँगा । ”

वे मुड़े । श्वाम फूलने लगी, जैसे कोई सपना मिली हो, कहा, “सच ? ”

“देखिये, कोशिश करूँगा । चाय पीजिये । ”

रमेश एक टक उनके मुखको देख रहा था । उन भूरियोमें शिशुकी सरलता उमट रही थी और वे दयनीय तथा डरावनी आँखें एक अज्ञान प्रकाशमें भर उठी थी, जेमें वे किसी मुहावने स्पर्शका अनुभव कर रहे थे । उन्होंने कहा, “पियूँगा, एक दिन आप सब लोगोंके साथ अपने घर बैठकर पियूँगा । तबतक किशोर भी आ जायेगा । वह दिन अब दूर नहीं है । मैं जानता हूँ, वह मुलतानमें है, क्योंकि जब घरमें आपके पास आनेको चला था, तो मैंने रास्तेमें एक मुर्दा देखा था । ”

अन्तिम बात उन्होंने बटे धीरेसे कही और कहकर शिशुकी तरह हँस पड़े । रमेशसे देखा नहीं गया । उसने मुँह फेर लिया और वे जिस तरह आये थे उमी तरह चले गये । चाय ठण्डी हो गयी थी और साथ ही उन दोनोंके दिल भी । भाभी जी अन्दर चली गयी थी । कुछ देर उन्हींसे बातें करके रमेश लौट आया । मन उसका और भी अशान्त हो गया था । उसने

मोचा—यह कैसा अप्राकृतिक जीवन है ! इस छलनाका अन्त होना ही चाहिये, होना ही चाहिए।

बुद्धि जब मोचती है तो उसके पास रास्तोंकी कमी नहीं रहती। रमेश-को आखिर एक राह दिखाई दी। एक दिन बड़े नड़के उठकर उसने वृद्धके घर जानेका निश्चय कर डाला। जो कुछ हुआ, वह बुरा था; पर उस वृषेपनको सपदाकी तरह महेजकर रखना तो निरा पागलपन ही नहीं, देशके साथ विश्वासघात भी है। उन्हें साफ़-साफ़ कहना होगा—तुम्हारा बेटा मर चुका है और केवल तुम्हारा बेटा ही नहीं मरा है, अमंख्य माँ-बापोंने अनगिनत गोदीके लाल गंवा कर आज़ादी पायी है। माँके बन्धन काटनेके लिए संतानको प्राण-होम करने ही पड़ने है। मौन आज़ादीका पारितोषक है। इसके लिए तुम्हे गर्वित होना चाहिए।

बहुत हूढ़नेपर उसे घर मिला। एक पंचायती मकानमें उनका कमरा था। कुछ कंपन-सा हुआ। वैसे सर्दिके दिन थे। ऊपरतक कपड़े लाद लेनेपर भी वायु त्वचाका संसर्ग प्राप्त कर लेती थी; इसलिए मफलरको ज़रा ठीक करके दरवानेपर दस्तक दी, तो पता लगा वे खुले पड़े हैं; गिरते-गिरते बचा। तनिक-सा खोलकर भांकना चाहा कि तभी सुना कोई बोल रहा है। ठिठककर मुनने लगा। स्वर नारीका था। लगा, थका होकर भी उसमें प्रार्थनाका आवेग है। सुना—“अच्छा अब उठो भी। क्या दफ़्तर नहीं जाओगे ?”

जवाब मिला, “नहीं।”

“क्यों ?”

“क्योंकि यह सब भूठ है !”

“सुनो तो।”

“कुछ नहीं, किशोरकी माँ ! अब कबतक हम इस भुलावेमें पड़े रहेंगे। कबतक भूठ-मूठ मनको बहलाते रहेंगे। किशोर अब नहीं लौटेगा। वह वहाँ पहुँच चुका है जहाँसे कोई नहीं लौटता और जहाँ...”

आगेके शब्द कण्ठावरोधमें खो गये। रुदनसे फूटी हुई उसांस ही रमेश सुन सका, परन्तु नारीका स्वर और भी दृढ़ था। उसने कहा, “तुम तो यूँ ही दुखी होते हो जी ! भगवानकी माया कौन जानता है ! हमारे गांवके गोविन्द पंडितका बेटा सात सालमें लौटा था। और सुनो तो, मैंने आज सबेरे एक सपना देखा है कि किशोर तुम्हारे पीछे-पीछे दरवाजा खोलकर अन्दर आया है। उसने नीली नीकर, सफ़ेद कमीज, नीली धागीकी जुराबें और काला जूता पहना है। कह रहा है, ‘माँ, मैंने आजका परचा बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा !’ और तुम जानते हो सबेरेका सपना हमेशा सच्चा होता है। लो उठो, मैंने चाय बना ली है। पीकर बड़े बाबूके पास हो आओ। देर हो गयी तो वे दफ़्तर चले जायगे। उठो। उठो भी !”

उसके बाद क्या हुआ, यह जाने बिना रमेश वहाँसे सीधा अपने घर लौट आया। उसे लगा, उस वृद्ध दम्पत्तिका स्वप्न भंग करनेके लिए उसे जिस हिम्मतकी जरूरत थी, उसे प्राप्त करनेके लिए अभी उसे बहुत परिश्रम करना होगा।

अधूरी कहानी

नारोंकी आवाज़ धीरे धीरे धीमी, फिर बहुत धीमी पड़ गई, प्लेटफ़ार्मकी भीड़ छटने लगी और सब लोग अपनी-अपनी सीटपर आ बैठे। इसी बीचमें एक मुसलिम युवक एक हिन्दू सज्जनसे उलझ पड़ा था। युवक कह रहा था, “हम पाकिस्तान नहीं चाहते लेकिन काँग्रेसने मजबूर कर दिया है। हम अब उसे लेकर छोड़ेंगे।”

हिन्दू साहबने तलखीसे जवाब दिया, “पाकिस्तान ! जो पाकिस्तान आप छै सौ बरसकी हुक्मतमें न बना सके उसे अब गुलाम रहकर बनाना चाहते हैं। एकदम नामुमकिन।”

एक भारी वदनके मुसलमान जो सामनेकी बर्थपर बैठे हुए थे बीचमें बोल उठे, “छै सौ नहीं साहब ! हमने नौ सौ बरस हुक्मत की है।”

“जी हाँ ! नौ सौ वर्ष !”

“और उन नौ सौ बरसमें हिन्दू बराबर हमसे नफ़रत करते रहे।”

“जी ! क्या कहा आपने ?” हिन्दू साहब बोले, “नफ़रत करते रहे। जो जुल्म करता है उससे नफ़रत की जाती है, प्यार नहीं।”

उन मुसलमान भाईने बड़े अदबसे कहा, “जुल्म क्या है इसपर सबकी अलग अलग राय है, पर मेरे दोस्त ! आप लोगोंने हमें सदा दुरदुराया। हमारी छायासे भी आपको परहेज़ था। माना हम ज़ालिम थे। पर ज़ालिमके पास भी दिल होता है। वह कभी न कभी पिघल सकता है। लेकिन परहेज़ सदा मोहब्बतकी जड़ खोदता है। वह नफ़रत करना सिखाता है। आपने हमसे नफ़रत की और चाहा कि हम आपसे प्यार करें। यह कैसे हो सकता था ? माफ़ करना मैं आप लोगोंकी क्रूरता करता हूँ। मैं मेल-जोलका पूरा हामी हूँ, पर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछना चाहूँगा।”

हिन्दू भाईकी तेज़ी और तलखी अब कुछ घबराहटमें बदलती जा रही थी और दूसरे मुसलमान साहब अजीब अदासे मुस्कराने लगे थे। तो भी उन्होंने कहा, “जी ! जरूर पूछिये।”

वह मुसलमान भाई निहायत शराफ़तसे बोले, “अछूत हिन्दू हैं, पर आप उन्हें ताक़त सौंप दीजिये तब, मैं पूछता हूँ, वह आपसे प्यार करेंगे या नफ़रत ?”

हिन्दू भाई मिटपिटाये। उन्हें एकाएक जवाब न सूझा। मुसलमान साहब उमी संजीदगीसे कहते रहे, “मैं जानता हूँ आज आप उन्हें अपने बराबर मानते हैं। मेरे ऐसे हिन्दू दोस्त हैं जो इन्सान इन्सानके बीचके भेद को दुनियाका सबसे बड़ा पाप समझते हैं। पर मेरे दोस्त ! भेदकी इस लकीरको बराबर गहरी करनेमें, जाने या अनजाने, जो लोग मदद करते आये हैं उनके पापोंका फल तो आपको भुगतना ही पड़ेगा। आप न समझिये, मैं आपकी क्रीम और मजहबपर कोई हमला कर रहा हूँ। मैं आपके धर्मको समझता हूँ। मेरे दिलमें उसके लिए जगह है। मैं मुसलमानोंकी कमियोंमें भी वाकिफ़ हूँ। पर दूसरोंमें कमी है यह कहकर कोई अपनी कमीको सही साबित करनेकी कोशिश करे, तो वह महज़ अपनी ज़िद और बेवकूफी ज़ाहिर करेगा। जो अमलियत है उसका सामना करना ही इन्सानकी इन्सानियत है। मैं आपको एक छोटीसी कहानी सुनाता हूँ। मुझे वह मेरी वालदाने सुनाई थी।

इतना कहकर वह पलभर रुके। डब्बेमें तबतक सन्नाटा छा गया था। पता नहीं लगा गाड़ी कब चल पड़ी और कब ‘शड़ाक-शू छड़ाक-छू’ की गहरी आवाज़ करती हुई अगले स्टेशनपर जा खड़ी हुई। सूरज डूबने लगा था। एक भाईने स्विच दबा दिया। बिजलीकी हलकी रोशनीसे डब्बा चमक उठा।

तब उन भागी बदनके मुसलमान भाईने कहना शुरू किया, “मेरे दोस्तो ! वान आजमे तीस बरस पहलेकी है। हमारे सूबेमें एक छोटा-सा

क़स्बा है। उसमें हिन्दू मुसलमान सभी रहते हैं। वह सदा आपसमें मोह-ब्वत करते थे। एक दूसरेके दुख-सुखके साथी थे, लड़ते भी थे पर वह लड़ना प्यारकी तड़पको और भी गहरा कर देता था। हिन्दुओंके त्योहारोंपर मुसलमान उन्हें बधाई देते थे। मौसमकी पैदावारका लेना-देना चलता था। झोली जलती तो जौकी वालें पहुँचानेका जिम्मा मुसलमानोंपर था। ईदके दिन हिन्दू अपनी गाय भैंसोंका मारा दूध मुसलमानोंमें बाँट देते थे। सबेरे ही दूध दुहकर वह अपने-अपने दरवाजोंपर खड़े हो जाते और थोड़ा-थोड़ा दूध सब मुसलमानोंको देते। उस दिन उनके हागें (अहागें या अंगीठियों)से धुआं नहीं निकलता था, लेकिन उनके दिलकी दुनिया खिल उठती थी। मैं नहीं जानता यह रिवाज कब और कैसे चला ? इसकी दुनियाद ज़ुल्मपर भी हो सकती है। पर उन दिनों यह मोहब्वत, इन्मानियत और हमदर्दीका सबूत बन गया था। जो हो, उस साल भी ईद आई। मुसलमानोंके घर जन्नत बने। उनके बच्चे फ़रिश्तोंकी तरह खिल उठे। लेकिन दुनिया आखिर दुनिया है। यहाँ जिन्दगीके बरालमें मौत सोती है। रंज हमेशा ख़ुशीका दामन पकड़े रहता है। इसीलिए जब सब लोग हँस रहे थे, एक घरमें एक बालक दुखी मन चुपचाप अपनी अम्माकी चारपाईके पास बैठा था। उसकी अम्मा फ़ातिमा बीमार थी। उसकी साँस फूल रही थी। वह बेचैन हाथ-पाँव फेंक रही थी। लेकिन यह बेचैनी बुखारकी इतनी नहीं थी जितनी न्वाबिन्दकी यादकी। पारसाल अहमदका बाप जिन्दा था, तो घरमें फुल-वाड़ी खिली थी। वह अचानक एक दिन खुदाको प्यारा हुआ, घर वीरान हो गया। आज ईद आई है लेकिन...। एकाएक फ़ातिमाको न जाने क्या सूझा, वह उठकर बैठ गई। उसने हाँफते-हाँफते कहा, “मेरे बच्चे ! कितना दिन चढ़ गया ? तू दूध लेने नहीं गया।”

अहमदने सिर हिलाकर कहा, “नहीं अम्मी !”

फ़ातिमाके दिलपर चोट लगी। उसकी आँखें भर आईं। वह अपनेको कोसने लगी, “मैं कैसी कमीनी हूँ ! सालका त्यौहार आया है और मेरा

बच्चा इस तरह मोहताज बेबस बैठा है। नहीं, नहीं, आज ईद मनेगी जरूर मनेगी।”

और उसने कहा, “जा अहमद ! तू जल्दी जाकर दूध ले आ। मैं तबतक तेरे कपड़े निकालती हूँ। जा जल्दी कर मेरे बच्चे।”

बच्चेने एक बार अपनी अम्मीको देखा और फिर चुपचाप बाल्टी उठाकर बाहर चला गया। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। सब लोग दूध बाँटकर अपने अपने काममें लग गये थे। रास्तेमें उसके साथी हँसते हँसते लोटे और बाल्टी दूधसे भरे चले आ रहे थे। उन्होंने उसे देखा और अचरजसे कहा, “अरे ! तुमने बहुत देर कर दी ? तुम अबतक कहाँ सो रहे थे ! अब तो सब दूध बँट चुका है। मियाँ अब जाकर क्या करोगे ?”

अहमद मुनता और उसका दिल बैठने लगता। लेकिन उनकी बात ठीक थी। वह जिस दरवाजेपर जाता, वहाँ फर्शपर पड़े दूधके छींटोंके अलावा उसे कुछ नहीं मिलता। तब सचमुच उसका दिल भर आया। आँखें नम हो उठीं। लेकिन फिर भी उम्मेदकी डोर पकड़े वह आगे बढ़ा चला गया कि अचानक एक दरवाजेपर किमी न उसका नाम लेकर पुकारा, “अहमद ! अहमद !”

अहमदने रुककर देखा—पुकारनेवाला उसके स्कूलका साथी दिलीप है। वह उसीकी जमातमें पढ़ता है। उसकी आवाज सुनकर अहमद ठिठक गया। दिलीप दौड़कर आया, बोला, “तू अब तक कहाँ था ? तेरी बाल्टी खाली है।”

अहमदकी आवाज भर्रा रही थी। उसने कहा, “अम्मी बीमार है, मुझे देर हो गई।”

“तो।”

“दूध बिलकुल नहीं है ?”

“ना !”

फिर कई पल तक वह दोनों उसी दरवाजेपर जहाँ आध घंटा पहले दूध

लेनेवालोंकी आवाज़ गुँज रही थी, चुपचाप खड़े रहे कि अचानक दिलीपको कुछ सूझा। वह अन्दर दौड़ा गया। जाने-जाते उमने कहा, “तू यहीं ठहर, मैं अभी आया।”

अन्दर वह सीधा अपनी माँके पास पहुँचा और धीरेसे बोला, “भाभी ! कुछ दूध और है क्या ?”

उसकी माँ बोली, “हा ! है, तेरे और मुन्नेके लिए है। तू पियेगा ?”
“नहीं।”

अचरजसे माँ बोली, “तो।”

दिलीप नहीं बोला।

“अरे बात क्या है बता तो।”

“अहमदको दूध नहीं मिला।”

“कौन अहमद ?”

“वह मेरे साथ पढ़ता है। उसकी माँ बीमार है इसलिए उसे देर हो गई।”

कहते कहते दिलीपने अपनी माँको ऐसे देखा जैसे उसने कोई त्रसूर किया हो। पर माँका दिल खुशीसे भर आया। वह मुस्कराई। उसने दूधका भरा लोटा उठाया और कहा, “चल बता कहाँ है तेरा दोस्त।”

दिलीपने तब खुशीकी छलांग लगाई। माँ बेटे दरवाज़ेपर आये। अहमद उमी तरह खड़ा था। दिलीपने हँसते-हँसते कहा, “अहमद ! वाल्टी ला। जल्दी कर !”

दिलीपके लोटेका दूध अहमदकी वाल्टीमें क्या आया उसकी मोहब्बत अहमदके दिलमें समा गई। माँने पूछा, “तेरी माँ बीमार है ?”

“जी।”

“तो सेवैयाँ कौन बनायेगा ?”

“वही बनाएगी !”

“अच्छा हमें भी खिलाएगा न ?”

अहमदने सिर हिलाकर कहा, “जरूर !”

माँ हँस पड़ी। बोली, “भगवान् तेरी माँको जल्दी अच्छा करेगा। जा घर जा, जल्दी आता तो और भी दूध मिलता।”

और फिर दिलीपका हाथ पकड़कर उसकी माँ अन्दर चली गई। उसका दिल बार-बार यही कह रहा था, “परमात्मा मेरे बच्चेका दिल सदा डमी तरह खुला रखे।”

उधर अहमद फला-फूला घर आया। दरवाजेमें घुसने ही उसने पुकारा, “अम्मी ! मैं दूध ले आया।”

फातिमा खिल उठी, “ले आया ? बहुत अच्छा बेटा ! कहाँसे लाया ?”

अहमद खुशीसे बोला, “अम्मी ! बहुत देर हो गई थी। सब दूध बँट चुका था लेकिन दिलीपने अपनी माँसे जाकर कहा और फिर वह मुझे इतना दूध दे गई।”

फिर एकदम बोला, “अम्मी ! दूध थोड़ा तो नहीं है ?”

“बहुत है, मेरे बेटे ! इतना ही बहुत है।”

“हाँ अम्मी ! सब दूध बँट चुका था। यह उसके अपने पीनेका दूध था।”

“अपने !”

“हाँ ! अपने और छोटे भाईके। जगसा रखकर सब उसने मुझे दे दिया।”

फातिमाका दिल भर आया। गद्गद होकर बोली, “खुदा उसका भला करे ! उसने गरीबकी मदद की है।”

और फिर उन्होंने खुशी खुशी ईद मनानेकी तैयारी की। फातिमाका बुखार हलका हो चला। उसने अहमदको नहलाया और कपड़े बदले। किसी तरह वह उसके लिए कुरता पाजामा तो नया बना सकी थी पर जूता पुराना ही था। उसे तेलसे चुपड़कर चमका दिया और टोपीपर नई बेल टाँक दी। अहमद खुश होकर बाहर माथियोंमें चला गया। नमाज़ पढ़ने जाना

था और उसके बाद मेला भी देखना था। सबकी जेबोंमें पैसे खनखना रहे थे। सबकी आँखें चमक उठी थीं ! सबके मन उछल-उछलकर मिठाई और खिलौनोंकी दुकानों पर जा पहुँचे थे। अगरचे अहमदके पास बहुत कम पैसे थे पर क्या हुआ, उसका दिल तो कम खुश नहीं था। कम होता क्यों, अम्मीने उसे बताया था कि उसके अब्बा दिसावर गये हैं, बहुत रुपये लेने। अगली ईदपर लौटेंगे जैसे नियाज़के अब्बा लौटे थे। यह क्या कम भरोसा था। इसी भरोसेको लेकर वह ईदगाह पहुँचा। वहाँ उसने हज़ारों इन्सानोंको एकसाथ नमाज़ पढ़ते देखा। उसके बाद उसने मेलेकी सैर की। चाट, मिठाई, फल, खिलौने सभी तरहकी दुकानोंकी उसने पड़ताल की। उसने साथियोंको भूलते देखा पर वह तो सब कुछ अगले सालके लिए छोड़ चुका था। इसीलिए जो कुछ पैसे अम्मीने उसे दिये थे उन्हें ठिकाने लगाकर वह घर लौट आया। देखा सेवैयाँ वन चुकी हैं। गरम गरम, लम्बी-लम्बी सेवैयाँ उसे बड़ी खूबसूरत लगी। बीच-बीचमें गोलेकी फांक पड़ी थी। शक्करकी वजहसे दूध कुछ पीला हो गया था। उसका दिल वाग-वाग हो उठा। फ़ातिमाने प्यारसे उसे देखा और कहा, “मेरे बच्चे ! जा कटोरा ले आ और खालाके घर सेवैयाँ दे आ। फिर मामूके घर जाना और फिर...”

अहमद बोला, “मवके घर देते हैं ?”

“हाँ बेटा !. ये भी तो हमें भेजेंगे।”

“अच्छा अम्मी, मैं अभी दे आता हूँ।”

और फ़ातिमाने दोनों कटोरोंमें सेवैयाँ भरी और उनपर रूमाल ढक दिया कि कहीं चील झपट्टा न मार ले। अहमद पहले एक कटोरा उठाकर चला लेकिन जैसे ही वह दरवाज़ेसे बाहर हुआ उसे एक बात याद आ गई— सेवैयाँ सबसे पहले दिलीपके घर देनी चाहिए। उसने मुझे दूध दिया था, अपने हिस्सेका दूध !

वस, उसने अपना रास्ता पलटा। खालाके घर न जाकर वह दिलीपके घरकी ओर चला। सोचने लगा, अम्मी सुनेगी तो बड़ी खुश होगी।

बेचारी बीमार है । इसलिए दिलीपका नाम भूल गई । नहीं तो...। यही सोचता हुआ वह खुशी खुशी दिलीपके घर पहुँचा । दरवाजा बन्द था । कुछ देर वह असमजसमे सकुचा हुआ खड़ा रहा फिर हिम्मत करके आवाज दी, “दिलीप !”

कोई नहीं बोला ।

फिर पुकारा, “दिलीप ।”

इस बार किसीने जवाब दिया, “कौन है ?”

और साथ ही कहनेवाला बाहर आ गया । वह दिलीपका बड़ा भाई था । उसने अचरजसे अहमदको देखा और पूछा, “क्या चाहते हो ?

अहमद झिझका, फिर संभलकर बोला, “दिलीप है ?”

“नहीं !”

“उसकी माँ ?”

“माँ ? माँसे तुम्हारा क्या मतलब ?”

अहमदने कहा, “मेरा नाम अहमद है । मैं दिलीपके साथ पढ़ता हूँ । सबेरे उसने मुझे अपने हिस्सेका दूध दिया था ।”

दिलीपका भाई मुस्कराया । तब तक दिलीपकी माँ और चाची भी वहाँ आ गई थी । भाईने कहा, “तो फिर ?”

“जी सेवैयाँ लाया हूँ । इन्होंने (माँको बताकर) कहा था कि...” अहमद अपना कहना पूरा करे कि दिलीपके भाई बड़े जोरसे हँस पड़े, कहा, “भोले बच्चे ! जाओ अपने घर लौट जाओ ।”

चाची बोली, “हम क्या तुम्हारी सेवैयाँ खा सकते हैं । हमें क्या अपना ईमान बिगाड़ना है ।”

माँने निहायत नरमीसे कहा, “बेटे ! मैंने तुमसे मज़ाक किया था । हम तुम्हारे घरकी सेवैयाँ नहीं खा सकते ।”

अहमद एकदम सकपका गया । उसके छोटेसे दिलपर चोट लगी ।

फिर भी उसने हिम्मत बाँधकर कहा, “क्यों नहीं खा सकते ? हमने भी तो आपका दूध लिया था।”

अब भाईने उसे समझाया, “बच्चे ! तुम बहुत अच्छे हो। परमात्मा तुम्हें खुश रखे। लेकिन हम हिन्दू हैं, और हिन्दू लोग तुम्हारे हाथका दूध खा खाना पाप समझते हैं।”

अहमद पाप पुण्य नहीं समझता था। उसे हिन्दू मुसलमानके इतने गहरे भेदका अभी तक पता न था। वह सिर्फ दिलीप और उसकी माँकी मोहब्बतकी बात सोच रहा था। लेकिन यह बात सुनकर उसका दिमाग चकराने लगा। वह खिसिया गया, और जैसे ही घर जानेको मुड़ा उसका हाथ काँपा। सेवैयोंसे भरा कटोरा जोरकी आवाज करता हुआ वहीं उसी चौकीपर गिर पड़ा, जिसपर सबेरे सबेरे दिलीप और दिलीपकी माँने दूधके रूपमें अपनी मोहब्बत अहमदके दिलमें उँडेल दी थी। सेवैयाँ चारों तरफ फैल गई और अहमदकी मोहब्बत पैरोंसे रौंदे जानेके लिए वहीं पड़ी रह गई।

सहसा यहीं आकर कहानीको रुक जाना पड़ा। गाड़ी स्टेशनपर आ गई थी और मुझे यहीं उतरना था। डिब्बेकी संजीदगीको भंग करता हुआ मैं अपना बैग उठाकर नीचे उतर गया। और नीचे आकर उनकी तरफ देखते हुए मैंने कहा, “मैं नहीं जानता आपकी कहानी कहाँ खतम होगी पर इतना जरूर जान गया हूँ, आप ही अहमद हैं।”

अहमद साहब मुस्कराये, उन्होंने कहा, “आपने ठीक पहचाना, मैं ही वह लड़का हूँ।”

मैंने पूछा, “लेकिन सच कहना, मोहब्बतकी वह लकीर क्या आज बिलकुल ही मिट गई है ?”

वह उसी तरह मुस्करा रहे थे बोले, “मेरे दोस्त ! इस दुनियामें मिटनेवाला कुछ भी नहीं है। मोहब्बत तो हरगिज नहीं। सिर्फ हमारी गफलतसे कभी कभी उसपर परदा पड़ जाता है।”

“तो”, मैंने कहा, “विश्वास रखिये, उस परदेको फाट देनेमें हम कोई कसर उठा न रखेंगे।”

इतना कहकर मैं चला आया। कहानी शायद आगे बढ़ी होगी। पर मेरे लिए यह अधूरी कहानी ही दिलका दर्द बन बैठी है। रातके सन्नाटेमें कभी-कभी मेरे दिलमें इतनी टीस उठती है कि क्या बताऊँ...?”

१९४६]



सम्बल

कर्नल सिंहका पूरा नाम सरदार इन्द्रसिंह था। मैं जब पहली बार उनसे मिला था, तो वे आठवीं सिख रेजीमेण्टमें नये-नये लेफ्टिनेंट बने थे। वे उन व्यक्तियोंमें थे जो प्रथम प्रभावमें ही सबको अपना बना लेते हैं। उनका शरीर दृढ़ और नेत्र विश्वासप्रद थे। वे अपनी दाढ़ी-मूछ कुछ इस प्रकार व्यवस्थित करने थे कि उनके सैनिक होनेमें किसीको सन्देह नहीं रहता था। उनकी लंबाई साधारणसे अधिक थी। वे सब दृष्टियोंसे सेनाके योग्य थे। उनकी मस्ती, उनका दबंगपन और अपने कामके प्रति उनकी भक्ति—ये सब गुण उनको अनायाम ही लोकप्रिय बनानेके लिए काफी थे। और सचमुच वे लोकप्रिय थे भी। उनके मित्रोंकी संख्या असाधारण रूपसे अधिक थी। वे मेरे मित्रके मित्र थे और उन्हींके घर पर हमारा पहलीवार मिलना हुआ था, पर अलग होनेसे पूर्व हम दोनों मित्र हो चुके थे। उनकी देशभक्ति और विशेषकर तत्कालीन राजनीतिक अवस्था पर उनके सुलभे हुए विचार जानकर मुझे खुशी हुई थी। उन्होंने मुझसे कहा था, “मैं जानता हूँ, हिन्दुस्तान बहुत जल्द आजाद होगा, और तब हमें उसकी रक्षा करनेका अवसर मिलेगा।”

मैंने उत्तर दिया था, “आप लोग चाहे तो यह देश क्षणभरमें स्वतन्त्र हो सकता है।”

वे हँसे थे, “हाँ, हो सकता है, पर आज उस स्वतन्त्रताको संभालनेके लिए कोई तैयार नहीं है। फिर भी देश-भक्तिके तूफानसे सेना अछूती नहीं है। कब क्या होगा, यह कोई नहीं जानता।”

वे जब चले गये थे, तब मैंने अपने मित्रसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था, “तिवारी, तुम्हारे ये नये सैनिक मित्र निस्संदेह तोपके खाद्यमात्र नहीं हैं।”

तिवारीने मुस्कराकर कहा था, “सेनाके बारेमें तुम काँग्रेसवालोंने ग़लत धारणा बना ली है। तुम समझते हो कि देशभक्तिपर केवल तुम्हारा ही अधिकार है। सिंहसे बातें करो तो तुम्हें पता लगेगा कि वह कितना मुलभा हुआ और प्रगतिशील है, परन्तु दुःख यही है कि जहाँ उसमें इतने गुण हैं, वहाँ उसमें एक बड़ा दुर्गुण भी है।”

“वह क्या ?” मैंने उत्सुकतासे पूछा था।

“सिंह शराब पीता है।”

“वह तो सभी सैनिक पीते हैं।”

“हाँ पीते हैं पर वह कुछ अधिक पीता है।”

“उसकी बातोंसे और उसके वर्तावसे तो इस बातका आभास नहीं मिलता ?”

“उसका भी एक कारण है।”

“क्या ?”

“उसकी पत्नी।”

“मैं समझा नहीं।”

“मि० सिंहकी पत्नी बहुत ही शान्त और समझदार स्त्री है। मैंने कभी उसे अपने पतिसे लड़ते नहीं देखा। शराब पीकर जब वह अट शट बकने लगता है तब वही उसकी सभाल रखती है। वह उसके पीछे-पीछे जाती है और उन लोगोंसे, जिनके साथ उसका पति नशेमें दुर्व्यवहार कर बैठता है, क्षमा माँगती है। सच कहता हूँ, कान्त, वह एक सच्चे मित्रकी तरह, उस मित्रकी तरह जो एक साथ माँ और सखाका हृदय रखता है, सिंहकी देख-भाल करती है।”

“और फिर भी मि० सिंहपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ?”

“पड़ता है, कान्त। तुमने अभी तो कहा था कि उसकी बातों और वर्तावसे इस बातका आभास नहीं मिलता। यह सब उसकी पत्नीके कारण

ही है। सिंहने स्वयं एकबार मुझे कहा था कि वह शराब छोड़ना चाहता है।”

“फिर?”

“पर नहीं छोड़ पाता।”

“क्यों?”

“क्योंकि यदि उसने शराब पीनी छोड़ दी, तो उसकी पत्नी उससे प्रेम करना छोड़ देगी।”

यह बात सुनकर मैं सहसा ठहाका मारकर हँस पड़ा था। तिवारीने भी उसमें योग दिया था। पर कुछ भी हो, मि० सिंह मुझे याद रखने लायक व्यक्ति जान पड़ते थे। वहाँसे लौट आनेके बाद भी मैं अपने मित्रसे अकसर उनकी कुशल-क्षेम पूछ लिया करता था। तिवारीके पत्रोंमें और सब तो ठीक रहता था पर एक शिकायत बराबर रहती थी कि वह भला आदमी दिनपर दिन अधिक शराब पीने लगा है। मुझे भी मि० सिंहसे कुछ उन्सियत हो गयी थी, लिहाजा यह बात मुझे भी चुभती थी। एक-आध बार मैंने यह बात उसे लिखी थी, पर वह बड़ी खूबीसे उस बातको उड़ा जाता था और मुझे किसी लम्बे राजनीतिक विवादमें फँसाकर, उस उपेक्षाको महसूस भी नहीं करने देता था। पहली मुलाकातके लगभग तीन वर्ष बाद मुझे उससे दुबारा मिलनेका अवसर मिला। मैं तब अपने मित्रके घर बैठा हुआ उसकी चर्चा कर रहा था कि पासके मकानपर शोर सुनाई पड़ा। तिवारीने एकदम कहा, “कान्त, सिंह आया है और उसने शराब पी हुई है। चलो, तुम्हें मिला दूँ।”

यह कहकर वह उठा और बाहर चला गया। मैं चुम्बककी तरह उसके साथ लगा हुआ था। शोर पास आने लगा और गालियाँ सुनाई देने लगीं। बाहर आकर क्या देखता हूँ कि मि० सिंह मतवालेकी तरह एक फ़िटनको खींचे ला रहे हैं। उनके नेत्र रक्तवर्ण हैं। साफ़ा खुलकर कन्धोंपर खिसक आनेका प्रयत्न कर रहा है, और उसके बीचमेंसे केशोंमें लगा हुआ कंधा साफ़

दिखाई दे रहा है। वे निरन्तर कह रहे हैं, “साले चोर ! दिन दहाड़े डाका डालते हैं ! तुम्हारे बापकी गाड़ी है, जो उठे और खोल आये ! मैं एक-एकको समझ लूंगा ! एक-एकको शूट न कर दिया तो सिंह न कहना !”

और घरवाले खड़े थे मौन, स्थिर, शान्त—जैसे यह जो हो रहा था वह होना ही था। केवल तिवारीने आगे बढ़कर कहा, “मि० सिंह. कौन ले आया आपकी गाड़ी ?”

मि० सिंहने गाड़ी रोककर घोड़ेकी तरफ़ ध्यान दिया। उसे पकड़कर फ़िटनमें जोड़ा और फिर, जैसे तिवारीके प्रश्नोंको उन्होंने सुना ही नहीं वे गाड़ीपर जा बैठे। वे चलते-चलते बोले, “है कोई माईका लाल जो मुझे रोके ?”

और सचमुच किसीने उन्हें नहीं रोका। वे शानसे घोड़ेको हाँककर ले गये। अचरजकी बात यह कि तनिक भी नहीं लड़खड़ाये, बल्कि गाड़ी चलनेपर वे मुड़े और मि० विजसे, जिनके गराजसे उन्होंने गाड़ी निकाली थी, कहा, “ओय विज ! इस बार माफ़ करता हूँ, आइन्दा ऐसा किया तो गोली दाग़ दूंगा, गोली, समझा ? कमीना कहींका ! गाड़ी खोल लाया !”

उनके जानेके कई क्षण बाद तक हम सब वहीं खड़े रहे, फिर बड़ी गंभीरतासे गरदन हिला-हिलाकर कुछ लोग चले गये ! एक बन्धुने हँसकर विजसे कहा, “वाह विज ! तुमने खूब गाड़ी खरीदी। कैसे आरामसे ले गया, और अब कहीं तोड़कर रख देगा !”

विजने गरदन हिलाकर कहा, “यही तो बात है, पर कुछ कर सकूँगा भी तो मुमकिन नहीं है। सरदारनीसे डर लगता है।”

उन बन्धुने हाँमें हाँ मिलायी, बोले, “कुछ समझमें नहीं आता। सरदारनी इतनी भली औरत है, पर इसकी शराब नहीं छुड़ा सकती।”

“नामुमकिन ! एकदम नामुमकिन ! मैं आज तुमसे कहे देता हूँ”, विजने कुछ कठोरतासे कहा, “यह शराब एक दिन इसको पीकर छोड़ेगी। बिल्कुल निचोड़कर रख देगी !”

पर वह अपनी बात पूरी कर पाते इसके पहले ही एक नारीने वहाँ प्रवेश किया। वह अभी युवती थी। और साधारणतया पंजाबी नारियाँ जितनी सुन्दर होती हैं उतनी सुन्दर भी थी। उसकी सलवार, सलूका और दुपट्टा सब श्वेत रंगके थे। वह तब अशान्त दिखाई देती थी। व्याकुलतासे पूर्ण उसके बड़े-बड़े नेत्र किसीको खोज रहे थे। उसने आते ही पूछा, “क्या सरदारजी इधर आये थे?”

एक बन्धु बोले, “जी हाँ, आये थे।”

दूसरेने कहा, “और वे मि० विजकी गाड़ी खोल ले गये।”

“ओह।” उसने दुःखित होकर जवाब दिया, “मुझे इसी बातका डर था। वे किधर गये हैं?”

उन बन्धुने गाड़ी जानेकी दिशामें संकेत करते हुए कहा, “उधर।”

वह शीघ्रतासे आगे बढ़ी, फिर मुड़ी और विजसे बोली, “मि० विज, मुझे बहुत अफ़सोस है। ईश्वरके लिए आप कोई खयाल न कीजिए! मैं बहुत जल्दी आपकी गाड़ी ले आती हूँ।”

मि० विज शीघ्रतासे बोले, “नहीं-नहीं, कोई बात नहीं, आप उन्हें संभालें, कहीं चोट न खा जाएँ।”

सरदारनी उसकी बात पूरी होनेसे पहले ही मोड़पर ग़ायब हो चुकी थी। कुछ लोग उसके पीछे-पीछे गये, कुछ वहीं खड़े रहे। मैंने तिवारीसे पूछा, “क्या वह हमें इसी तरह कहता है?”

तिवारी बोला, “इससे भी अधिक, कान्त! वह तो सरदारनी उसे अन्दर रखती है, पर जब कभी वह बाहर आ जाता है—और वह अकसर बाहर आ जाता है—तब एक आफ़त बरपा कर देता है। मार-पीट तक हो जाती है। तब बेचारी सरदारनी सबसे क्षमा-याचना करती फिरती है।”

“बड़ी बुरी बात है,” मैंने दुखी होकर कहा।

“बुरी तो है ही। आज ही देखो, वह विजकी गाड़ी खोलकर ले गया।

वास्तवमें यह गाड़ी उसीकी थी, और कल ही उसने इसे विजके हाथ बेचा था ।”

वह अपनी बात पूरी करे कि गाड़ी उधर ही आती दिखाई दी । सरदारनी उसे चला रही थी और सरदार पास ही सीटपर उसका सहारा लिये बैठा था । असलमें उसने अपने शरीरका सारा बोझ उसीपर डाल रखा था । विजके सामने आते ही वह जैसे कूदनेको हुआ । वह लड़ाईकी चुनौती दे रहा था, पर सरदारनीने एक हाथसे उसे अपनी ओर खींच लिया । बोली, “सुनिए तो, वह गाड़ी नहीं माँगता ।”

“नही माँगता ?”

“नही जी ! वह तो इसे एक दिनके लिए मुझसे माँगकर लाया था । आप बैठे रहिये ।”

सरदारने एक बार फिर बन्धन तोड़नेका प्रयत्न किया, पर सरदारनीने पूरी शक्तिसे उन्हे रोके रखा और शीघ्रतासे गाड़ी चलाकर ले गई । चली गयी तो लोग जगे और तरह-तरहकी बातें करने लगे । किसीने सहानुभूति प्रकट की, किसीने क्रोध । जो जानते थे वे दुःखी थे, जो अपरिचित थे वे क्रुद्ध । तिवारीने गरदन हिलाकर कहा, “बेचारी सरदारनी ! वह न हो तो, क्या हो ?”

सं जैसे सो रहा था, एकदम जगकर बोला, “क्यों तिवारी, मि० सिंहको सब कुछ याद रहता है ?”

“प्रायः नही रहता ।”

“दूसरे लोग तो चर्चा करते होंगे ?”

“कोई विशेष चर्चा नहीं होती, क्योंकि उसकी पत्नीका व्यवहार बहुत सुन्दर है । बेचारी घर-घर जाकर सबसे क्षमा-याचना करती है । इसके अतिरिक्त सिंह स्वयं अपने काममें बड़ा चतुर है ।”

बातें करते-करते हम लोग अन्दर चले आये । अन्धेरा हो चला था । मैं अपने दूसरे काममें लग गया, पर कोई एक घंटे बाद मैंने फिर सरदारनीकी

आवाज़ सुनी। कुतूहलके कारण मैं अकेला बाहर आया, देखता हूँ सरदारनी गाड़ी लिये खड़ी है।

तभी मि० विजने बाहर आकर कहा, “आपने अभी क्यों तकलीफ़ की? सबेरे आ जाती।”

“तकलीफ़ तो आपको हुई, मि० विज! सचमुच मुझे बहुत दुःख है। आप कृपाकर उन्हें क्षमा कर दीजिये।”

सरदारनीने बड़ी ही विनम्र और तरल वाणीमें ये शब्द कहे। फिर वह बोली, “क्या करूँ? बहुत समझाती हूँ। वे भी बहुत कोशिश करते हैं, पर वक़्त आनेपर वे जैसे बेबस हो जाते हैं। आप कुछ ध्यान न कीजिये, मि० विज। अब ऐसा नहीं होगा।”

मि० विजने कहा, “नहीं-नहीं, मिसेज़ सिंह! मैं सब कुछ जानता हूँ। मुझे कुछ खयाल नहीं है।”

“आपने क्षमा कर दिया न?”

मि० विज हँस पड़े, “जी हाँ!”

मिसेज़ सिंह मुझसे परिचित थीं। वे मेरे पास आयीं। मैंने पूछा “मि० सिंह अब तो ठीक हैं?”

“हाँ, अब वे सो रहे हैं।”

“वे बहुत भाग्यशाली है।”

“क्या?”

“जी हाँ! वे बहुत भाग्यशाली हैं। उन्हें आप जैसे पत्नी मिली है। नहीं तो...!”

“नहीं नहीं”, मिसेज़ सिंहने शीघ्रतासे कहा, “उनमें एक यही कमजोरी है, वैसे वे लाखोंमें एक हैं।”

“मैं जानता हूँ मिसेज़ सिंह। मैं जानता हूँ। इस देशको मि० सिंहसे बहुत आशाएँ हैं।”

“वे अब कप्तान होनेवाले है,” मिसेज़ सिंह मुस्करायीं।

“हाँ, तिवारीने मुझे बताया था। मैं कल आकर उन्हें बधाई दूंगा। पर मिसेज़ सिंह !”

मैं भिन्नका। मेरा साहस जवाब दे रहा था। मिसेज़ सिंह अचरजसे मुझे देखते हुए बोली, “कहिए।”

“आप कुछ दिन उनसे अलग रह सकें तो अच्छा है।”

मैं एकदम बोला और चुप हो गया। पर मिसेज़ सिंह उसी शान्तभावसे बोलीं, “ओह, मि० कान्त ! आप मेरे पतिको नहीं जानते। मैं जानती हूँ, तब तो वे बिलकुल बिगड़ जायेंगे। बिलकुल। कोई देखनेवाला नहीं रहेगा।”

मैंने सिर हिलाया, “हाँ, यह तो है, पर फिर भी...।”

“मैं कहती हूँ, मिस्टर कान्त”, मिसेज़ सिंहने मेरी बात सुने बिना और भी बलपूर्वक कहा, “मेरे कारण और लोग भी उनका ध्यान रखते हैं। मैं नहीं रहूँगी, तो सब मजाक उड़ाने लगेंगे।”

मैं कुछ जवाब न दे सका। वस्तुतः मिसेज़ सिंहने मुझे जवाब देनेका अवसर ही नहीं दिया। वे बोलीं, “हाँ, अब वे कप्तान होनेवाले हैं। शायद कुछ परिवर्तन हो।”

मुझे हाँमें हाँ मिलानी पड़ी और दो-चार इधर-उधरकी बातें करके वे चली गईं। मुझे भी लौटना था। अचानक तार आ जानेके कारण मैं मि० सिंहसे मिल भी नहीं सका। तिवारीके पत्रोंसे कभी-कभी उनका समाचार मिलता रहता था। वे कप्तान बन चुके थे। और शराब पीनेकी उनकी आदत उनके गुणोंके साथ प्रगति कर रही थी। साथ ही यह भी आश्चर्यजनक बात थी कि उनके इस अवगुणका उनके गुणोपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, फिर भी मुझे उनकी अवस्थापर खेद था और मैं समझता था कि किसी दिन उनका पतन हो सकता है। पर मैं किसी निर्णयपर पहुँचूँ इससे पूर्व मुझे पता लगा कि कैप्टेन सिंह दूर दक्षिणमें चले गये हैं। फिर बहुत दिनोंतक उनका कोई समाचार नहीं मिला। इधर जब मैं तिवारीको

पत्र लिखने ही वाला था तभी अचानक एक दिन उसका एक लंबा पत्र मुझे मिला। उसने लिखा था, 'कान्त, तुम्हें आज मैं एक बुरी खबर दे रहा हूँ, गत सप्ताह सिंहकी पत्नीका देहान्त हो गया।'

मुझे विश्वास न आया। मैंने उस पत्रको फिर पढ़ा। कई बार पढ़ा। मिसेज सिंह निस्संदेह मर चुकी थीं। मैं काँप उठा। मेरे नेत्रोंके सामने उस अद्भुत नारीका चित्र उभर आया। उसकी सुशीलता, सुदृढ़ता और शालीनता मेरे हृदयपर अंकित थी। वह टीसने लगी। मैं रो पड़ा। मुझे लगा, मानो मेरा अपना प्रिय चल बसा है। जिन परिस्थितियोंमें उसकी मृत्यु हुई थी उससे मुझे और भी सदमा पहुँचा। बात यह थी कि बहुत दिन बाद तिवारी और सिंह आदि अनेक मित्र एक स्थानपर मिले थे। उन्होंने एक दिन नदी किनारे पिकनिक करनेका प्रबन्ध किया। तिवारीने लिखा था, 'मिसेज सिंहने सब प्रबन्ध अपने आप किया। खाने-पीनेका सारा सामान अपने आप बनाया और बनवाया। सब लोग पहुँच चुके थे। अन्तिम फेरेमें मैं तथा सिंह और मिसेज सिंह सामान लेकर जा रहे थे। मैं जीप चला रहा था। मस्तीका आलम था। सब कहकहे लगा रहे थे। कैप्टन सिंहने उस दिन शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस बातको लेकर हम लोगोंमें विशेष मजाक हो रहा था कि तभी मैंने देखा—सड़कपर जाने वाले कारवाँमेंसे दो ऊँट बिगड़ गये हैं। मैं चौंका और मैंने जीपको बचानेकी कोशिश की, पर जिधर मैं मुड़ा उधर ही ऊँट दौड़े। मैं दूसरी ओर मुड़ा पर ऊँटोंने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि मैं जीपको न संभाल सका। वह एक पेड़से टकराकर उलट गई। मिसेज सिंहके अतिरिक्त सब लोग दूर जा पड़े। पर वे नीचे पँस गयीं। और कुचली गयीं। चोट सबको लगी, पर वह भयंकर नहीं थी। किसी तरह हम लोगोंने मिसेज सिंहको अस्पताल पहुँचाया। वे बेहोश थीं और उसी बेहोशीमें तीसरे दिन उनकी मृत्यु हो गई। कान्त, मैं तुमसे क्या कहूँ! तुम्हें विश्वास नहीं आएगा। कैप्टन सिंह अपनी पत्नीको बेहद प्रेम करते थे। तुम जानते हो,

उनके कोई सतान नहीं थी। उनकी माँने अनेक बार उनसे दूसरा विवाह करनेको कहा पर उन्होंने सदा ही दृढ़तासे ऐसे प्रस्तावोका विरोध किया। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था, “तिवारी! इस देशको आदमियोंकी नहीं, प्रेमकी जरूरत है। मैं भाग्यशाली हूँ। मुझे प्रेम मिला है। उसे छोड़कर मैं गुलामोकी सख्या बढाऊँ। ऊँहूँ! यह कभी नहीं होगा।” और उन्होंने विवाह नहीं किया। तुम कल्पना कर सकते हो, उन्हें कितना सदमा पहुँचा होगा। वे प्रस्तर-प्रतिमा बने हुए हैं। यत्रवत् सब काम करते हैं, पर उनकी आँखोसे एक बूँद आँसू नहीं टपका है। वे किसीसे बातें करना पसन्द नहीं करते। उन्हें मानो इस अनहोनीपर विश्वास नहीं आ रहा है। विश्वास तो मुझे भी नहीं आता। और जब मैं यह सोचता हूँ कि यह सब मेरे हाथोसे हुआ, तो सच कहता हूँ मर जानेको जी चाहता है। कल मैं सिंहके पास गया था। वहाँ जाकर मैं अपनेको न रोक सका, रो पड़ा। मैंने कहा, “सिंह, मैंने तुम्हारी पत्नीकी हत्या की है। तुम मुझे मार डालो।” वह कुर्सीपर बैठा हुआ था। बैठे-बैठे ही बोला, “तिवारी, यदि जीपको वाणी मिले तो शायद वह भी यही कहेगी जो तुमने कहा है।” और वह चुप हो गया। उसने उस एक वाक्यमे बहुत कुछ कह दिया था। मैं कुछ जवाब न दे सका। वही फिर बोला, “तिवारी, यह सब क्षणिक आवेश है। कुछ दिन बाद हम तुम सब कुछ भूल जायेंगे। यहाँतक कि मैं फिर शराब पीने लगूँगा और मुझे फिर एक पत्नी मिल जाएगी।”

वह पत्र इसी प्रकारकी दार्शनिक-सी लगनेवाली बातोसे भरा हुआ था। मैं उस रात बहुत देरतक जागता हुआ उनपर विचार करता रहा। मैंने कै० सिंहको सवेदनाका एक लंबा पत्र लिखा। मैं स्वयं उनके पास जाना चाहता था, पर कोशिश करनेपर भी तब अवकाश न पा सका। उसके कोई तीन महीने बाद मैं उनसे मिलने गया। तब भी वे सदाकी तरह शान्त थे। उनके नेत्रोमे वही पहलेवाली ज्योति विद्यमान थी, परन्तु उसमे प्रवाह नहीं था। शोले-से उठते थे, जैसे धौकनेपर लुहारकी भट्टीमे उठते हैं।

मुझे देखते ही वे उठे, बोले, “आओ कान्त. आओ। तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया था, और मैं कहूँगा कि मुझे उससे अपूर्व शान्ति मिली थी।”

मैंने धीरेसे कहा, “शान्ति अपने अन्दर है, कैप्टेन। केवल वीर पुरुष उसका उपयोग कर सकते हैं।”

कै० सिंह मुस्कराये। बोले, “अपने अन्दर तो सब कुछ होता है, कान्त। पर कोई बतानेवाला न हो तो ‘दिये तले अन्धेरा’ वाली बात हो जाती है। सुरजीत इतने वर्ष मेरे साथ रही, पर मैं उसे पहचान नहीं पाया। कभी उसका कहना नहीं माना। सदा शराब पी और उसे तंग किया। अब वह नहीं है, तो चाहता हूँ कि शराब न पिऊँ।”

और वे हँस पड़े। बोले, “हैं न यह ढोंग? तीन महीनेसे मैं इस ढोंगको निभा रहा हूँ। मैं जानता हूँ, मैं एक दिन शादी करूँगा और शराब भी पिऊँगा। पिये बिना रह ही नहीं सकता। फिर भी सोचता हूँ, कुछ दिन न पीकर देख लूँ। वैसे भी पुरानी शराबमें अधिक स्वाद होता है।”

मैं चकितसा उनकी बात सुन रहा था। बोला, “तुम शराब पिये बिना नहीं रह सकते।”

“रह क्यों नहीं सकता?” वे बोले, “पर तभीतक, जबतक कोई सँभालनेवाला न हो। जैसे ही मुझे सँभालनेवाला मिला, मैं फिर पीने लगूँगा। उसी दिनके लिए मैंने शराब रख छोड़ी है।”

यह कहते-कहते वे उठे और मुझे एक आलमारीके पास ले गये। मैंने देखा उसमें कई बोतलें सुरक्षित ढंगसे रखी हुई हैं। उन्होंने हँसकर कहा, “समयके साथ-साथ इस शराबका मूल्य बढ़ता रहेगा, कान्त। एक दिन जब मेरी शादी हो जायगी, तब मैं इसे पिऊँगा। उस दिन मैं सब कुछ भूल जाऊँगा, सब कुछ। सब लोग भूल जाते हैं। भूलना स्वभाव है।”

मैंने कहा, “बेशक कैप्टेन, यह सब स्वाभाविक है, और भूलनेका स्वभाव न हो तो कोई जिए कैसे?”

“बेशक, बेशक। कोई जिए कैसे? जीनेके लिए भूलना जरूरी है,

बेहद जरूरी।” उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा पर दूसरे ही क्षण सहसा उनका स्वर गिरने लगा। वे फिर कुर्सीपर आ बैठे। कई क्षण चुप रहे। फिर बोले, “क्यों, कान्त, कभी-कभी किसीकी याद भी तो मनुष्यकी शक्ति बन जाती है? है तो यह आदर्शवाद और मैं आदर्शवादको नहीं मानता। पर फिर भी वह शक्तिदायक है।”

मैंने कहा, “आदर्शवादके पैर जब धरतीपर लग जाते हैं, तब वह शक्ति बन जाता है।”

“क्या मतलब?”

“यही कि जब मनुष्य आदर्शको जीने लगता है, तब वह बन्धन न होकर सम्बल हो जाता है।”

सहसा उनकी आँखें चमक उठीं। उन्होंने मेरी ओर देखते हुए कहा, “बिलकुल यही बात है, पर प्रश्न जीनेका है। बहरहाल, मुझे इन बातोंकी विशेष चिन्ता नहीं है। तुम आ गये तो पूछ लिया, नहीं तो हम सैनिक तो जीनेमें विश्वास करते हैं। और अब तो युद्धके बादल छा रहे हैं, इन बातोंको सोचनेका अवकाश ही नहीं है।”

उनका कहना ठीक था। तब विश्वमें युद्धकी पुकार मची हुई थी। उसके कुछ समय बाद अचानक एक दिन दूसरा विश्व-युद्ध आरंभ हो गया। तब सात सालतक हम एक-दूसरेका कोई समाचार नहीं पा सके। इस बीचमें मैं दो-बार—तीन वर्षसे कुछ ऊपर सरकारका मेहमान रहा, और सिंह अफ्रीकाके रेगिस्तानमें शोहरत पाकर लौटे। तिवारी मध्य एशियामें सांस्कृतिक मोर्चेपर डटा हुआ था। १९४७ में जब एक ओर घृणा रक्त उलीच रही थी और दूसरी ओर स्वतन्त्रताकी देवी भारतके आंगनमें प्रवेश कर रही थी, हम सब मित्र एक-दूसरेसे मिले। मि० सिंह अब लेफ्टिनेंट कर्नल बन चुके थे और तिवारी मेजर। अचानक एक दिन दिल्लीमें उन्होंने मुझे ढूँढ़ निकाला। यद्यपि दुनिया पलट चुकी थी, परन्तु सिंह बिलकुल वैसे ही थे। उन्होंने उसी मस्तीसे मेरे कन्धोंको भकभोरा, “हलो कान्त !

तुम जीत गये। किसी भी कारणसे हो, तुम्हें आज़ादी मिली है। लेकिन," उन्होंने हँसते हुए कहा, "तुम अब अकेले उसकी रक्षा नहीं कर सकते।"

मैंने उसी मस्तीसे जवाब दिया, "तुम जो हो तुम्हें अब उसकी रक्षा करनी है।"

"बेशक, बेशक, अब हम और आप एक ही नावमें हैं।"

"लेकिन उस नावके खिचैया तुम हो।"

"और मार्ग दिखानेवाले तुम!"

इस तरह एक-दूसरेकी प्रशंसा करके हम सब खूब हँसे। कुछ देर इधर-उधरकी बातें करनेके बाद मैंने पूछा, "लेकिन हाँ, तुम सुनाओ न। तुम्हारी शराबका स्वाद कैसा रहा?"

"शराब?" वे खूब हँसे, "बस अब उसका अन्त आ पहुँचा है। मैं बहुत शीघ्र शादी करनेवाला हूँ।"

"अभी नहीं की?"

"बस अब हुई समझो। वह तो होगी ही। हमलोग ब्रह्मचर्यमें विश्वास नहीं करते। वह अप्राकृतिक है।"

और वे फिर हँस पड़े। पर मैंने देखा—उस हँसीमें स्वाभाविकता नहीं है। एक प्रकारकी बनावट है, और इसीलिए वह अपने पीछे मस्तीकी नहीं, बल्कि वेदनाकी लहर छोड़ जाती है। मैं चुप हो गया और तब बोलनेका अधिक काम उन्हींको करना पड़ा, पर जब चलनेका समय हुआ तब मैं अपनेको न रोक सका। पूछ बैठा, "क्यों मित्र! एक बात बताओगे।"

"पूछो।"

"क्या तुमने इन आठ वर्षोंमें शराब नहीं पी?"

फिर वही वेदना-भरी हँसी, "कैसे पीता? कोई सँभालनेवाला तो था ही नहीं!"

उसके बाद मैंने कुछ नहीं पूछा।

और फिर एक पूरा वर्ष बीत गया। १९४८ का अन्त आ पहुँचा था। भारतके भाग्याकाशपर छाये हुए कुहरेके बादल हल्के पड़ रहे थे, पर धुंधलापन अभी नहीं मिटा था। समस्त देशको एक भयने जकड़ रखा था। स्वतन्त्रताका प्रभात सदा पीड़ा देनेवाला होता है। और फिर जिन शर्तोंपर हमें स्वतन्त्रता मिली थी, वह तो और भी कष्टप्रद थी। सेना सुखकी चैन न ले सकी। भारतके पश्चिमोत्तर प्रदेशमें फिर युद्धके बादल उमड़-धुमड़ उठे। उसे फिर लोहा लेना पड़ा। सिंहकी रेजिमेंट सबसे आगे थी। प्रति दिन उसकी बहादुरीके किस्से सुननेको मिलते थे। वह तब जीवन और मृत्युका युद्ध लड़ रही थी। हिमाच्छादित गगन-चुम्बी पर्वत-शृंगों पर, जहाँ युगोंसे मानवके चरण नहीं पड़े थे, वहाँ वे मृत्युंजय विजय-दुन्दुभि वजाते थे। जनता सुनती थी और कहती थी, “स्वतन्त्रता प्राप्त करनेपर भारत ने बहुत कुछ खोया, पर नहीं खोया तो उसने सेनाके विश्वासको नहीं खोया।”

मैं भी सुनता और गद्गद् हो उठता। अपने मित्रोंसे कहता, “इस रेजिमेंटके कर्नल सिंहको मैं जानता हूँ। वे मेरे मित्र हैं। वे सदा अपने देशको प्यार करते रहे हैं। वे एक वीर पुरुष हैं।”

और वे सचमुच वीर थे। उन्होंने अपनी वीरता और कुशलतासे शत्रुको सीमातक खदेड़ दिया था। मुझे पूरा विश्वास था कि शीघ्र ही वे सीमापर आ पहुँचेंगे। पर तभी अचानक एक दिन सबेरे-सबेरे एक मित्र दौड़ते हुए आये। वे हाँफते-हाँफते बोले “कान्त ! तुमने सुना ?”

मैं चौंका, “क्या ?”

“कर्नल सिंह मारे गये।”

मैं जैसे पागल हो उठा। मुझे विश्वास नहीं आया। बोला, “क्या कहने हो ?”

और साथ ही साथ उसके हाथसे अखबार छीनकर पढ़ने लगा। लिखा था, “भारत सरकारको बड़े दुखसे यह सूचना देनी पड़नी है कि

पाँचवीं सिख रेजिमेंट के कर्नल इन्द्रसिंह कल सन्ध्याको एक अग्रिम टुकड़ीका नेतृत्व करते हुए युद्ध-भूमिमें दुश्मनके गोलेसे मृत्युको प्राप्त हुए। वे एक वीर सैनिक थे और द्वितीय महायुद्धमें उन्होंने भारतीय सेनाको निरन्तर विजयके मार्गपर बढ़ाया था। साम्प्रदायिक उत्पातके दिनोंमें उन्होंने जिस साहस और शौर्यका परिचय दिया था, भारत सरकार उसकी कदर करती है। वर्तमान युद्धमें भी उन्होंने जिस तत्परता, निर्भयता और कर्तव्य-परायणतासे विजयपर विजय प्राप्त की वह युग-युगतक सेनाका मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

“स्वर्गीय कर्नल १० वर्षसे विधुर थे, और इस बीचमें उन्होंने कभी शराब नहीं छुई। उनका चरित्र बहुत ऊँचा था और रहन-सहन बहुत सादा। वे ज़मीनपर सोते थे। और सदा दूसरोंकी सहायता करते रहते थे। वे बहुत लोकप्रिय थे।

“वे अपने पीछे शोक मनानेके लिए अपने माता-पिताके अतिरिक्त असंख्य मित्रोंको छोड़ गये हैं।”

पढ़ चुका तो मेरा गला भर आया। आँसुओंने मेरी दृष्टि धुंधली कर दी, पर तभी उन मित्रोंने कहा, “यह भी पढ़ो।”

एक कोनेमें विशेष संवाददाताने लिखा था, “स्वर्गीय कर्नलके तम्बूमें बहुत कम सामान था परन्तु उनके बक्समें एक अद्भुत वस्तु मिली है, जिसने सबको चकित कर रखा है। उसमें उनकी स्वर्गीय पत्नीके एक चित्रके साथ रेशममें लिपटी हुई शराबकी एक बोतल भी है। उस बोतलपर उन्हींके हाथसे लिखा हुआ है, “आज १५ मई, १९३९ है।” उसीके नीचे फिर लिखा है, “एक दिन जब मुझे संभालनेवाला मिल जायगा, और वह बहुत शीघ्र मिलेगा, तब मैं इसे पिऊँगा।” पता चला है कि १५ मई, १९३९ को उनकी पत्नीका देहान्त हुआ था। ऐसा अनुमान है कि स्वर्गीय कर्नलने उस दिन शराब छोड़नेकी प्रतिज्ञा की थी और उसकी स्मृतिमें उन्होंने उस बोतलको रख छोड़ा था, पर...।”

तब आगे पढ़े बिना मैंने अखबार हाथसे रख दिया, और श्रद्धानत होकर मन ही मन मिसेज़ सिंहको प्रणाम किया। जीते-जी चाहे उसने पतिकी कितनी ही सेवा क्यों न की हो, पर मरनेके बाद वह निस्संदेह उसकी जीवित-शक्ति बन गयी थी।

१९५२]



जीवन-दीप

संघमित्राने क्षणभरके लिए भी अपनी दुर्बलताको अशोकके सामने प्रकट नहीं होने दिया, तब भी नहीं, जब अपने स्वभावके अनुसार अशोकने कलिंगकुमारको सूर्योदयसे पूर्व प्राणदंड दिये जानेकी आज्ञा दी, लेकिन एक बात वह स्पष्ट रूपसे देख रही थी कि कई दिनसे अशोकके स्वभावमें परिवर्तन होता आ रहा है। रक्त-पिपासु अब रक्तसे कुछ भय खाने लगा है। अपने हाथोंको रक्तसे सना देखकर वह रहरहकर चौंक उठता है। विशेषकर कलिंगकुमारको मृत्युदंड देनेके बाद, तो उसके मस्तिष्ककी अवस्था बहुत ही विचित्र हो गई है।

यही सोचते-सोचते संघमित्रा कुछ आत्मविभोरसी हो उठी। कलिंगकुमारका नाम मस्तिष्कमें आते ही स्मृतिके कुछ बन्द द्वार खुल गये। पुरानी बातें हृदय-पटलपर उभर आईं। तब सुन्दरी संघमित्राका अरुणाभावाला मुख रक्तिम हो उठा, नयन प्रेमकी पीड़ासे मंदिर हो आये। निश्वासने वक्षस्थलको आलोडित कर दिया। कुमारकी मूर्ति पृथ्वी और आकाशको घेरकर उसके सामने खड़ी हो गई—प्रशस्त ललाट, उन्नत वक्षस्थल, किंचित श्यामल वर्ण, अदम्य विश्वाससे पूर्ण नयन और आजानबाहु, एक साथ रक्षा और दंडके प्रतीक। उस दिन सिंहका आखेट करते समय स्वयं सम्राट्ने कहा था, 'कुमार! तुम्हारा हस्तलाघव देखकर हम प्रसन्न हुए, तुम वीर हो।' कुमारने तब किंचित मुस्कराहटसे मस्तक नवाते हुए उत्तर दिया था, 'मगध-सम्राट्का हृदय विशाल है।'।

उस समय संघमित्राका रोम-रोम जैसे उद्वेलित हो उठा था। उसने अपने नयनोंमें समस्त तृष्णा संचित करके कुमारको देखा था, ऐसे जैसे उसे अपने अन्तरमें संजो लेगी। एकान्त पाकर उसने जब स्वयं कुमारकी

वीरताको सराहा था, तब वह यौवनका प्रतीक, मंदिर हास्य बखेरता हुआ, बोला, “राजकुमारी ! मुझे खुशी है, मगधके लोग वीरोका सन्मान करना जानते हैं।”

राजकुमारीने उत्तर दिया, “वे स्वयं वीर जो हैं।”

“और सुन्दर भी।”

“सुन्दर ?”

“हाँ।”

“सच ?”

“क्या तुम्हें साक्षी देनी होगी। अपनेको ही देखो। तुम्हारे नयन शरतकी जोत्स्नाको लजाते हैं। तुम्हारा हास्य हिम-शिखरके प्रभातसे अधिक मनोरम है। तुम्हारी वाणीमें मलयका सगीत है और तुम्हारी गतिमें यौवनका नृत्य।”

और कहकर राजकुमार हँस पड़ा था। सघमित्रा तब जैसे सुध बुध खोकर प्रेमल मूर्तिमी उसे देखती ही रह गई थी। आज भी वह खोई खोई-सी हो गई, सोचने लगी—यह सब क्या है ? यह आकर्षण क्यों है ? हृदयमें यह धडकन कैसी है ? यह स्पन्दन किसका है ?

तब किसीने कहा था, ‘यह प्रेम है।’

‘प्रेम !’

सघमित्रा सहसा जाग उठी—प्रेम। वह शत्रुमें प्रेम करती है। शत्रु उसके हृदय-सिंहासनपर आ बैठा है। शत्रु ! उसके भाईका शत्रु ! उसके राजाका शत्रु ! उसके देशका शत्रु... वह जैसे रो पड़ेगी। क्षण भर पहले जो अशोकके सामने दृढ़ और स्थिर थी, वही अब प्रेमकी ऊष्माके कारण मोमकी भाति पिघल चली। वह कुमारसे प्रेम करती है। उसने महामात्यसे कहा था, ‘कुमारके साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुषके साथ होता है।’ ठीक है उसने महामात्यसे यह सब कहा था

परन्तु उसका अर्थ भकना नहीं था। नहीं, उसने भइयाके सामने अपनी दुर्बलताको तनिक भी प्रकट नहीं होने दिया था।

इसी क्षण न जाने क्या हुआ ? उसके अन्तरमे बैठा हुआ कोई अट्ट-हास कर उठा, “सधमित्रा ! अपनेको इतना धोखा मत दो। निस्मदह, तुमने अशोकसे मीठी दयाकी प्रार्थना नहीं की, परन्तु जब तुमने उनसे कहा था, ‘सम्राट्, भूलिये नहीं, हृदयकी विशालताका नाम ही शौर्य है तब उसका आशय यही था कि कुमारको क्षमा कर दो।’

जैसे भूचाल आया हो, सधमित्राने बड़ी तीव्रतासे गरदनको भटका दिया। वह गिरते-गिरते बची, पर दूसरे ही क्षण उसने तीव्रतासे कहा, ‘हाँ। मैं कुमारको बचाना चाहती हूँ। मैं उससे प्रेम करती हूँ, मैं उससे प्रेम करती हूँ। मैं उसे बचाऊँगी। अवश्य बचाऊँगी। भइया स्वयं बड़े दुखी है। कुमारके व्यवहारन उन्हे आलोडित कर दिया है। वे मझमे पूछ रहे थे, ‘क्या शस्त्रके अतिरिक्त किसीका वध करनेकी कोई ओर भी रीति होती है।’ क्या इससे स्पष्ट नहीं है कि भइया स्वयं कुमारको मारना नहीं चाहते। हाँ, वे उसे मारना नहीं चाहते। मैं इस दुर्बलतासे लाभ उठाऊँगी और कुमारको बचाऊँगी। कलिंगकी रणभूमिसे उठते हुए, चीत्कारने भइयाके वज्र-हृदयको हिला दिया है। मैं अब उन्हे और न गिरने दूँगी। कलिंगके नाशके ऊपर नये कलिंगका निर्माण होगा। कलिंग फिर जियेगा और उसके साथ जियेगा मेरा प्रिय कुमार...।

सधमित्रा इस समय बड़ी तीव्रतासे आगे बढ़ी जा रही थी। वह भूल गयी थी कि उसने सम्राट्से गायिका भेजनेकी बात कही थी। नहीं, नहीं, वह भूली नहीं। वह सब कुछ जानती है। वह अशोकको सगीत माधुरीमे डुबा देना नहीं चाहती। वह उसके भीतर पश्चात्तापकी आगको धधका देना चाहती है। वह जानती है कि पश्चात्ताप बढेगा तभी अशोक, कुमारको क्षमा कर सकेगा। प्राणदंडकी आज्ञा पाकर कुमारने उनसे कहा था, ‘बस यही है तुम्हारी वीरता। यही है तुम्हारा शौर्य ! इसी बृतेपर सम्राट्

बने हो। एक बन्दीका सिर नहीं भुका सके। खोपडियाँ ठुकरानेके लिए तो अनेक गीदड स्मशानमे घूमा करते हैं।' इस बातने अशोकको बहुत ही विचलित कर दिया है और फिर भिक्षु-श्रेष्ठ उपगुप्त भी सम्राट्के पास गये हैं। उसके महेन्द्र भइया भी आ पहुँचे हैं। क्या ये सब उन्हें मानवताके मार्गपर न ले आवेगे? नहीं, नहीं, वे अवश्य सफल होंगे। हो सकता है कुछ देर हो जाय। इसीलिए वह कुमारके पास रहना चाहती है जिससे आवश्यकता पड़े तो चडगिरीको कुछ देर रोक सके।

तब रात बहुत गहरी हो चुकी थी। छावनीमे गहन अधिकार छा रहा था। आकाशमे जो प्रकाश था उसने धरतीकी ओरसे नयन मूँद लिये थे। रहरहकर पहलूयेकी पुकार दूसरी पुकारोको दबा देती थी। राजकुमारीने इसी समय उस शिविरके गुप्त द्वारपर आहट की जिसमे कलिंगकुमार बन्दी था। आहट पाकर चडगिरीने अन्दरसे पूछा, "कौन?"

"सघमित्रा।"

चडगिरी बाहर आकर बोला, "देवी इस समय?"

"हाँ, चडगिरी। राजकुमारसे कुछ बातें करनी हैं।"

"आवश्यक।"

"अति आवश्यक।"

"महाराजकी आज्ञा .।"

बात काटकर सघमित्राने कहा, "महाराज एकान्तमे हैं। मैं अभी गायिकाको भेजकर आ रही हूँ।"

चडगिरीने क्षणभर सोचा फिर वह सघमित्राको अन्दर ले गया। भीतर जाकर सघमित्रा बोली, "बाहिर बैठो, चडगिरी! भिक्षु उपगुप्त आये तो उन्हें आने देना।"

"भिक्षु यहाँ आवेगे?"

"हाँ, चडगिरी। सम्राट् जो न कर सके उसे भिक्षु करना चाहते हैं।"

चंडगिरी फिर क्षणभर सोचता रहा। बादमें बोला, “दंड तो स्थिर है।”

“हाँ, जबतक सम्राट् उसे बदल न दें, तबतक वह स्थिर है।”

चंडगिरीने अब कुछ नहीं कहा। वह बाहर जा बैठा। संघमित्रा प्रकोष्ठका द्वार खोलकर अंदर पहुँची। वहाँ दीपकका मन्द प्रकाश मानो सिमटकर बैठा था। और कलिंगकुमारकी छाया प्रकोष्ठकी एक भित्तिपर ऐसे पड़ रही थी जैसे किसी कुशल चित्रकारने विश्वासको चित्रित किया हो। आहट पाकर छाया हिली। कुमारने दृष्टि उठाकर देखा, देखता ही रहा। द्वारपर संघमित्रा निहारती ही रही। कई क्षण इसी अन्तर्द्वन्द्वमें बीते, मानो युग बीते। बादमें कुमारने दृढ़ पर मधुर स्वरमें कहा, “बन्दी कलिंगकुमार देवी संघमित्राको प्रणाम करता है।”

संघमित्रा अब भी नहीं बोली, काँपकर रह गई। कुमारने फिर कहा, “कोई आज्ञा है?”

संघमित्रा मौन ही रही।

कुमार कहते रहे, “भाई जो नहीं कर सका, वह क्या बहिन करने आई है।”

संघमित्राने अब दो पग धरे और बोली, “तो कुमार मुझे पहचानते हैं।”

कुमार हँसा, “देवि ! कलिंग-कुमारकी स्मृति इतनी मन्द नहीं है कि वह अपने शत्रुको भी न पहचान सके।”

“शत्रु”—संघमित्रा काँप उठी।

“तुम्हें शंका है ? कलिंग-भूमिको कलिंग-पुत्रोंके रक्तसे प्लावित करनेवाले अत्याचारी अशोककी बहन क्या मित्र हो सकती है ?”

“हो सकती है।”—संघमित्राने एकदम स्वयं अपनेको चकित करते हुए कह दिया।

राजकुमार पहली बार कॉपा पर दूसरे ही क्षण सुस्थिर होकर बोला, “देवी पुरानी बातें याद कर रही हैं।”

“बात कभी पुरानी नहीं होती, कुमार ! स्मृति उसे नया रखती है।”

“तुम शायद ठीक कहती हो परन्तु बात पुरानी न होनेपर भी उसका प्रभाव बदल जाता है।”

“नहीं कुमार, प्रभाव भी नहीं बदलता। वह केवल अपनेसे अधिक शक्तिशाली प्रभावके पीछे छिप जाता है।”

कुमार हँसा। बोला, “शब्दोका यह मायाजाल नारीको ही शोभा देता है।”

संघमित्रा और भी पास आ गई थी, बोली, “शब्दोका मायाजाल भावनाकी भित्ति पर उठता है कुमार ! तुमने कुछ देर पहले भइयाम कहा था, ‘बस यही है तुम्हारी वीरता, यही है तुम्हारा शौर्य, इसी बूते पर सम्राट् बने हो, एक बंदीका सिर नहीं झुका सके। खोड्डियाँ ठुकरानेके लिए तो अनेक गीदड स्मशानमें घुमा करते हैं।’ इसके पीछे भी भावनाकी शक्ति थी।

“नहीं”, कुमारने कहा, “उसके पीछे नग्न सत्य था।”

संघमित्रा अप्रतिभ नहीं हुई। बोली, “कुमार ! अडा स्वयं जीव नहीं होता, तो भाँ उसके अन्तरमें जीव समाया रहता है। नग्न सत्य और भावनाकी यही स्थिति होती है। भावना मनुष्यका वह बल है, जो उसे कभी क्लान्त नहीं होने देता।”

कुमार ऐसे हँसा जैसे कुछ छिपाना चाहता हो। बोला, “देखता हूँ देवी संघमित्राने भी अपने भाईकी भाँति न हारनेका प्रण किया है।”

संघमित्राने शत्रुतामें कहा, “मैं प्रणमें विश्वास नहीं करती। मैं उत्तर चाहती हूँ।”

कुमारने दृष्टि उठाई। कुछ कहते-कहते रुका। फिर सुस्थिर स्वरमें बोला, “उत्तर देना कोई कठिन काम नहीं है, देवि ! कठिन काम है आश्वस्त

करना। और फिर तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि बन्दीके जीवनकी घड़ियाँ गिनी हुई हैं।”

संघमित्राने सहसा धीरेसे कहा, “उन्हीं घड़ियोंकी सीमा तोड़ने तो आई हूँ।”

“तुम्हारा आशय?”

“मैं तुमसे तुम्हारे प्राणोंका दान माँगती हूँ, कुमार।”

“मुझसे!”—कुमार अट्टहास कर उठा, “मुझसे! खूब, देवी तर्क करनेकी भाँति नाट्यकलामें भी प्रवीण जान पड़ती है। तभी अपने भाईके पास न जाकर मेरे पास आई हैं।”

संघमित्रा उसी प्रकार शान्त स्वरमें बोली, “भइयाके पास जाकर क्या करती? वे प्राण ले सकते हैं, दे नहीं सकते। दे तुम ही सकते हो।”

‘तो तुम कहना चाहती हो’, कुमारने किञ्चित् तीव्रतासे कहा, “मैं तुम्हारे भइयाके पास जाकर क्षमा माँगू। उनकी आधीनता स्वीकार करूँ।”

“नही, नही,” संघमित्राने शीघ्रतासे कहा, “मैं यह कभी नहीं कहती। मैं यह कभी कह ही नहीं सकती।”

“तो क्या कहती हो।”

“मैं कहती हूँ, सम्राट् यदि तुम्हारी मुक्तिका आदेश दें तो तुम उसे स्वीकार कर लेना।”

“मगधका क्रूर सम्राट् मेरी मुक्तिका आदेश देगा!”

“हो सकता है।”

“पर क्यों? कैसे?”

“क्यों और कैसे जाननेकी इतनी चिन्ता मत करो, कुमार! मनुष्य कब क्या कर बैठेगा, कौन जानता है। मगध सम्राट्की मानसिक स्थिति इस समय ऐसी है कि मेरे कहनेपर वे तुम्हें क्षमा कर सकते हैं।”

“तुम! तुम मेरी मुक्तिकी प्रार्थना करोगी?”

“आज्ञा दो तो।”

“पर क्यों?”

तब राजकुमारी काँप उठी। तभी दीपककी लौ भी काँपी। कुमारकी छाया भी हिली जैसे हल्कासा भूकम्प हुआ हो। एक क्षण बाद राजकुमारीने दृष्टि उठाकर कहा, “नहीं जानते?”

“शायद!”

संघमित्रा क्या कहे? मौन, आत्म-विभोर, खोई-खोई-सी वह खड़ी रह गई। फिर जैसे एक गहरा निश्वास उठा। वह जैसे अपने आपसे बोली, “ओह निष्ठुर कुमार, आखेटके बादकी वह रात भूल गये। भूल गये वे बातें।”

“कुमारी कुछ सोच रही है,” कुमारने भी धीरेसे कहा।

संघमित्राने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह जैसे अपने अन्तरकी वाणी सुन रही थी। कोई कह रहा था—तुम कुमारसे प्रेम करती हो। महानाशके बीच भी तुम्हारी प्रणय-ज्वाला मन्द नहीं पड़ी। रक्त-प्लावननं भी तुम्हारी प्रणय-पिपासाको शान्त नहीं किया।”

वह जैसे तड़प उठी। एक बार कुमारको देखा और फिर जैसे दृढ स्वरमें अपने मनको ही सुनाने लगी, “प्रणय यदि प्रणय है तो उसे संसारकी कोई भी शक्ति विमुख नहीं कर सकती। नारी जिसे एक बार प्यार करती है उसके हाथों अपना रक्त उलीचा जानेपर भी उसे प्यार करती रहती है; पर वह प्यार होना चाहिए, प्रणय होना चाहिए।”

यह सोचते-सोचते वह कुछ ऐसी स्थितिमें जा पहुँची, जहाँ व्यक्ति होता भी है और नहीं भी होता। वह अपने लिए नहीं थी पर कुमारके लिए उसका रूप जैसे प्रेमल ज्योतिकी तरह भासमान हो उठा। उसे लगा जैसे कुमारीके नेत्रोंसे भरता हुआ एक परम शान्त, परम उज्ज्वल प्रकाश उसकी ओर बहता आ रहा है और उसका स्पर्श जैसे उसके रोम-रोमको ऐसे सहला रहा है, जैसे क्लान्त बदनको कोई मधुर चापसे सहलाता है, जैसे भ्रमोंके

भूलसे हुएको मलयानिलकी वायु दुलराती है। उस क्षण उसे लगा जैसे संघमित्रा वहाँ नहीं है। वह उसके नेत्रोंसे होती हुई उसके अन्तरमें समा गई है। वह सहसा उछ्वसित स्वरमें चीख उठा, “कुमारी, तुम कहाँ हो ?”

इसके साथ ही कुमारी भी उसी कंपित स्वरमें पुकार उठी, “कुमार !”

कुमार जागकर भी कई क्षण काँपता रहा। उसकी छाया हिलती रही। तब संघमित्राने मृदुल हँसी हँसकर कहा, “डर गये, कुमार !”

“हाँ कुमारी ! युद्धभूमिमें महाप्रलय देखकर भी जो नहीं डरा, पिताको भूलुण्ठित देखकर भी जिसने आह तक नहीं की, सम्राट् अशोककी भृकुटि भी जिसकी दृष्टिको नहीं झुका सकी, वही कुमार इस क्षण डर गया।”

संघमित्रा फिर हँस पड़ी, “कुमार वीर हैं। उन्हें कौन डरा सकता है ?”

कुमारने शीघ्रतासे उत्तर दिया, “दया !”

“दया” ! कुमारी सहसा काँपी।

“हाँ कुमारी, मुझे डर है कि कहीं तुम्हारी यह अवस्था मेरी प्राण-रक्षाका कारण न हो।”

“तो, तो तुम जानते हो। लेकिन, लेकिन मैं पूछती हूँ, ऐसा हुआ तो क्या यह बुरा होगा ?”

“मगध सम्राट्ने मेरा सिर काट डालनेकी आज्ञा दी है, कुमारी। मैं उस आज्ञाका सन्मान करूँगा। कुछ क्षण बाद जब मन-मोहिनी उषा जागरणका संगीत अलापती हुई आकाशसे उतरेगी तब उसीके साथ मेरी मृत्यु भी मेरा आलिगन करने आयेगी।”

उसी क्षण द्वारपर आहट हुई। चंडगिरीने कहा, “देवी क्षमा करें, उन्हें बहुत देर हो चुकी है।”

संघमित्राने मानो याचना की, “थोड़ा और ठहरो, चंडगिरी। बात पूरी नहीं हुई।”

“देवीकी जैसी आज्ञा।”

चंडगिरीके पदचाप मिटते न मिटते कुमारने घृणासे कहा, “संघ-
मित्रा, स्वार्थके लिए इतना भुक्ती है?”

“लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए कुछ भी करना चातुर्य कहलाता है, कुमार।”

“पर मैं ऐसे चातुर्यसे घृणा करता हूँ, देवि। मैं अपना मस्तक कभी नहीं
भुका सकता, कभी नहीं। मैं मर सकता हूँ पर किसीकी दयाका भिखारी
नहीं बन सकता।”

संघमित्राने आह भरकर कहा, “कुमार! तभी तो मैं तुम्हें प्रेम करती
हूँ।”

ये शब्द इतने उच्छ्वसित स्वरमें कहे गये थे कि कुमार क्षण भरके
लिए उसे देखता ही रह गया और फिर बोला तो उसके स्वरमें तीव्रता नहीं थी।
उसने इतना ही कहा, “कुमारी! मैं बन्दी हूँ। मुझे प्रणय शोभा नहीं देता।”

“कुमार! मैं तुम्हें मुक्त करा सकती हूँ, अभी इसी क्षण।”

“नहीं कुमारी, नहीं, मैं मगध सम्राट्की दया नहीं चाहता।”

“दया नहीं, कुमार! वह पश्चात्ताप होगा। सम्राट् तुम्हारे आनेके
बादसे पश्चात्तापकी आगमें जल रहे है। मैंने चंडगिरीसे इसीलिए समय
माँगा है। तुम्हारी मुक्तिका संदेश आनेवाला है। भिक्षु उपगुप्त सम्राट्के
पास गये है।”

“भिक्षु उपगुप्त सम्राट्के पास गये है?”

“हाँ, कुमार! पर वे तुम्हारे प्राणोंका दान माँगने नहीं गये है। वे
केवल तुमसे बातें करनेकी आज्ञा माँगने गये हैं। हाँ! मैं चाहती तो तभी
आँचल फैलाकर सम्राट्से तुम्हें माँग लेती पर, पर...।”

“पर?”

“पर मैं तुम्हें अपमानित करना नहीं चाहती थी।”

“मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा, देवि।”

“आशय स्पष्ट है, कुमार! तुम्हारी भाँति मैं भी समझती थी कि तुम पर

मेरा दया करना तुम्हारा अपमान होगा। मैंने सम्राट्से तुम्हारे लिए एक शब्द भी नहीं कहा, पर दूसरी ओर उनके भीतर पश्चात्तापकी आग धधकानेमें भी कुछ नहीं उठा रखा। मैं भिक्षु उपगुप्तकी आज्ञा...।”

“क्या ? क्या तुम भिक्षु उपगुप्तसे मिली थी ?”

“वे मेरे होनेवाले गुरु हैं।”

“राजकुमारी ?”

“ठीक है कुमार।”

“तो तुम यहाँतक पहुँच गई। मेरे वचानेके लिए तुमने इतना कुछ कर डाला।”

“तुम्हें नहीं, कुमार ! अपनेको वचानेके लिए, अपने स्वार्थके लिए।”

“ठीक कहती हो, देवि ! यह स्वार्थ ही है। सब कुछ स्वार्थ है। इस स्वार्थमें कोई भी अछूता नहीं है। मैं भी नहीं हूँ। मेरा देश-प्रेम, मेरी वीरता, सब स्वार्थ है। परन्तु देवि ! मेरा स्वार्थ अभी पूरा नहीं हुआ है। सम्राट्का पश्चात्ताप भी अभी तलपर है। उसे अन्तरकी गहराईमें जानेके लिए अभी और चोटकी आवश्यकता है। विनाशके संपूर्ण हुण विना निर्माण असंभव है।”

“क्या अभी और विनाश होना शेष है ?”

“बहुत शेष है, देवि !”

“क्या कहते हो ?”

“ठीक कहता हूँ। अभी मेरा वध शेष है। अभी तुम्हारा हृदय टूटना शेष है। अभी अशोकको अपने पश्चात्तापसे उत्पन्न दी गई आज्ञाका उल्लघन देखना शेष है।”

पागलसी मधमित्रा बोली, “क्या कहते हो ?”

तभी चङ्गिरीने आकर कहा, “देवि ! सम्राट्की आज्ञा-पालनकी वेला आ पहुँची है।

कुमार उस ओर कान दिये बिना बोलता रहा, “मैं ठीक कहता हूँ,

देवि संघमित्रा ! मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, अपने जीवनसे बढ़कर प्रेम करता हूँ। तुमसे भी अधिक अपने देशको प्रेम करता हूँ। उससे भी अधिक मैं मनुष्यको प्रेम करता हूँ। पर मनुष्य तो आज सोया हुआ है। उसे जगानेके लिए अभी और बलिदानकी जरूरत है। कलिंग-कुमार प्रणयसे नहीं डरता, नारीसे नहीं डरता, संघमित्रा ! यदि तुमने मुझे प्रेम किया है, तो समझ लो तुम्हारा प्रियतम कलिंगके रक्त-यज्ञमें अपने रक्तकी पूर्णाहुति देकर उसे संपूर्ण करना चाहता है। यदि तुम मुझे प्रेम करती हो, तो मैं तुम्हें निमन्त्रण देता हूँ, तुम भी इस यज्ञमें आहुति दो। अपने प्रणयका बलिदान करो। कलिंग-नारियोंके रोदनमें अपना रोदन मिला दो जिससे धरती, अंबर काँप उठे। महानाश पूर्ण हो जाये और महानीशाके बाद ऊषाका उदय हो।”

तब जैसे बिजली कौंधी। कुमार तड़पकर उठा और उसने विमूढ़से खड़े चण्डगिरीकी कटार निकाल ली। और इससे पूर्व कि कुमारी झपटे उसे अपने वक्षःस्थलमें भोंककर धरतीपर गिर पड़ा। बोला, “अब, अब, संघमित्रा। जितना चाहे प्यार कर लो। मैं जीत गया। तुम्हारे प्रियतमको हत्यारेके हाथ नहीं छू सके।”

हतभागिनीमी संघमित्रा दौड़कर कुमारकी छातीके पास गिर पड़ी, चीत्कार तो क्या मुखसे अस्फुट स्वरतक न निकल सका। क्षण आये, क्षण गये, उसने जैसे अब कटारको देखा तो गिड़गिड़ाई, “चंडगिरी, चंडगिरी !

विमूढ़-से चंडगिरीने कटार बाहिर खींच ली। रक्त बहकर संघमित्राके ऊपर आया पर उसे देखनेको चंडगिरी रुका नहीं, बाहिर भागा। यह सब पलक मारते ही हो गया। उसको बाहिर जाता देखकर संघमित्रा जागी। तड़पकर बोली, “चंडगिरी ! कटार मुझे दो। यह कटार मुझे दो !”

उसी समय शिथिल होते हुए कुमारने उसका आँचल पकड़कर कहा, “प्रणय वेलामें छोड़े जाती हो। मेरे सामने बैठो कि तुम्हें देखते देखते जाऊँ और जन्म जन्म तुम्हें पाऊँ। प्रणय कभी कायर नहीं होता और बलिदानसे नयी मानवता जागती है, संघमित्रा ! तुम्हें जीना होगा।”

आगे शब्द शिथिल होने लगे। संघमित्राने अब उठनेकी चेष्टा नहीं की। उसने कुमारके सिरको अपनी गोदीमें रख लिया और अपलक मन्द पड़ते उन तेजस्वी नेत्रोंको देखने लगी। तभी द्वारपर फिर आहट हुई। शीघ्रतासे भिक्षु उपगुप्तके साथ कुमार महेन्द्रने भीतर प्रवेश किया। महेन्द्र बाहिरसे ही बोल रहे थे, “संघमित्रा, सम्राट्ने कुमारको क्षमा कर दिया। कुमार अब स्वतन्त्र है। उनका देश स्वतन्त्र है।”

बोल चुके तो नीचे देखा। नेत्रोंके आगेकी धरती डोल उठी, “क्या ! क्या, चंडगिरी दो क्षण भी नहीं रुक सका ?”

वहीं बैठे-बैठे संघमित्रा बोली, “चंडगिरीको कुछ नहीं करना पड़ा। सम्राट्की दयाकी बात सुननेसे पूर्व ही कुमारने प्राणोंका अन्त कर डाला।”

“तो कुमारने आत्महत्या की,” विमूढ़से महेन्द्रने कहा।

“नहीं”, भिक्षुने सुस्थिर स्वरमें कहा, “कुमारने इस रक्त-यज्ञमें पूर्णाहुति दी है। उसने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब मनुष्यता जागेगी, अवश्य जागेगी।”

संभवतः यही शब्द सुननेके लिए कुमारके नेत्र अभीतक खुले थे। भिक्षुके बोलते बोलते वे मुँद गये।

१९५१]



धरोहर

केवल कुछ महीने पुरानी बात है पर जैसे सदियाँ बीत गयी हों, जैसे असंख्य वर्षोंकी सीमा पारकर वह बात बहुत धीमा, अति धीमा स्वर लिये कानमें गुनगुना गयी हो, “अरी पगली ! कितनी बार कहा, मत चिल्लाया कर इन वच्चेोंपर । मत भिड़का कर इन्हें हर वक्त । कौन जाने बड़े होकर ये क्या हों ? देशबन्धु, गान्धी, रामकृष्ण, विवेकानन्द ये सब इस धरतीपर माँका पेट चीरकर ही तो निकले थे । कौन जाने उन्हींकी तरह हमारे वच्चे भी...?”

तब वह चूल्हेपर रखे भातको करछीसे हिलाकर देख रही थी और आँगनमें तीन वर्षकी लावण्य दुधमुहें चितरंजनको पटककर, ‘भूख लगी है’ ऐंसा कहकर रोने लगी थी । बालक गला फाड़कर चीख उठा था । मृणालके तनवदनमें आग लग गई । क्रुद्ध, पसीनेसे तर, चिल्ला उठी, “राक्षसोंने जान खा डाली ! मौत भी तो नहीं आती इन्हें । कुएंसे पेटमें सब सम जाता है, कभी आग नहीं बुझती । मुझे क्यों नहीं खा डालते, ना बावा ! ऐंसी भी राक्षसी भूख क्या ? अभागे, भाग्य भी ऐंसा लेकर आये हैं कि देशमें अन्नका दाना तक नहीं मिल रहा है ।”

कि तभी बाहिरसे आ गये नलिन बाबू । वगलमें छाना था, हाथोंमें तरकारी और दो आम । कोलाहल देखकर क्रोध नहीं आया बल्कि मुस्कराकर लावण्यको गोदमें उठा लिया, चितरंजनको पुचकारा, “अरे, अरे, इतना भी रोते हैं क्या ? अभी चुप हो जाओ, देखो ! क्या लाया हूँ ? आम खाओगे ? हाँ, हाँ ! तुम ही खाओगे ! अच्छा, लावण्य ! छूरी तो ले आना जरा ।”

लावण्यका रोना तो बाबूके हाथमें आम देखकर ही रुक गया था, पर

बालक चितरंजन था कि रोये जा रहा था। उसे उठाकर दोनों हाथोंके भूलेमे भुलाना शुरू किया और साथ ही साथ गुनगुनाने लगे, “सो जा, सो जा, राजदुलारे !” और फिर पत्नीके पास आकर कहा, “सुनती हो, बच्चेका पालना बड़ा कठिन है। तभी तो इतना बड़ा, करोड़ों नगर-नारियोंका देश गुलाम पड़ा है। बचपनमें ही सबकी आत्मा कुचल दी जाती है। कोई समझना ही नहीं। तुम्हे कितनी बार समझाया पर व्यर्थ !” मृणाल बैठी थी, खडी हो गयी, तबतक भुँभुलाहट उसकी दूर हो चुकी थी और वह लज्जित-सी बोली, “कोशिश तो करती हूँ पर कैसे करूँ? कभी-कभी जी दुखी हो उठता है।”

“हाँ, हाँ, नलिनने कहा और हँसे, “मो तो जानता हूँ मृणाल ! पर मोचो तो एक दिन, बहुत दिन बाद, हमारा चितरंजन बगालका दूसरा देशबन्धु हो तो कितना अच्छा हो ?”

मृणाल मुस्करायी और बोली, “बहुत बड़े घरमे जन्म लिया था उन्होंने। इनके ऐसे भाग कहाँ ?”

“बड़े-छोटे घरमे क्या होता है पगली !” नलिनने कहा, “होता है शिक्षा और लालन-पालनसे। प्यारसे समझाना एक बात है। लात घुमे या लकड़ीका चैला उठाकर मार देना दूसरी बात है।”

मृणाल इस बार खिलखिला पड़ी। चितरंजनको गोदमे ले लिया। मुँह चूमकर और छाती उसके मुँहमें देती हुई बोली, “नहीं, नहीं, मैं कभी नहीं मारूँगी इन्हे। धमकाऊँगी भी नहीं।”

और आज उसी घर में बैठी-बैठी मृणाल उन बातोंको सोचती है और सुबक सुबककर, हिड़की बाँधकर रोती है। रोनेका कारण है। बीते कलकी सन्ध्याने उसके जीवनकी दिशा एकदम पलट दी। उसे आस्मानसे जमीनपर ला पटका। नलिन जो महाकाल और महायुद्धकी विपत्ताका मारा एक माहसे ज्वरमे पड़ा था, सदाके लिए उन्हें छोड़कर चला गया।

“सुनती हो”, उसने मरते-मरते कहा था, “मैं जा रहा हूँ। मैं इस

महाकालसे अपनेको बचा न सका, पर मैं कहता हूँ तुम अपनेको बचाना ! अपने लिए नहीं अपने बच्चोंके लिए।”

अब मृणाल, भोली मृणाल सुबक सुबककर रोयी, बोल न निकला। केवल हाथ छातीपर रख दिया। धीमे धीमे, अटक अटककर नलिन फिर बोला, “रोती है? ठीक है, रोनेका अवसर तो है, पर समझ ले हमारे ऊपर एक ज़िम्मेदारी है। उसे तो निभाना ही है। देशके दो बच्चे हमें पालने हैं। यह लड़ाई, यह महामारी अब खतम होनेको है। बंगालकी स्वर्ण-भूमि अब फिर सोना उगलेगी। मेरी बदकिस्मती कि मैं यह सब न देख सकूंगा पर तू देखेगी। इसलिए रो मत ! सवर कर, अपने शरीरको देख, उसे छीजने मत देना। नहीं तो, नहीं तो चितरंजन भूखा ही...।”

कि आगे उससे बोला नहीं गया। गला रुंधने लगा। सिर एक ओरको लुढ़क गया। आँखें खुलीकी खुली रह गयीं। उसने हिचकी ली, अन्तिम हिचकी ! मृणालने देखा तो एकदम चीत्कार कर उठी, “हाय स्वामी ! तुम कहाँ चले ? बोलो तो ! मैं अब क्या करूँगी हाय !” लेकिन उससे रोया भी नहीं गया। बेहोश होकर एक ओर लुढ़कने ही वाली थी कि उसका चीत्कार सुनकर पड़ोसकी एक लड़की वहाँ आ गई ? “भाभी, भाभी ! क्या हुआ री ?”

उसने देखा चीत्कार एकदम बन्द है। नलिन खाटपर लुढ़का पड़ा है, मृणाल ज़मीनपर। लड़की एकदम घबरा गई, “भइया ! छोटे भइया ! भाभी, भाभी ! क्या हुआ जी ?”

लेकिन कोई नहीं बोला। दौड़ी दौड़ी बाहिर गयी। ज़रासी देरमें पाँच-सात नर-नारी आये। सिर हिला-हिलाकर उन्होंने कहा, “नलिनके प्राण मुक्त हो गये ! जीर्ण कंकालमें कोई चेतना नहीं है।”

“और भाभी ?”

“मूर्छा है।”

और वे सब काठके ठूँठकी तरह निश्चल खड़े-खड़े एक-दूसरेका मुंह

ताकने लगे कि दोनों बच्चोंको थामे एक प्रौढ़ाने वहाँ प्रवेश किया। तब अंधेरा बढ़ा आ रहा था। उसने जो यह दृश्य देखा तो घबरा गयी “मृणाल, बह !”

“मूर्छित है।”

“नलिन ?”

“बोल रे ! नलिनको क्या हुआ। नलिन, छोटे भइया !”

“भूख उसे खा गयी, दीदी।”

प्रौढ़ाकी हठात् चीख निकल गयी। पीछे दीवाल न होती, तो शायद वह धरतीपर ढह पड़ती। उसके हाथमें तीन पुड़ियाँ थीं, वे फर्शपर बिखर गयीं। लावण्य माँके पास आकर रोने लगा। बालक भी गोदमें ‘माँ’ ‘माँ’ करके मचल गया कि युवतीके उपचार और बच्चोंके स्वरसे जागरित होकर मृणाल उठ बैठी। आँखें फाड़ फाड़कर उसने सबको देखा। फिर सहसा बाँध टूट गया, “दीदी, दीदी, बताओ तो कहाँ गये तुम्हारे छोटे भइया ? कैसे होगा अब ? मैं कहाँ जाऊँगी ? यह महाकाल, यह महायुद्ध, क्या ये कभी समाप्त नहीं होंगे क्या ?”

लेकिन उसके प्रश्नोंका जवाब कौन देता और क्या देता। सभी तो एक गहरे अवसाद—एक गहरी भूखसे भरे पड़े थे। उनकी सूरत मानवताका उपहास करती थी, पर कुछ थे जिनकी समझपर भूखकी दीमक नहीं लगी थी। वे ही बोले, “यह चीत्कार अब बन्द करो ! कौन सुनेगा ! उठो और शरीरकी मुक्तिका प्रबन्ध करो।”

नलिनकी आत्मा मुक्त हुई और शरीर भी मुक्त हो गया। घरमें जो भी कपड़ा मिल सका उसीमें लपेटकर आग लगा दी गयी और ज़रासी देरमें कुछ हड्डियोंको छोड़कर सब शून्यमें विलीन हो गया लेकिन उसकी याद, उसकी बातें, उसका काम, इन सबको शून्य भी न लील सका। मृणालका कंकाल ज़िन्दा है। उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है। पर प्राण चिपके हैं। हतभागिनी लावण्य माँड पी-पीकर जिये जा रही है। छातीका माँस

चाब-चाबकर चितरजन भी आयु बढ़ाये जा रहा है, यद्यपि पतभडकी शाखाकी तरह उसका सुन्दर मुखड़ा कान्तिहीन हो गया है।

ये मर क्यों नहीं जाते ! —मृणाल कई बार दुखी होकर मोच बैठती है और मोचकर काँपने लगती है। कोई चुपकेसे कानमे कह जाता है— कौन जाने बड़े होकर ये महान् पुरुष हो ? इनके नामकी जय बोली जाय।

यही मोचकर एक दिन उसने दीदीसे कहा, “दीदी ! तुम्हारे छोटे भडयाने अपने बच्चोके लिए प्राण तज दिये।”

दीदी बोली, “बच्चोके लिए सागी दुनिया जीती और मरती है।”

“न न दीदी ! यह बात नहीं। वे कहते रहे, ये क्या हमारे बच्चे नहीं हैं। देशकी धरोहर है और धरोहरका मान प्राणसे ज्यादा होता है। दईमारे अकालने सोनेके देशको राख बना दिया। कहते थे हमारे देशवाले हैं जो मुखका ग्रास छीनकर तिजोरीमे बन्द कर रहे हैं। सच, क्या वे सोना खाते ह। वह भी एक दिन मिट्टी बनेगा, पर तबतक सारेका सारा देश मिट्टी बन चुकेगा।”

दार्शनिकमी दीदी बोली, “अरी पगली मिट्टीका खेल ही तो है यह सब।”

“जानती हूँ दीदी। मिट्टीका खेल है सब। मिट्टीका घर है, मिट्टीमे ही अन्न उपजता है। पर दीदी उम मिट्टीको सोना बनाकर क्या जीना हो सकेगा ?”

दीदी प्रभावित हुई। बोली, “तू ठीक कहती है, इसी सोनेने मोतको बुलाया है। हाय, किस तरह धरती लाशोमे पटती जा रही है। जो ज़िन्दा है वे शहर भागे जा रहे हैं।”

मृणाल चौकी, “शहर ?”

“हाँ ! कहते हैं वहाँ भूख नहीं है। सबको खानेको मिलता है।”

मृणालकी आँखे भी चमकी, “सच क्या दीदी, शहरमे खानेको मिलता है ?”

“हाँ ! सब यही कहते हैं। खैरात बंटती है वहाँ ? भुण्डके भुण्ड

लोग घर-द्वार छोड़कर भागे जा रहे हैं, पर सब क्या वहाँ पहुँचते होंगे। कंकाल भी अच्छे होते हैं। देखकर डर लगता है जैसे दीमक खा गई हो। हाय न जाने किस जन्मके पाप उदय हुए हैं इस देशमें।”

मृणालने कहा, “दीदी। पापकी कौन जाने! पर यह भूख भी क्या परमात्माने भेजी है। आदमी आदमीको खाता है पर दीदी...”

कहती कहती हिचक गई। दीदीने देखा। कंकालसे उसकी हालत अच्छी नहीं है, पर न जाने कौन आशा प्राण अटकाये है। बोली, “कहती कहती रुक क्यों गयी?”

“कहती थी मैं भी शहर चली जाऊँ। चितरंजनको देखो सूखता जा रहा है। बड़ी आशा थी इसपर उनकी, इसे तो जिलाना ही होगा।”

दीदीने उसे फिर देखा, “तू चली जायगी अकेली?”

मृणाल बोली, “क्यों न जाऊँगी दीदी! सभी तो जा रहे हैं। लावण्यको तुम रख लेना। कुछ दिन बाद लोट आऊँगी।”

“लेकिन मृणाल! शहर क्या पास है। सब तो पहुँच भी नहीं पाते। रास्तेमें कहते हैं कि लाशोंके ढेर लगे हैं और फिर तू स्त्री है, अकेली है।”

मृणाल एक जीर्ण हँसी हँसी, जिसने उसके रूखे मुखको और भी दयनीय बना दिया। बोली, “स्त्री हूँ तो क्या? अब मुझमें है ही क्या जो कोई माँगें। इसीके लिए दो कौर मुँहमें दे लेती हूँ। तुम्हारे छोटे भइया कहते रहे—तू न खायेगी तो चितरंजनको क्या दूध मिलेगा? कितनी बेबस होती हैं स्त्रियाँ दीदी! अपने लिए वे कुछ भी नहीं कर सकतीं। खायेंगी संतानके लिए, पहनेंगी स्वामीके लिए। इसीलिए चितरंजनके लिए शहर जाऊँगी। वह जियेगा, देशका भला होगा, उनकी आत्मा प्रसन्न होगी।”

और कटते कहते मृणाल इतनी प्रसन्नतासे उमड़ी कि दीदी अचरजसे उसे देखती ही रह गई। मना करनेका साहस नहीं रहा और मना करती भी किस बूतेपर। गाँवमें अन्नका दाना भी नहीं था। बोली, “तो तू जायेगी। अच्छा। पर एक बात है, सँभलकर जाना। शहरका नाम बुरा है। न

जाने क्या क्या है वहाँ, घोड़ा गाड़ी, बिजली गाड़ी, फ़ौज गाड़ी और आदमी ही क्या थोड़े हैं। दम घोटनेवाली हवा है और भूखे वे भी हैं, खानेकी भूख नहीं है, तो अस्मत्की भूख है। माँ बहिन शहरमें किसीके नहीं होतीं।”

×

×

×

मृणाल गहर आ गयी। किस तरह आयी, यह वह आप ही नहीं जानती केवल आशा उसे खींच लायी। मौतने पुकारा, शैतानने पुकारा, दिलके चोरने पुकारा पर इस अमर आशाकी पुकारके सामने सब पुकार व्यर्थ गयी। लेकिन जिस पुकारका सहारा लेकर वह मुसीबतका समन्दर लील आई वह कोरी मृग-नृष्णा निकली। एक जून पेटकी खिचड़ीके लिए उसे जो युद्ध करना पड़ा, उसने मृणालकी कमर तोड़ दी। शहरके दृश्य देख-देखकर उसका बोल बन्द हो गया। वह चुपचाप आँखें फाड़े शून्यमें ताकती रहती। चितरंजन गोदमे पड़ा छातियाँ चिचोड़ता रहता। कभी होता है तो अलग अकेलेमें बुक्का फाड़कर गो उठती है। कभी जोर मारकर गिड़गिड़ाती है, पर गिड़गिड़ाना उसने मीखा हो तो बात बने। लेकिन फिर भी कभी उस रक्तहीन रूखे मुखड़ेपर किसीको दया आ ही जाती है। चुपकेसे एक दिन एक भद्र पुरुष उसके पास आकर बोले, “भूखी हो?”

मृणालकी आशा जागी, बोली, मेरी चिन्ता नहीं पर उस बच्चेको दूध मिल सके तो...।”

“हाँ, हाँ”, भद्र पुरुष बोले, “इसे दूध मिलेगा, तुम्हें भात मिलेगा।”

“ओह”—मृणाल गद्गद हुई, “कैसे कैसे पुण्यात्मा हैं अभी इस देशमें?”

वह कहते रहे, “मेरे साथ चलो, तुम्हें कपड़े मिलेंगे। मेरे देशकी युवतियोंको क्या इस प्रकार रहना सोहता है और फिर तुम तो...।”

अचानक मृणालका पाँव जैसे अंगारपर पड़ा, “ओ दइया।”

“चलो !”

मृणालने चितरजनको जोरसे दबा लिया। उसका हृदय फटने लगा।

“चलती नहीं ?”

“नहीं।”

“नहीं ?”

“नहीं, नहीं अभागो पुरुष, नहीं। पापी पेटकी ज्वालामे झुलसती हुई नारीसे तुम उसकी इज्जत भी माँग लेना चाहते हो। सब कुछ तो तुमने ले लिया अब क्या इतना भी रखनेका अधिकार तुम्हें खलता है।”

भद्र पुरुषमे लज्जा कहाँ थी, वीभत्स हँसी हँसकर कहा, “जान पड़ता है अभी नई आई हो। पगली, इसीके सहारे आज सेकड़ो धरोका खर्च चलता है। जीनेके लिए ऐसा करना पाप नहीं है।”

“आग क्यों नहीं लग जाती ऐसे जीनेको। कलकको माथेपर सजाकर कोई आँखे कैसे खुली रखता है। मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा भात, तुम्हारा दूध। मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम मुझे छोड़ दो।”

कहती कहती मृणाल रो उठी। भद्र पुरुष फिर हँसे। भवे चढ़ाकर हाथोको शून्यमे हिलाया। फिर शैतानी मुस्कराहटसे बोले, “आती लक्ष्मी-को ठुकरानेका जो परिणाम होता है वह मैं समझता हूँ, तुम जानती हो, पर अगर कभी आवश्यकता हो तो मैं क्रुद्ध नहीं होऊँगा। मैं सदा तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हूँ।”

और वे चले गये। मृणालके प्राण लौटे मानो आज भरपेट भोजन मिला। उसने एकदम निश्चय किया कि वह अब अपने घर लौट जावेगी, जरूर लौट जावेगी, किसी भी शर्तपर, एक भी क्षण वह शहरमे नहीं रहेगी। हाय रे! मानवके रूपमे कैसे शैतान यहाँ बसते हैं? खून चूस चूसकर लाल हुए ये दानव अब हमारा एकमात्र सबल भी फुसलाकर छीन लेना चाहते हैं। इसीलिए तो भूख इन्होंने गाँव गाँव फैला रखी है, इसीलिए तो ये मछली पकड़नेके काँटेकी तरह आशाकी डोर हिलाते रहते हैं। हाय रे भाग्य !

क्या सच भगवान् है, क्या सच ऊपरकी दुनिया है ? नहीं, नहीं; यह सब इसी शैतानकी माया है, नहीं तो क्या इमरानमें भी मानवको प्रणयकी सूझती है ?”

मृणा ठके भीतरका दवा विद्रोह जाग उठा। नारीकी समस्त कोमलता जलार कोणया वग चली। वन उनमे चिनगारी लगनेकी देर है कि वह जल उठेगी और ध्वंस कर देगी सब निश्चिन्ता। लेकिन, लेकिन गोदमें दिन-रंजन है। चितरंजन ! हाँ, वह देशकी धरोहर है, स्वामीकी स्मृति है।...लेकिन नहीं ! देश इस गोप्य नहीं है कि वह जिये, महान् बने। कहाँ है देशके वे बड़े आदमी ? वे देवता ? स्वामी जिनकी चर्चा करने कभी नहीं थकते थे। जिनके सुन्दर सुन्दर चित्र उन्होंने कमरेमें सजाये हैं। उन्हें दिखाकर वे कहते, 'देख मृणाल ! ये हैं स्वामी विवेकानन्द। अपनी वंग भूमिके लाल ! कैसे तेजस्वी हैं ? अमेरिकामें इन्होंने ही हिन्दू धर्मका नाम गुजाया था। इन्होंने मानव मानवके बीचकी खाईको पाटने-का अनथक प्रयत्न किया था। ये रामकृष्ण हैं इनके गुरु, निर्माता ! ये कवि ठाकुर हैं, देशके मुकुट मणि। ये नेहरू हैं, ये चितरंजन हैं, ये गान्धी।' न जाने उसे क्या क्या याद आने लगा, "हाय कहाँ हैं ये महामानव, क्यों नहीं ये देशको बचाने। गान्धी और नेहरू तो अब भी हमारे बीच हैं। वे क्यों नहीं अपना मिर ऊँचा करते। वे क्यों नहीं यहाँ आकर देखते कि मानव मानवके रक्त मांसको खाकर ही सन्तुष्ट नहीं हैं, वह उसकी आत्मापर भी कलंक लगाना चाहता है।"

उसने बहुत कुछ सोचा। उसके स्वामीने जो कुछ समझाया था, सुझाया था वह अब इस बेवस, शिकंजेमें फँसी तड़फड़ाती नारीको रह रहकर याद आने लगा। याद ही नहीं, उसमें तेज फूटने लगा, वह तेज जो मृत्युको चुनौती देता है पर चुनौतीके सामने तो चितरंजन है, जो सब विद्रोहको, तेजको लील जाता है। वह रो पड़ती है, हाय स्वामी। स्वर्गमें, नरकमें जहाँ भी तुम हो देख रहे हो। मुझे बताओ मैं क्या करूँ ? तुम मुझे मरने

नहीं देते, दुनिया जीने नहीं देती। तुम कहते हो यह देशका धन है पर देश तो अपने धनको पैरोंसे रौंद रहा है। उसे तो मोना प्रिय है। लेकिन इसे तो बचाना ही होगा! कैसे? कैसे बचाना होगा? गाँवमें सर्वभक्षी मौत फैली है। इसे छोड़ेगी नहीं और वह फूट-फूटकर रोने लगी। पर रोते रोते जैसे उसे कुछ मुभाई पड़ा। सागरकी अथाह तरंगोंमें थपेड़े खाते खाते, जैसे उसने उड़ते पक्षीको देखा। उसने जोरसे बच्चेको छातीमें भर लिया और फिर चूमने-चूमते पागल होने लगी, “हाय मेरे लाल! तू इतना सुन्दर क्यों है? तू इतना प्यारा क्यों है?” और इसी प्रकार पिचारीके आल-जालमें फंसी वह भूखोंके बीचमें जाकर पड़ रही। इन आर्तनादोंके बीच प्रकृतिका नियम उसी तरह चलता रहा। वही अँधेरा, वही चांदनी, वही गर्मी, वही वर्षा। वही चिड़ियोंकी चहचहाहट, कुत्तोंकी भों भों। आस्मानका नीलापन, सूर्यका उत्थान और पतन। मृणाल जहाँ सो रही थी, वहाँ भी रातके बाद दिन उगा। चहल-पहल जागी, आवागमन शुरू हुआ। अग्नित भूखोंका रोना चारों तरफ़ व्याप्त हो गया। जो मरणासन्न थे वे आर्तनाद कर उठे, जो मुक्त हुए उनकी आत्माएँ आसमानमें मँडराने लगीं लेकिन बीचवृत्तसे दूर एक ऊँचे मकानके पीछे कुछ विशेष चहल पहल मची। देखने-देखने एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गई।

“वाा हे रे, क्या है यहां,”—एक स्वर उठा।

“बच्चा।”

“बच्चा, किसका बच्चा?”

“वाा, एक बच्चा है, अकेला पड़ा है धरतीपर।”

“कोन उल गया, देखा किसीको?”

“नहीं।”

“ओ, कितना सुन्दर है पर कितना दुर्बल।”

“अरे रे! रोता है”—वृद्ध पुरुष आगे बढ़ आये, “ढूँडो रे। किसका है?”

किमीने कहा, “किमी भूखेका होगा।”

“ना, ना”, बाबा बोले, “भिखारी क्या खाकर ऐसा बच्चा पाएगा।”

“मोनेकी प्रतिमा है।”

कि भीड़को चीरते एक भद्र पुरुष आये। वे ऊँचे, मकानके स्वामी थे। उनके साथ दो नारियाँ थी—एक युवती, दूसरी प्रौढ़ा-मी।”

प्रौढ़ाने आगे बढ़कर कहा, “कहाँ है रे वह बच्चा, देख्।”

युवती देखकर बोली, “दइया रे, कैसा रोता है यह?”

“किसका है?”—प्रौढ़ा कातरसी बोली।

युवतीने उसे गोदमे चिपका लिया। शिशुको न जाने क्या मिला कि वह एकदम चुप हो गया और मुँह फाड़-फाड़कर छातीमे मारने लगा। युवती करुणार्द्र होकर बोली, “भूखा है, दीदी। माँका दूध माँगना है।”

“तो ले चल, घर ले चल, शोभा”—प्रौढ़ा बोली और मुड़कर पुरुषसे कहा, “ढूँढो जी किसका बच्चा है? माँ होगी तो कलेजा फटता होगा। गोदी खाली होनेपर भी मेरा जी बैठा जाता है।”

लेकिन वे भीड़को चीरकर निकले निकले कि कोलाहल मच गया, “देखो, देखो, वह कौन है?”

“कौन है? कौन है जी? वह स्त्री! पगली लगती है वह तो!”

कि वह पगली दौड़ी-दौड़ी वही आई। वह मृणाल थी। मुखे बिखरे बाल, फीका मुख, सजल नयन, दयार्द्र वाणी, “अरे ठहरो, बच्चा मेरा है, मे माँ हूँ, मे उमकी माँ हूँ।” कहते-कहते उसने बच्चेको युवतीकी गोदमे झपट लिया और छातीमें इस तरह दबोचा जैसे उसे कोई छीन ले जा रहा हो और फिर तीरकी तरह उमी ओर, जिधरसे आयी थी चली गयी।

अचकचाकर प्रौढ़ा बोली, “बच्चा इसीका है, पर यह है कौन?”

युवतीकी आँखें भर आई थी, वह बोल नहीं सकी, केवल देखती रही।

भीड़ कौतूहलसे चर्चा करती फटने लगी कि प्रौढ़ा फिर भद्र पुरुषको संबोधित कर बोली, “अजी, इसका पता तो लगाना यह है कौन ?”

भद्र पुरुषने धीरेसे कहा, “किस किसका पता लगाएंगी, सरोजिनी ! आज बंगभूमिका रोम-रोम पीड़ित है, मानवता नष्ट हो चुकी है, प्रलयकी भूमिका बंध रही है। कौन बचेगा, और किसको बचाएगा ? आओ चलो पर इसे देखूंगा।”

भीड़के लोग चले गये थे। ये तीनों भी आश्चर्य और करुणासे दबे-दबे घरकी ओर लौटे कि युवती चौंक पड़ी, “वह फिर आ रही है।”

प्रौढ़ा मुड़ी, “आ रही है ?”

“हाँ, दीदी ! देखो। वह फिर आ रही है।”

और सच ही मृणाल फिर पागलोंकी तरह लौट आयी। आते ही उसने बच्चेको प्रौढ़ाके सामने धरतीपर लिटा दिया। बोली, “मेरी भूल थी। मैं इसे पाल न सकूंगी। इसे तुम ही पाल सकती हो, यह तुम्हारा बच्चा है। देशका बच्चा है।”

और इतना कहकर वह पागलोंकी तरह लड़खड़ाती हुई, मकान, सड़क, अगीचा सबको चीरती हुई दूर, भिखारियोंके बड़े भुण्डमें अन्तर्धान हो गयी। यह सब इतनी तीव्रतासे, इतने रहस्यमय वातावरणमें हुआ कि वे तीनों हक्के-बक्के रह गये। बालक जब रोया तभी उनकी नींद खुली। प्रौढ़ाने लपककर उसे गोदमें चिपका लिया और बोली, “शोभना ! मैं सच कहती हूँ, यह बच्चा उसका नहीं है। कभी नहीं है।”

१९४५]



गृहस्थी

बीणा जब बाहरसे लौटी तो सदाकी तरह भुँभुलाहटसे भरी हुई थी । उसके पीछे दोनों वच्चे ऐसे दौड़ रहे थे मानो इंजनके साथ ट्रेनके डिब्बे घि ट रहे हों । वह शीघ्रतासे ऊपर चढ़ गई । आगे बढ़नेसे पूर्व उसने जीनेके पासवाले कमरेमें झाँककर देखा, हेमेन्द्र तरतपर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़नेमें व्यस्त था । उसे देखकर वह कुछ बड़बड़ाई और आगे बढ़ गई, लेकिन वच्चे नहीं बढ़े । वे भड़भड़ाते हुए कमरेके अन्दर दाखिल हो गये । अतुलने सीधे, तख्तके ऊपर, हेमेन्द्रके पाम जाकर कहा, “पिताजी ! डाक्टरने कहा है, अम्माकी अँगुली कटेगी ।”

हेमेन्द्रने मुँह उठाकर अतुलको देखा और फिर धीरेसे कहा, “नीचे उतरोगे ।”

“अम्माकी अँगुली कटेगी ।”

मैं कहता हूँ नीचे उतरोगे । जाओ ! जाओ भाई, उतर जाओ ।”

अब अतुलने मुँह चढ़ा लिया । कँआसा-सा होकर बोला, “हम कहते हैं, अम्माकी अँगुली कटेगी ।”

“ओफ़ो ! भाई रोते क्यों हो ? कहाँ है अम्मा ?”

मुजाता उर्फ़ ताताने आगे बढ़कर कहा, “मामाजी ! मामीके हाथमें फुंसी निकली है न ? डाक्टरने उसे काटनेको कहा है ।”

“ओहो ! यह बात थी । जाओ, जाओ, मुझे पढ़ने दो । बाहर खेलो जाकर ।”

मुजाता बाहर जानेको मुड़ी, पर अतुल महाशय खिड़कीपर चढ़ गये और बोले, “मैं यहाँ बैठकर पढ़ूँगा । ताता तू भी आ ।”

जा बैठी और दोनों एक-एक किताब उठाकर परीक्षार्थी विद्यार्थियोंकी भाँति पढ़नेका प्रयत्न करने लगे। हेमेन्द्रने एक बार उन्हें देखा, फिर मुस्कराकर अपनी पुस्तककी ओर मुड़ गया। कुछ क्षण बीते होंगे कि एक हाथमें दूधका गिलास लिये वीणाने वहाँ प्रवेश किया। उसे पासकी तिपाईपर रखकर दह बोली, “अनुन, ताता ! जाओ, मैं दूध रख आई हूँ। जाकर, पियो।”

दूधका नाम सुनकर दोनों बाहर दौड़ गये। तब वीणाने बेरुखीमे कहा, “घरमें आटा नहीं है।”

“नं !”

“घरमें आटा नहीं है।”

स्वरमें आवश्यकतासे अधिक तलखी थी। यद्यपि वह तलखी उसके लिए नई नहीं थी, तो भी उसे उठना पड़ा। उसने धीरेसे गिलास उठाया, फिर पूछा, “तुमने पिया ?”

वीणा और भी भुनभुना उठी, “मैं कहती हूँ घरमें आटा नहीं है।”

“नहो है तो अन्नपूर्णा जाने।”

वीणाने तीव्रतासे कहा, “अन्नपूर्णा गई भट्टीमें। मुझे आटा चाहिए।”

हेमेन्द्रपर तनिक भी असर नहीं हुआ। बोला, “वीणाका स्वर इतना कर्कश नहीं होता चाहिए।”

वीणा अब उबल पड़ी। जो कुछ भीतर भरा हुआ था वह वर्षाके नालेके वेगके समान बाहर निकलने लगा, “मैं कहती हूँ अपनी काहिली और नि-कम्पेयकाली दाँतोंके पीछे क्यों छिपाने हो ? कुल करते क्यों नहीं ? ऐसे ही जीवन पिताना था, तो शादी क्यों की थी ? क्यों दुनियामें रहनेकी हविस करते हो, कहीं जंगलमें जा बसे होते ! कान खोलकर सुन लो, मैं अब इस तरह तुम्हारा घर नहीं चला सकती।”

हेमेन्द्रने मानो कुछ हुआ ही नहीं, ऐसे कहा, “मेरा घर ! किसने कहा कि घर मेरा है ? घर तो घरवालीका होता है।”

“मैं अब इन बातोंमें आनेवाली नहीं हूँ। अगर रोटी खानी है, तो उठकर बाज़ार जाओ और गेहूँ लेकर आओ।”

“आ जाएंगे।” हेमेन्द्रने उसी शान्तिसे कहा और दूध पीकर पूर्वतः लेट गया।

पर वीणा शान्त होनेवाली नहीं थी। हेमेन्द्रको लेटते देखकर और भी क्रुद्ध हो उठी। बोली, “इस तरह काम नहीं चलेगा। मुझे आज फ़ैसला करना है।”

“किस बातका?”

“कि आपको काम करना है या नहीं? आप कभी कुछ मोचते भी हैं?”

शीघ्रतासे बीचमें टोककर हेमेन्द्रने कहा, “यही तो मुसीबत है। इतना सोचता हूँ कि फ़ुरसत नहीं मिलती।”

“खाक मोचते हो। कुछ मोचते होते तो ये दिन क्यों देखने पड़ते? तुम तो एकदम निकम्मे हो गये हो। तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि घरकी दियासलाई ही दिखा दो। फुक् जाएगा, तौ न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।”

“ठीक कहती हो वीणा, कांश कि मैं दियासलाई जलां पाता! जला सकता, तो प्रकाश न हो जाता? अब तो मैं निरे अन्धकारमें टटोल रहा हूँ।”

वीणा तिलमिल उठी। उससे वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। बड़बड़ाती हुई अन्दर चली गई और हाथके गिलासको बड़ी तेज़ीसे जूठे वर्तनोंमें फेंक दिया। जोरका शब्द करता हुआ वह दूर जा पड़ा। फिर उठाया और दुगुनी तेज़ीसे यथास्थान रख दिया। उसके सामने ढेर सारा काम करनेको पड़ा था। उसे वर्तन माँजने थे; दाल बीननी थी फिर कहींसे आटा लाकर रोटी बनानी थी। क्योंकि उनके कोई एक मित्र आनेवाले थे। ‘जी’ में आना है जिस किसीको खानेको कह देते हैं, पर यह नहीं सोचते कि खाना आणगा कहाँसे? कोई बात है, मुझे दर-दर भटकना पड़ता है। और ये हैं कि आरामसे लेटे लेटे ज़मीन आस्मानके क़लाबे मिलाते रहते हैं। दोस्तोंके

साथ ऐसे कहकहे लगाते हैं कि आसमान फटने लगता है...।' कि उसी समय उनकी दृष्टि रसोईके अन्दर गई। अतुल और मुजाता दोनों अपने-अपने आसनोंपर बैठे थे। अतुलके सामने दूध बिखरा पड़ा था और वह मुजाताके गिलासमें दूध पी रहा था। वीणा चिल्ला उठी, "अतुल !"

अतुलने कांपकर गिलास मुंहमें हटाया।

"तू मुजाताका दूध क्यों पी रहा है?"

अतुल जोरसे बोला, "उसीने दिया है।"

मुजाताने धीरेसे कहा, "मुझसे पिया नहीं गया, मामी !"

वीणा नरम पड़ी, पूछा, "किसका दूध बिखरा है?"

अतुलने कहा, "हम तो आ रहे थे, गिलासमें पैर लग गया।"

वीणा एक बार फिर कांपी, पर दूसरे ही क्षण चिल्लाकर कहा, "पैर लग गया ! क्यों लग गया ? देखकर नहीं चला जाता ? बड़ी नदी वह रही है न दूधकी। कलको यह भी नहीं मिलेगा। इन लक्षणों दूध क्या पानीकी बूंदको तरमोगे। तुमने जन्म ही ऐसे घर में लिया है। पिछले जन्ममें जरूर पाप किये होंगे।"

वीणा कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई। आँसू भर आये। वाणी रुंध गई। उठी, पतीलीमें जो दूध था उसे चुपचाप दोनोंके गिलासमें उड़ेल दिया। दोनों बच्चे सप्रश्न देखते ही रह गये ? वीणाने कहा, "देख क्या रहे हो ? जल्दीसे पीकर गिलास मुझे दो।"

दोनों बच्चे यन्त्रवत् दूध पीने लगे। वीणाने कहा, "मुजाता ! दूध पीकर शीला भाभीके पास जाना।"

मुजाताने एक साँसमें दूध पीकर कहा, "जाऊँ।"

"हाँ।"

"क्या कहूँ?"

"कहना दो सेर आटा चाहिए।"

"अच्छा।"—कहकर मुजाता धनुषसे निकले तीरकी तरह भागी।

अतुलने पीछा करना चाहा पर माँकी आँखें देखकर भिन्नक गया। कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर बैठकमें पहुँचा। हेमेन्द्रके पास कोई मित्र आ बैठा था। गहरी बातें हो रही थी। वह कुछ क्षण इधर-उधर मंडराया। फिर कोई किताब गिरा दी, तो हेमेन्द्रने कहा, “बाहर जाकर खेलो भाई।”

फिर अन्दर लौटा। वीणा वरतन माँज रही थी। कई क्षण देखना रहा, फिर बोला, “अम्माँ !”

“हाँ।”

“तुम उठ जाओ।”

“क्यों? वरतन कौन माँजेगा?”

“हम माँजेंगे। तुम्हारे हाथमें चोट लग रही है।”

वीणाने ऊपरसे नीचेतक सिहरकर अतुलको देखा, मुस्कराई, बोली, “जा, जा, बाहर खेल। वरतन माँजेगा! बापने निहाल कर रखा है जो बेटा करेगा।”

अतुल कुछ खिसिया गया पर वह कुछ कहे कि दाइरसे आवाज आई, “अरे भई, पानी भेजना !”

वीणाने यन्त्रयत् गिराग धोया और अतुलको देकर स्नेहसे कहा, “जा बेटा, अपने पिताजीको पानी दे आ।”

अतुल शीघ्रतामे पानी लेकर चला था कि ताताने आकर कहा, “मामी, उन्होंने आटा नहीं दिया।”

“क्या कहा ?”

“कह रही थीं, तीसरे दिन आटा माँगने आ जाती है। कहाँसे दें।”

यह सुनना था कि वीणा तड़प उठी, “क्या कहा, तीसरे दिन आ जाती है? कौन मरा जाता है तीसरे दिन? और कभी, लाती हूँ तो क्या कभी रखा है? तूने कहा नहीं?”

मुजाता मामीका रुद्र रूप देखकर पहले ही घबरा गई थी, अब और भी सिटपिटाई। बोली नहीं। वीणा तेज हो उठी, “हाय, जैसे घरमें थे वैसे

सोवेमे आ गये। बिलकुल अपने निकम्मे मामापर गई है। अरे तुझमे मुँह फाड़कर नहीं कहा गया कि मामी बता तो कौनसा आटा रख लिया है तेरा? ले जाती हूँ तो दूसरे दिन दे भी तो जाती हूँ।

सुजाता अब भी भयभीत दीवारसे चिपकी खड़ी रही, पर वीणाका क्रोध शान्त नहीं हो रहा था। उसने बरतनोको छोड़ जल्दी-जल्दी हाथ धोते हुए चिल्लाकर कहा, “अब खड़ी क्या है? बरतनोको धो ले।”

और कहकर तड़पती-तड़पती पहुँची शीला भाभीके घर। भरी हुई तो थी ही, चिल्लाने लगी, “मैं कहती हूँ भाभी! तुझे ताना मारते शर्म नहीं आई? आटा नहीं था तो मना कर देती, पर बड़े बोल क्यों बोलनी है? बता तो किस दिन तारा आटा नहीं लाटा और कौनसी चीज रह गई बता?”

शीलाको यही आशा थी वह पूरी तरह तैयार थी। बोली, “देख वीणा! यहाँ तड़कने-भड़कनेकी ज़रूरत नहीं है। आटेको मैंने मना नहीं किया है। मैं तो कह रही थी, हेमे द्रव्य यह निकम्मापन अच्छा नहीं। सबके घर भिट्टीके चूल्हे हैं। आजकल किसके घर मोना बरसता है? सब मेहनत करते हैं। उसे चाहिए हाथ-पैर हिलाए।”

वीणाने तड़पकर वीचहीमे टोकते हुए कहा, “बस, बस, शीला भाभी! रहने दे। उनतक न जा। उन्हें तू खिला रही है क्या? तेरा इतना साहस कि तू उन्हें निकम्मा कहे? तेरे तो उनके पैर धोने लायक भी नहीं है। दुनिया पूजती है उन्हें। दूसरे दर-दर मारे फिरते हैं, तो कोई नहीं पूछता ओर यहाँ घर बैठे पूजने आते हैं। कोई दिन जाता होगा जो पाँच-सातका खाना न बनाती हूँ। बनाती हूँ तो मैं, मुसीबत है तो मेरी, तुझे क्या दर्द उठा जो लगी उनका अपमान करने? दो पैसे हो गये हैं तो लाड़ोका दिमाग फिर गया है। ब्लैक मार्केटकी कमाईके यही फल होते हैं, अभिमान फूलता है। यहाँ तो तन खपाना पड़ता है तब दो टुकड़े नसीब होते हैं। पर कोई बता दे, किमीका रखा है, किसीसे भीख मांगी है?”

नारीके अभिमानपर चोट लगती है तो तेज्र जाग उठता है। परन्तु वह तेज्र एक सीमापर पहुँचकर पिघलने लगता है। वीणाका क्रोध पानी बन चला, आहत अभिमान आँखोंकी राह वह निकला। बोली, “तुझे मैं अपना समझती थी तब तेरे पास आ जाती थी। नहीं तो और घर बहुत है। घर-गिरस्तीमे लेना-देना चलता ही रहता है।”

और इतना कहकर वह भरे गलेसे लौट चली। शीला बहुत-कुछ कहनेको तैयार बैठी थी, पर आँसू देखकर उसकी सिट्टी गुम हो गई। वह खिसिया गई और निकाला हुआ आटा वहीं पड़ा रह गया।

लेकिन कुछ देर बाद कही औरसे आटा लेकर वीणा जब घर पहुँची तो देखती क्या है कि शीलाका लड़का आटा लिये नीचे खड़ा है।

वीणाने अभिमान भरे स्वरमें कहा, “मुझे आटा नहीं चाहिए। कह देना मुझे उसका कुछ नहीं चाहिए।”

और झपटकर वह ऊपर चढ़ गई। कमरेके पास आकर मुना कि अन्दर कई व्यक्ति जोर-जोरसे बोलकर अपनी महत्ताको प्रकट कर रहे हैं, पर उसके पतिका स्वर सदाकी तरह शान्त और धीमा है। उसे लगा उस शान्तिमें गहनता है। धुआँधार वर्षाका पानी धरतीको धो जाता है, पर उसकी प्यास नहीं बुझा पाता। वह काम तो भरे हुए बादलोंकी धीमी-धीमी बूंदें ही कर सकती है।

एक बन्धु बड़ी तीव्रतासे बोल रहे थे, “चारों ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। आचरण समाप्त हो चुका है। कुछ साम्राज्यवादी स्वार्थी लोग अपना उल्लू मीधा करनेके लिए दुनियाको गुमराह कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें आपके पास क्या है जो इस बढ़ते हुए अत्याचारका विरोध कर सकें?”

हेमेन्द्रने शान्त स्वरमें जवाब दिया, “मेरी दृष्टिमें तो आवश्यकता अकिंचन बननेकी है।”

मित्र ठगेसे रह गये! कई क्षण सन्नाटा रहा, फिर एकने कहा, “क्या?”
दूसरे जोरसे हँसे, “बाहियात! ढोंग।”

तीसरे बोले, “आपका मतलब क्या है ?”

हेमेन्द्रने उसी शान्तिसे जवाब दिया, “मतलब साफ़ है। आवश्यकता इस बातकी नहीं है कि हम यह पता लगायें, किसमें कितने दोष हैं, बल्कि इस बातकी है कि हम अपने दोषोंको स्वीकार करें।”

एक कहकहा लगा। एक मित्रने कहा “वही खोखला आदर्शवाद।”

दूसरे तलखीसे बोले “आप तो बस सदा साधु बननेकी बात कहते हैं पर उसके लिए तपोवनकी जरूरत है, दुनियाकी नहीं।”

हेमेन्द्रने कहा, “तपोवन दुनियासे बाहर नहीं है, देखें तो तपोवनोंने अक्सर सफलतापूर्वक शासन किया है।”

मित्र भी अप्रतिभ न होतेकी प्रतिज्ञा करके आये थे, और भी विद्रूपसे बोले, “आप जिम त्यागकी ओर संकेत कर रहे हैं, वह क्रांतिके बिना असंभव है।”

हेमेन्द्रने जवाब दिया, “क्रांतिकी आवश्यकता हो सकती है, पर उसका शोर एकदम अनावश्यक है। मैं तो कहता हूँ मेरे भाई ! सब कुछ बदल दो पर जबतक अपनेको अकिंचन समझकर काम करनेकी शक्ति नहीं पा सकोगे तबतक कुछ नहीं होगा। आज नहीं, कल भगड़ा होगा। अपना महत्त्व बढ़ा तो दूसरोंका घटेगा। दूसरोंका महत्त्व घटा तो शान्ति सद्भावना और सुख सब हवा हुए।”

किमीने कुछ जवाब नहीं दिया। हेमेन्द्रने क्षणभर रुककर फिर कहा, “मो भाई, मूल बात तो अकिंचन बननेकी है शेष जो जनतन्त्र, अधिनायकतंत्र, समाजवाद, गांधीवाद या विषाक्त गैस, एटम बम, हाइड्रोजन बमकी बात है, वह सब ऊपरी है। भोजन उन्हें जड़से मिलता है। जड़में अकिंचन है, तो ये सब मनुष्यके दास हैं। नहीं तो तुम जानते हो, आज ये सब मनुष्यकी छाती पर चढ़ बैठे हैं और मनुष्य है कि अपनेको उनका स्वामी समझकर उन्हें दूसरोंको नष्ट करनेका आदेश दे रहा है।”

मित्र जैसे अब बेसबरे हो चले थे। सहसा एकने तीव्रतासे कहा, “आप

तो आत्महत्या करनेकी बात कहते हैं। क्या नष्ट हो जानेमें ही कल्याण है ?”

उसी तरह धीमे स्वरमें हेमन्धने कहा, “आपकी बात मान ली पर मैं पूछता हूँ, हम नष्ट हो गये तो दुनियाका क्या विगड़ जाएगा ? और विगड़ भी जाए, कोई इस रास्ते आकर देखे तो सही। लोग तो पहले ही काल्पनिक भयके मारे जान दिये डाल रहे ह, मेरे भाई ! भय ही मनुष्यका एक मात्र दुश्मन है और आजकी यह सारी शक्ति इसी भयकी नींवपर खड़ी हुई है।”

अन्दर फिर सन्नाटा गहरा उठा। लगा इस बातका किसीके पास कोई जवाब नहीं है। वीणाका मन एक गधुर आह्लादसे भर उठा पर उसे तो रोटी बनानी है। याद आते ही वह जैसे स्वर्गसे गिरी ओर आगे बढ़ गई। जल्दीसे चूल्हेमें आग चेतन की। कौन जाने इन्हींमें कोई खानेवाला हो और वह अभी कहला भेजे ? कोई भरोसा थोड़ा ही है उनका। उसके हाथ काम कर रहे थे और मस्तिष्क मोच रहा था कि कुछ देर बाद अनुलने आकर कहा, “अम्मा ! पिताजी कहते हैं, खाना पाँच आदमियोंके लिए बनाना।”

वीणा जैसे कुछ समझी नहीं, “क्या कहना है ?”

“पिताजी कहते हैं, पाँच आदमी खाना खाएंगे।”

जैसे एकदम ज्वालामुखी फट गया हो। चिल्लाकर वीणा बोली, “कहदे जाकर यहाँ होटल नहीं खुला है और न कोई सदाव्रत लगा है। क्या समझ लिया है मुझे ? कह दिया पाँच आदमी खाना खाएंगे। जैसे घरमें कामधेनु बंधी हुई है। वाह जी वाह ! कुछ करना न धरना ! दिनभर नखतपर पड़े हुए हुक्म चलाये जाते हैं। करना पड़े तो पता लगे। भला कोई बात है ? पाँचको क्या मैं अपना सिर खिलाऊँगी। ज़रा बुलाकर तो ला।”

अनुल बच्चा था पर जान पड़ता है ऐसी बातोंका आदी था। बोला, “अम्मा ! वहाँ तो बहुतसे आदमी बैठे हैं।”

“तू जायगा भी या यहीं खड़ा-खड़ा ज़बान चलाएगा ? आखिर है

तो उमी वापका बेटा न ! जा ; मैं कुछ नहीं कर सकती । कुछ नहीं करूँगी । जो होगा देखा जायगा । एक दिनकी हो तो भुगती जाय, यह तो रोज़-रोज़की दाँनाकिलकिल है । आज इसका फ़ैसला होकर रहेगा । मैं अब इस घरमें नहीं रह सकती । मैं इस घरमें नहीं रहूँगी ।”

वीणा बोलती जाती थी और जल्दी-जल्दी आटा मलती जाती थी । चूल्हेकी लकड़ी बाहर निकल आई थी, उसे तेज़ीसे अन्दर डाल दिया । दालका मँल उफन रहा था उसे उतारा और सागके ऊपर का पानी बदला और एक बार फिर जोरसे कहा, “मैं देखूँगी आज क्या होता है ? आज फ़ैसला नहीं किया तो मुझे भी वीणा कौन कहे ? मुझे क्या कोई कमी है ? न जाने किस जन्मके पापसे ऐसे निकम्मेके पल्ले बंध गई हूँ ? पर मैं क्या अपाहिज हूँ ? दस काम कर सकती हूँ । पढ़ा सकती हूँ ।”

फिर उसी तेज़ीसे अतुलसे कहा, केवल कहना चाहा, कह न सकी क्योंकि तभी मामनेसे मदन आ गया । बोला, “भाभी नमस्ते ।”

किसी तरह संभलकर वीणाने उत्तर दिया, “नमस्ते ।”

“ओ हो ! भोजन बन रहा है । बैठकमें बड़ी भीड़ है । आज भी दावत है क्या ? कोई खास प्रबन्ध तो दिखाई देता नहीं ?”

मदन इस घरका पुराना परिचित है । अक्सर आता रहता है । हेमेन्द्रसे अधिक वीणासे उसकी पटती है । पहले तो वीणा उससे बचती थी क्योंकि उसकी वाणीमें संयम कम था, पर जब मदनने भइयाके विरोधमें भाभीका पक्ष लिया तो वीणा उससे नाराज़ न रह सकी । बादमें तो वह कई बार उसके आगे रो-रो पड़ी । आज भी फफक उठी, “भीड़ लगी है तो खाएँगे ही । हुक्म आया है, पाँच आदमियोंका खाना तैयार करो, अब बताओ मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? इन्होंने तो मेरा जीना कठिन कर दिया ।”

“पाँच आदमी खाना खाएँगे ?”

“हाँ ।”

“पहले नहीं कहा था ?”

“पहले तो एकका कहा था।”

“हाय राम !” मदनने नेत्र विस्फारित करते हुए कहा, “यह अत्याचार है ! ना बाबा ! कोई बात है ? किसी भली औरतको इस प्रकार सताना । भाभी ! सच कहता हूँ तुम हो, नहीं तो इस घरमें कोई टिक सकता है ? घरमें दाना नहीं, लानेकी हिम्मत नहीं; दिल इतना बड़ा कि दावत देंगे शहर भरको। हूँ।”

“क्या बताऊं, तू ही देख ले।”

“भाभी ! इसका तो कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही होगा। मैं बताता हूँ, आज तुम खाना मत बनाओ। देखते हैं, क्या होता है। आखिर एक दिन इसका फ़ैसला तो होना ही है।”

“होना तो है।”

“तो बस, आज होने दो। सबसे अच्छा तो यह है कि तुम ग़ायब हो जाओ।”

न जाने क्यों वीणाने यह सुनकर एकदम मदनको देखा। तब बलिष्ठ शरीर और लाल सेबसे मुखवाला वह मदन मुस्करा रहा था और उसकी आँखोंसे मद-सा भर रहा था। वीणा काँप उठी। कई बार काँपी, फिर सस्मित-सी उठकर अन्दर चली गई। लगा वह गिर पड़ेगी। उसने दीवार पकड़ ली। कई क्षण उसपर सिर टिकाये रही, फिर आप-ही-आप आगे बढ़ी जैसे वीणा नहीं थी कोई यन्त्र था। अलमारी खोली। उसमें एक सन्दूकची रखी थी। उसीके नीचेके खानेमें एक रूमाल था जिसमें कुछ रुपये बँधे थे। उनमेंसे वीणाने तीन रुपये लिये और बाहर आई। जैसे युग बीत गये थे। बिल्कुल बदल गई थी। बोली, “मदन !”

मदन स्वयं चकित था कहा, “भाभी !”

“ले भइया ! ज़रा बाज़ार तो जाना। पास ही चाटवालेकी दुकान है। एक रुपयेकी चाट अतुलको ले दे और सुजाताको भी ले जा। दूध मिलेगा, गरम या ठंडा, कैसा भी हो। सामकके चावल पडे हैं। वे ह्री बना दंगी और ह्रीं।”

एक दर्जन पक्के केले भी लिवा देना । न हो तो दे जाना । तुम्हें तकलीफ़ तो होगी ।”

मदन था भी और नहीं भी । वह सुननेका नाटक कर रहा था और देख रहा था वीणाके मुखको । कुछ पल्ले नहीं पड़ा पर दूसरीबार पूछने और मना करनेका साहस भी उसमें नहीं था । उलटे पैरों दौड़ा, “अभी लाता हूँ ।”

नीचे उतरकर होश आया । पहले तो मन-ही-मन वीणाको एक मोटीसी गाली दी । फिर लाना क्या है यह याद करने लगा, पर यादने सरासर धोखा दिया । सौभाग्यसे अतुल और सुजाता साथ थे और उन्हें सब कुछ याद था इसलिए कोई दिक्कत नहीं हुई । बाज़ारसे सामान आया और वीणाने सबके लिए खाना बनाया । मित्र लोग खाते जाते थे और प्रशंसाके पुल बाँधते जाते थे । स्वयं हेमेन्द्रको उस दिनकी विविधतापर अचरज हुआ ।

सब खा चुके तो वीणाने दोनों बच्चोंको अच्छी तरह खिलाया-पिलाया, पर अपने लिए उसने कुछ भी बचाकर नहीं रखा । अतुल और सुजाताके सामने जब उसने अंतिम रोटी और रही-सही खीर परसी तो दोनों ने एक-दूसरेको देखा । वीणा भभक उठी, “बुत बने क्यों बैठे हो ? खाते क्यों नहीं ? पहले ही बहुत मिलता है जो लिये बैठे हो । कबतक तुम्हारे लिए रुकी रहूँगी ? अभी चौका उठाना है, बरतन माँजने हैं । जल्दी खाओ और खबरदार जो कुछ छोड़ा । राशनका जमाना है ।”

दोनों बालक बोलनेमें असमर्थ जल्दी-जल्दी खाने लगे । खा चुके तो बैठकमें पहुँचे । अतिथि लोग चले गये थे और हेमेन्द्र किसी समाचारपत्रके पन्ने उलट रहा था । उसने एक बार दृष्टि उठाकर दोनों बच्चोंको देखा और पूछा, “खा लिया भाई ?”

दोनोंने एकसाथ गरदन हिलाकर स्वीकृति दी । हेमेन्द्रने फिर पूछा, “अच्छा लगा न ?”

अतुल एकदम बोला, “पिताजी, अम्माने खाया ही नहीं ।”

ताताने शीघ्रतासे समर्थन किया, “हाँ, मामाजी ! मामीके लिए कुछ नहीं बचा।”

“कुछ नहीं !”

“हाँ !”

“क्यों ?”

“पता नहीं।”

तीनोंने एक-दूसरेको देखा। जानकर नहीं, अनजाने ही दृष्टि मिल गई। हेमेन्द्र एकबार तो उठाकर कोई पुस्तक पढ़ने लगा, पर कुछ देर बाद न जाने क्या हुआ ? पुस्तक बन्द करके अंगड़ाई ली और एक दृष्टि कमरेपर डाली। वही एक मेज, एक कुर्सी, दो आराम कुर्सियाँ, एक डेस्क, एक तख्त और चटाईका फर्श और आलोंमें कुछ किताबें। दीवारपर दो-तीन पारिवारिक चित्र—सब कुछ देखकर वह बाहर आया। देखा—बीणा रसोईके बाहर बरतन मल रही है। उसका आँचल गोदीमें पड़ा है। बाल कुछ बिखरेसे हैं। मुखपर गहरी वेदनाके चिह्न हैं। कुछ अच्छा नहीं लगा। पास आकर पुकारा “बीणा ?”

बीणाने आँख झुका ली, “हाँ।”

“मुनो तो।”

“कहो भी।” स्वरमें कर्कशता थी।

“तुमने कुछ नहीं खाया ?”

अब बीणाने गरदन उठाई। उसी कर्कश स्वरमें कहा, “तुम्हें क्या मतलब ?”

“मतलब तो कुछ नहीं पर पूछता था।”

बीणा उबल उठी, “मतलब नहीं तो क्यों पूछते हो ? बड़े पूछनेवाले बने हो, जैसे कोई समझे बड़ा ध्यान रखते हैं घरका ! कान खोलकर सुन लो, मैं जा रही हूँ।”

हेमेन्द्रको लगा उसने यहाँ आकर गलती की, पर अब तो तीर कमानसे छूट चुका था। मुस्कराकर बोला, “तुम तो बीणा, व्यर्थ ही इतनी तेज होती

हो। अरे भाई ! वे आ गये तो क्या मैं मना कर देता ? सब अपने-अपने भाग्यका खाते हैं। दाने-दानेपर मोहर है। बेचारे तुम्हारी तारीफ़ करते नहीं अघाते थे।”

वीणाका मुंह तमतमा रहा था। तीव्रतासे कहा, “मुझे नहीं चाहिए किसीकी तारीफ़। उसे आप बाँधकर अपने सिरपर लीजिए। मुझे क्यों तंग करते हो ? मैं तो जा रही हूँ !”

हेमेन्द्र हँसा, “तुम्हारे बिना मुझे तारीफ़ मिलनेवाली नहीं है।”

हँसी क्रोधरूपी अग्निका घृत है। वीणाकी क्रोधाग्नि भभक उठी; बोली, “मैंने कह दिया, मुझे कोई मतलब नहीं। क्यों मुझे जलाने आये हो ? मैं अब नहीं रहूँगी, नहीं रहूँगी, मेरा तुम्हारा निभाव नहीं हो सकता।”

“कहाँ जाओगी ?”

“कहीं भी जाऊँ।”

“पर मैं जानूँ तो सही।”

“तुम्हें क्या पड़ी है। तुम चले जाओ। नहीं तो मैं अभी कूद पड़ूँगी।”

“कूद पड़ोगी सो कूद पड़ो ! तुम तो हमेशा ही ऐसी धमकियाँ देती रहती हो।”

“क्या कहा ? मैं धमकी देती हूँ। अच्छी बात है। देख लेना इस क्षणके बाद इस घरका एक बूँद पानी भी पिऊँ तो वीणा न कहना।”

हेमेन्द्रने अब वहाँसे हट जानेमें ही कल्याण समझा। चुपचाप अपने तख्तपर जा बैठा। वीणा उसी आवेशमें अन्दर जाकर अपनी चीज़ बटोरने लगी। वह रहरहकर अस्फुट स्वरमें बड़बड़ा उठती थी, “आज मुझे चले ही जाना है। चाहे मुझे धर्मशाला में जाकर रहना पड़े पर अब इस घरमें नहीं रहूँगी। कोई बात है ? मुझे न जाने क्या समझ लिया है ? नौकरानी भी अच्छी होती।”

आँखोंमें आँसू भर आये पर उन्हें पोंछा नहीं। उसी तरह बड़बड़ाती रही, “न जाने मैंने क्या पाप किये थे जो इस नरकमें पड़ना पड़ा। हर वक्त

बात, हर वक्त बात, जब देखा तब बात ! जैसे बातें ही धरतीको स्वर्ग बना देंगी। मिट्टीके माधो न कामके न धामके। बस हुकूमत चलवा लो। भगवान् ने तनिक बुद्धि दे दी है। नहीं तो कोई पूछता भी नहीं। कोई कमी थी मुझे ? ऐसे-ऐसे...।”

फिर सहसा मदनका ध्यान आगया—गठीला बदन, रक्तिम वर्ण, विशाल वक्षस्थल, आजानबाहु, मदिर नयन !

जैसे तूफानमें पत्ता काँप उठता है ऐसे ही हालत तब वीणाकी हुई। सब कुछ शून्य हो गया और फिर उस शून्यमें अतुलकी मूरत उभरने लगी। आँखोंमें अश्रुका वेग बढ़ चला। सिहरकर फुसफुसाई, “अतुल मेरा है मेरे साथ रहेगा। ताता अपने घर जाएगी।”

बहुत देरतक इस तरह सोच-सोचकर वह बाहर निकली। उसका मुख डूबते सूरजकी लाली जैसा लग रहा था। आँखें वीरवहूटी बन रही थीं और शरीर जैसे झुलस गया था। वह सीधी बैठकमें पहुँचने ही वाली थी कि कानोंमें कुछ शब्द पड़े। ठिठक गई स्वर नारीका था। वह कह रही थी, “ऐसी हालतमें क्या मुझे उसके पास रहना चाहिए ?”

जवाब हेमेन्द्रने दिया। वही शान्त और गंभीर स्वर, “यह तो आपके निश्चय करनेकी बात है। मेरा इससे कोई संबंध नहीं है।”

मैंने तो निश्चय कर लिया है, मैं अब उसके साथ नहीं रहूँगी। मैं कल ही आपके पास आ जाऊँगी।”

“मेरे पास ? आपका मतलब मेरे घर ?”

“मैं घर-घर कुछ नहीं जानती। मैं आपको जानती हूँ।

“पर मैं तो कुछ नहीं हूँ, जो कुछ है घर है।”

“कुछ भी हो।”

“कुछ भी कैसे ? उसमें अन्तर है। मैं कुछ नहीं हूँ, घर है। और घरसे

मतलब है वीणा ! सो मेरे पास आओगी तो वीणासे कह दूंगा कि वह तुम्हारा प्रबन्ध कर दे। वीणाके बिना मैं कुछ नहीं हूँ।”

वीणाने सब कुछ समझा। उस औरतको पहचाना। वह अक्सर आया करती थी। सब कुछ समझ गई। जैसे एक बार फिर तूफ़ान आया, भूकम्पने सब कुछ उलट-पलट दिया। वीणा जान बचाकर अन्दर भागी पर भूकम्पसे क्या कोई बचता है? हतभागिनी-सी वह वहीं अपनी गठ-रियों, अपने दोनों बेखबर सोते हुए बच्चोंके पास फ़र्शपर गिर पड़ी और फफक-फफककर रो उठी—“ओह ! मैं इतनी कायर क्यों हुई ? ओह मैं क्या करने जा रही थी ?”

१९५०]



दूसरा बर

उसके दिलमें आग लगी हुई थी, लेकिन उसे बुझानेवाला कोई नहीं था; सभी तेल छिड़कनेवाले थे। मानो ज्यों-ज्यों आगमें शोले उठते, ज्यों-ज्यों वह तिलमिलाती, त्यों-त्यों उन सबका खून बढ़ता और उनके दिल खिल उठते। वह रोती तो वे हँसते, वह अलस उदास होकर कहीं कोनेमें छिपना चाहती, तो वे चौकमें इकट्ठे होकर चुहल मनाने लगते। गर्जकि वह दर्दको दबाना चाहती और वे दर्दको उभाड़ने लगते। दुनियामें एक रोता है, तो दूसरा हँसता है। गरीबीके कारण ही अमीरीका अस्तित्व है। दुखीको देखकर सुखी सुखकी साँस लेता है। वह आज अगर दुखी थी, तभी वे उसे देख हँसते थे। कहते थे—घर छोड़कर बाहरवालोंसे आँखें लड़ाती है। दो दिन शहरमें रहकर दिमाग सातवें आसमानपर चढ़ गया है। आज़ादी चाहती है कि शहरवालोंकी तरह चाहे जिसके पीछे होले—इत्यादि, इत्यादि।

लेकिन ये सब रोज़के ताने सुननेकी वह आदी हो गई थी। उसका दिल सदा भरा रहता था और वह रहरहकर अपने आपको कोसने लगती थी, यद्यपि इस आत्म-निन्दाके पीछे बदलेकी भावना थी। कमज़ोरी और बे-वसीके कारण जो आदमी दूसरोंपर जुल्म नहीं कर सकता, वही अपने आपपर करता है। इसीको आत्म-प्रतारणा, आत्म-निन्दा और आत्म-हत्या कहते हैं। वह भी कभी-कभी आत्म-हत्याका विचार करने लगती थी—मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती? मैं उन्हींके साथ क्यों न मर गयी?

इसी तरह गाँवकी यह जवान विधवा जब कभी गोबर बटोरते-बटोरते थक जाती या छतपर उपले समेटते-समेटते कुछ याद आने लगता और दीवारके सहारे सिर लगाकर ऊपरको देखने लगती, तब उसके चोट

खाये हुए दिलसे विचार-धारा अबाध गतिसे बहने लगती। अतीतकी सारी कहानी नीले आसमानमें इस तरह चित्रित हो जाती, जिस तरह अन्धेरा होने-पर रातके तारे चमकने लगते हैं। उसे याद आ जाते वे दिन जब उसका मालिक, उसका सरताज इस ज़मीनपर मौजूद था। उसकी ओर देखकर इसका दिल बाँसों उछलने लगता था। उसकी ओर देखकर ही यह गर्वसे क़दम उठाकर चला करती थी और उमीके कारण यह बहुत दिनतक शहरमें रह आई थी।

उन दिनोंकी बात ही निराली थी। उसने आकर एक दिन कहा था, “सुना तुने, मैं पास हो गया हूँ।”

“सच?”

“हाँ।”

“अब क्या होगा?”—बड़ी-बड़ी भोली आँखोंमें मादकता भरकर इसने पूछा था और जवाबमें दोनों बाहोंमें भरकर इसके मालिकने कहा था, “अब शहर चलेंगे।” छुड़ाते-छुड़ाते वह बोली थी, “चलो हटो, दिनमें भी कोई ऐसे करता है।” लेकिन कोई उसके दिलसे पूछता। वहाँ दिन-रातका अन्तर नहीं होता और फिर शहर जानेकी कल्पना खेत-खलिहानकी हिरनीके लिए जीवनकी सबसे मादक कल्पना है। वह विभोर हो उठी थी। उसका रोआँ रोआँ उद्रेकसे उछलने लगा था। कुछ देरके लिए उसने उपलोंको परे धकेल दिया था, क्योंकि उसे याद आने लगा था कि एक बार वह बचपनमें शहर गई थी। उसने वहाँ देखे थे, ऊँचे-ऊँचे पक्के मकान, पत्थरकी सड़कें, घोड़ागाड़ियाँ और...और हाँ! वह पों-पों करनेवाली मोटरें और दो पहियेवाली साइकिल, जिसपर चढ़कर उसका पति शहर जाया करता था।

इसी तरह उसके दिमागमें पुरानी बातें धुंधली स्मृतियाँ बनकर आयी और उसके दिलमें उमंगोंकी मादकता भरकर मिट चलीं। उसका चेहरा चमक उठा, छाती उभर आयी और चलते-चलते उसने अपने चारोंओर ऐसे देखा मानो कहती हो—मुझसे बढ़कर आज सुखी कौन है, आज मैंने

स्वर्ग पाया है। अरे ! तुम सब आज मुझे देखो, मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ ? और उसका गर्व, उसकी कल्पना, सब सच्ची थी। सभीने उसके भाग्यको सराहा। सभीने अपनी-अपनी भाषामें उसे बधाई दी। सभीने आज उससे हार मान ली। घरकी बड़ी बूढ़ियोंने प्यारसे बातें की, मर्दोंने बहूकी किस्मतको सराहा। हमजोलियोंकी आँखोंमें सरलता, मादकता, ईर्ष्या और हर्ष सभी उमड़े। सभीने मानो उसके सामने सिर झुकाकर कहा, “तू आज रानी है ! तू सदा रानी बनी रहे।”

और यही सोचती-सोचती वह युवती विधवा उमड़ आयी। आँखोंका बाँध टूट गया। वह आँचलमें मुँह छिपाकर फफक-फफककर रो उठी। क्षण बीता कि वह बड़े जोरसे काँपी। किसीने कहा—अभागिन ! अभीतक रोती है। सोनेका मुहाग खाकमें मिला दिया। अब खाकमें भी आग लगाना चाहती है।

लेकिन वहाँ कोई नहीं था। यह सब उसके दिमागकी खराबी थी और सच तो यह था कि उसे रोनेकी इजाजत नहीं थी। उसके मालिकको मरे दो साल बीत चले थे और उसकी जातिमें पतिकी मौतका शोक साल भरसे ज़ादा नहीं मनाया जाता। विधवाको दूसरा वर चुनना होता है। ठीक है, पुरुषके बिना स्त्रीका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उसके नेत्रोंकी मादकता, उसकी छातीका उफान इस बातकी याद दिलानेके लिए है कि उसे पुरुषकी जरूरत है। और उसे भी अपने मालिककी याद इतना नहीं सताती, अगर पहिली वरसौधीके समय उसका मनचाहा दूसरा वर उसे चुनरी उड़ा जाता।

पूरे सालभर बाद जब उसके पतिके घरवाले शोक खत्म करनेके लिए इकट्ठे हुए, तो उनकी यही सलाह थी कि बहूको देवरके घर बिठा देना चाहिए। यद्यपि वह अभी जवान नहीं था, फिर भी मर्दपर जवानी आते क्या देर लगती है ? दो-चार माहमें खा-पीकर ठीक हो जायेगा और वह पहलेकी तरह बहूकी बहू बनी रहेगी। लेकिन वे सब अचरजसे काँप उठे

जब उसने अपने देवरसे विवाह करनेसे इन्कार कर दिया। उसने दृढ़तासे कहा, “मैं इसके साथ विवाह नहीं कर सकती।”

स्तम्भित होकर उन्होंने पूछा, “तो क्या जन्मभर विधवा रहना चाहती है?”

जवाब दिया, “नहीं।”

“तब क्या किसी औरके साथ रहना चाहती है?”

“हाँ।”

“कौन है वह?”—अचरजसे बड़े-बूढ़े बोल उठे, “हम भी तो जानें।”

उसने बता दिया। वह उन्हीके कुटुम्बका एक लड़का था। उसका यौवन उभर आया था। लम्बी-लम्बी मांसल भुजायें पहले पतिकी याद दिला देती थीं। रंग सेवकी तरह सुख और वदन भरा हुआ था। अभी पढ़ रहा था और पूरी आशा थी, वह थानेदार बनेगा। उसका नाम सुनकर जैसे पंचायतमें सन्नाटा छा गया—विधवाका इतना साहस?

किसीने मुसकराकर व्यंगसे कहा, “आखिर मन ही तो है।”

एक बूढ़ा तुनककर बोला, “आग लगे ऐसे मनको।”

आग तो उसके मनमें लग ही रही थी। तभी इतना साहस पैदा हुआ था कि मुँह खोलकर कह सकी—मैं उसके साथ विवाह करूँगी।

पहले विवाहकी बात और थी। वह तो विवाह नहीं, बल्कि विवाहका नाटक था। वह नहीं जानती थी, विवाह क्यों और क्या होता है? लेकिन वह आज जानती थी, स्त्री-पुरुष किसे कहते हैं? दिलमें तूफान क्यों उठता है? छातीमें उमंगें उठ-उठकर क्यों गिर जाती हैं? आँखोंमें नशा क्यों छा जाता है? और इतना जाननेवाली स्त्रीसे कहा जाता है—तुम अपने देवरके साथ विवाह कर लो।

नहीं, नहीं—उसने सोचा था—मैं इसके साथ कभी विवाह नहीं करूँगी। मेरे सामने ऐसा लगता है, जैसे गोदका खिलाया हुआ है। दुबले-पतले हाथ, ढीला-ढाला वदन, सूनी अलसाई आँखें, बात-बातमें रोनेकी

आदत—छिः ! ऐसा लड़का भी क्या मेरा मालिक, मेरा सरताज होने योग्य है ? यह मेरी उमडती हुई उमंगोंको कैसे शान्त कर सकेगा ? यह तो स्वयं ही उनमें बह जायेगा ।—यही सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि कुछ भी क्यों न हो, वह उसके साथ रहना स्वीकार नहीं करेगी । रही होनेवाले थानेदारकी बात । वह भी इसी कुटुम्बका था । अनेक बार उसके घर आया था । बहुत कुछ उसके पतिदेवसे मिलता था । उसे देखते ही दिलमें विश्वास पैदा होता था, छाती उभर आती थी और आँखें प्यासी-सी देखने लगती थीं । इसीलिए उसने एकदम मोच लिया था—रहूंगी तो इसीके घर रहूंगी ।

इसके अलावा होलीके दिनोमें आकर कई बार इसके साथ होली खेल गया था । कई बार इसके कोड़ेकी मारके नीचे भी वह उसके मुँहपर गुलाल मल गया था । शहरमें भी अनेक बार वह इसके घर आया था । एक दिन कहा था, “भाभी, आज तुम रानी बनी हो ।”

‘रानी ?’

“हाँ ! तुम अब भइयापर निष्कटक शासन करती हो ! और भइया वरे है अफसर ।”

“लेकिन तुझपर कहाँ करती हूँ”, न जाने कैसे वह बोल उठी ।

“मुझपर ?” वह हँसा था ।

“हाँ ! तुझपर शासन करनेवाली बड़ी भाग्यवती होगी ।”

‘हूँ’—वह फिर हँसा था, “मैं बनूँगा थानेदार, मुझपर कौन शासन करेगा ?”

तब वह बड़े जोरसे खिलखिला पड़ी थी, “देखूंगी रे तेरी ताकत !”

और वह शायद उम्मी होनेवाले थानेदारकी ताकत देखना चाहती थी । शायद शासन करनेकी इच्छा फिर तीव्र हो उठी थी । कुछ भी हुआ हो, उसने यह साफ़ कह दिया—वह उसके सिवा किसीके घर नहीं बैठ सकती ।

घरवालोंने बार-बार कहा, “बहू, पगली न बन, घरकी रीति न तोड़ ।”

कुलकी कान तोड़नेवालेपर कुल-देवताका शाप पड़ता है। अरी ! आजतक तुझे बेटी समझा, अब गौर न बन, और तू देख ! मर्दका क्या दुवला, बया पतला, अगली फ़सलतक बदन भर आयेगा। आखिर उसी पेटका तो है। तू अपनी ज़िन्दगीके साथ-साथ हमारी ज़िन्दगी भी बरबाद मत कर।”

लेकिन ये सारी खुशामदें, सारी धमकियाँ उसे अपने निश्चयसे रंचमात्र भी न हटा सकी। उसने आँखें नहीं उठायीं। ज़मीन कुरेदती रही। आँखोंमें पानी भर-भर आया, लेकिन ज़बान नहीं पलटी। यही कहा—बैठूंगी तो उसके घर, नहीं जन्मभर दुख भरूंगी। आखिर उन्हें हार माननी पड़ी। उन्होंने कहा, “अच्छा वहू, तू खुश रह। हम उनसे बातें करेंगे।”

लेकिन इससे पहले कि वे उस घरतक मंदेशा पहुँचा सकते, यह बात मारे गाँवमें फैल गयी। बात वायुके साथ उड़ती है। होनेवाले थानेदारने भी ये बातें सुनी। सुनकर मुसकराया, “भाभीका इतना साहस ?”

एक दोस्तने कहा, “हुकूमतकी चाट पड़ गई है।”

दूसरा बोला, “शहर रह आयी है।”

तीसरेने कहा, “लेकिन हर्ज क्या है ? जवान है और गोद खाली है।”

चौथा बोला, “और फिर थानेदारकी दो स्त्रियाँ तो होनी ही चाहिए।”

लेकिन उसने कहा, “मैं भाभीको अपने घर नहीं िठा सकता। उसका देवर मौजूद है।”

दोस्त बोला, “अरे ! देवर तो अभी वच्चा है।”

“जवान होते देर नहीं लगती। आखिर मर्द है।”

“यह ठीक है, परन्तु उसका दिल तुमपर टिकता है, तभी तो इतना साहस किया है।”

“कल तुमपर टिकने लगा तो !” कहते-कहते उसका स्वर व्यंगसे कठोर हो उठा और उसने मुँह फेर लिया।

“तुम उसे पसन्द नहीं करते ?” दूसरे मित्रने तर्क किया।

“नहीं !” उसने दृढ़तासे कहा।

और उसकी यह नहीं, आखिरतक दूढ़ रही। विधवा बहूके ससुरने गिड़गिड़ाकर भीख मांगी। पंचायतने उसका अनुमोदन किया, लेकिन उसने यही कहा, “मैं उसे अपने घर नहीं बिठा सकता।”

वे क्या करते, अपना-सा मुँह लेकर लौट आये। क्रोधसे उनके चेहरे तमतमा रहे थे। बदनमें कँपकँपी उठ रही थी और छातीसे उमड़ा पड़ता था तूफ़ान, जिसका एकमात्र शिकार वह विधवा बहू थी। उसने फांसीके क़ैदीकी तरह इस ठुक्मको सुना और सुनकर सिर झुका लिया। उस दिन उसने पहिली बार भाग्यसे हार मानी। उस दिन उसे रोनेका अधिकार नहीं था। उस दिन तो वह यही चाहती थी, ज़मीन फट जाये, आसमान गिर पड़े, तूफ़ान और झंझाके वे झोंके चलें कि गाँवका गाँव नेस्त-नाबूद हो जाय, लेकिन हुआ तो यही कि वह सबकी आँखोंका काँटा बन गयी। सबने उसे तिरस्कृत किया, ठुकराया और पानी पी-पीकर कोसा। उसकी आज्ञादी-पर पहरा बिठा दिया कि कही आत्म-हत्या न कर ले। ससुरने कहा, “इस कलंकिनीपर निगाह रखना। कही कुएं-खाईमें कूद मरी तो और मुँह काला होगा।”

सास बोली, “हरामज़ादीको मौत भी नहीं आती।”

उसने सुना और समझा। मरना वह भी चाहती थी, परन्तु मौत सदा भाग्यवालोंको आती है। अभागोंके भाग्यमें तो तिल-तिल घुटकर जीना लिखा है। वह भी जीती रही, जीवन-कोढ़ीकी तरह सदा अपमानित, तिरस्कृत और उपेक्षित।

×

×

×

धीरे धीरे दूसरा वर्ष आया और जाने लगा। सात साल क़हत पड़नेके बाद इस वर्ष इतनी फ़सलें हुई कि काटनेवाले नहीं मिले। साथ ही मलेरिया इतने भयंकर रूपमें फैला कि सारा देश त्राहि-त्राहि कर उठा। लोगोंने कहा—यह बुखार नहीं, वबा है। शायद दुनियामें होनेवाले युद्धका शाप है,

शायद होनेवाले प्रलयकी निशानी है। कुछ भी हो, गाँवकी उस अभागिन विधवाके लिए वह तूफ़ान भी मुक्तिका सन्देशा लेकर नहीं आया। वह उसी तरह जीती और पिसती रही। लेकिन इधर एक परिवर्तन उसे दिखाई देने लगा था। वह यह था कि इतना बोझ, कलंक और अपमान सहकर भी उसमें जीनेकी इच्छा बलवती होती जा रही थी। केवल जीनेकी नहीं, बल्कि सुखसे जीनेकी। काम करते-करते जब वह थककर चूर-चूर हो जाती, जब उसका बदन कसकने लगता और जब उसकी आँखें सजल हो उठतीं, तब चुपचाप कई प्रश्न उसकी छातीके भीतर उभर आते। कई तस्वीरें आँखोंके सामने नाचने लगतीं और सबसे बढ़कर अचरज तो उसे तब होता, जब इन सब प्रश्नों और तसवीरोंके पीछे वह अपने उस देवरको देखती; जिसके साथ विवाह करनेसे वह एक दिन, सारे कुटुम्बकी इच्छाके विरुद्ध इन्कार कर चुकी थी। तब वह काँप-काँप उठती, सिरसे पैर तक एक सिहरन-सी दौड़ जाती, कोई चुपकेसे कह जाता—खबरदार, जो आगे कदम बढ़ाया ! लेकिन वह मजबूर थी और इस मजबूरीकी कहानी थी...। उस दिन वह गाय दुहकर लौट रही थी। उसने देखा—घरके सामने कोई साइकिलपर आ रहा है। वह जैसे ठिठकी, काँपी, चौंकी। दूधका बरतन गिरते-गिरते बचा। संध्याके धुंधले प्रकाशमें कुछ ऐसा नज़र आया, जैसा वह तीन वर्ष पहले देखा करती थी। उसने आँखें बन्द कर लीं, लेकिन क्षण बीता, वे फिर खुल गयीं और उसने अचरजसे देखा—वह उसका देवर था। ओह ! यह तो ठीक उसी जैसा लगता है।

तबतक साइकिल वहाँ आ चुकी थी। वह अन्दर चली गयी। घरमें उस समय कोई नहीं था। सब खेतपर गये हुए थे। देवर सदाकी भाँति अन्दर आया, परन्तु आज उसका चेहरा तमतमा रहा था, पैर सीधे नहीं पड़ते थे। उसने आते ही कहा, “भाभी ! मुझे बुखार चढ़ा है।”

“बुखार !” वह काँप उठी। शीघ्रतासे चारपाई बिछा दी। बोली, “पानी लाऊँ ?”

“हाँ, पानी पीऊंगा। जान निकल रही है।”

और फिर बुखारकी तेजी बढ़ती गई, साथ-ही-साथ प्यास भी। वह उसके पाससे नहीं जा सकी। घरका काम लगभग समाप्त हो चुका था। नौकर आया और खाना खेतपर ले गया। कह गया, “आज वे लोग खेतपर ही रहेंगे।”

कोई नई बात नहीं थी। नौकरोके अभावमें कई बार वे रात-रात खेत काटा करते थे। उस दिन भी काटते रहे। और घरपर वह बैठी चुपचाप तारे गिनती रही। कई बार उठकर देवरके पास गयी। कई बार उसका चेहरा देखा और देखा कि बाँहोपर माँस चढ़ता आ रहा है। छातीके बाल घने हो रहे हैं और आँखोंमें वही मस्ती भरनी जा रही है। देवर चौक उठा, “दहा।”

उसने कहा, “सब जने खेतपर हैं।”

“अभी नहीं आये?”

“नहीं।”

“घरपर तुम्ही हो?”

“हाँ।”

“प्यास लगी है, भाभी।”

भाभी उठी, पानी ले आयी और पिलाकर वही बैठ गयी। बोली, मर दाब दू?”

“हाँ... नहीं, भाभी।”

“दर्द होता होगा।”

“होता है।”

“तो लाओ दाब दू।”

“नहीं भाभी।”

भाभी चुप हो गई। छाती उसकी जोरमें धक-धक कर उठी। बार बार काँपी। आँखोंमें आँसू उमड़े। जीमें उठा छतमें कूदकर जान दे दू

या उसके पैर पकड़कर कहूँ, तू मुझे माफ़ कर दे, लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सकी, केवल बैठी देखती रही और वह बेचैनीसे करवटें बदलता रहा । बार बार पुकारता, “ददा, अम्मा ।”

“अभी नहीं आये ।”

“अभीतक ?”

“हाँ ।”

और वह ‘अच्छा’ कहके सोनेकी चेष्टा करता, लेकिन छातीकी मीठी-मीठी जलन उसे बेचैन बना देती । वह तड़प उठता, “अम्मा, अम्मा !”

“अभी नहीं आयी ।”—जवाब मिलता ।

“ओह ! भाभी, उलटी आती है !”

और कहते-कहते सचमुच उसका कलेजा उलट पड़ा । भाभीने शीघ्रतासे उठकर माथा पकड़ा । बहुत देरतक जोरसे पकड़े रही और जब देवरने कहा, “भाभी, पानी दे ।” तो भाभी चौंक पड़ी । पानी लायी । तबतक चाँदनी काफ़ी फैल चुकी थी । हाथ धुलाते-धुलाते उसने देखा—उन दोनोंकी परछाई एक होकर दीवारपर चिपक गई है, जैसे किसीने चित्र अंकित कर दिया हो । तब यकायक उसने अपने निचले ओठको जोरसे दाँतोंमें दबा लिया, लेकिन देवरको तबतक शान्ति मिल चुकी थी । वह लेट गया और चादर ओढ़कर करवट बदल ली । लोटा हाथमें लिये वह देरतक वहीं खड़ी रही । न बैठ सकी, न कुछ काम कर सकी, केवल एक तूफ़ान उसके भीतर उठता रहा । उस तूफ़ानमें विचारोंका जमघट तो नहीं था, लेकिन एक ही विचारके इतने रूप थे कि वे उसे अलग अलग जान पड़े ।

और उसी दिनसे उसके जीवनमें एक परिवर्तन आ गया । उसका दुख तो तीव्र होता जा रहा था, परन्तु उस तीव्रतामें मिठास और आशाका संबल काफ़ी गहरा हो चला । इसी संबलके कारण दुखकी तीव्रता उसे सताने लगी और चुपचाप ताने सुननेके स्थानपर वह जवाब देने लगी । बड़ी-

बूढ़ियोंने इस परिवर्तनको देखा और सिर हिलाकर कहा, “बहूका स्वभाव बिगड़ता जा रहा है।”

ससुर बोले, “देखता हूँ इसका पाप काटना ही होगा।”

सासने कहा, “हाँ, जवान बहू बिना मालिकके न जाने कब क्या कर बैठे ?”

“ठीक है, मैं अभी बन्दोबस्त करता हूँ।”

इस बन्दोबस्तकी बात उसने भी सुन ली। सुनकर उसने एक गहरी साँस खींची। उसमें दर्द और संतोष दोनों थे। सन्तोष इसलिए कि उसका इस नरकसे उद्धार होगा। दर्द इसलिए कि कहीं उसने भी इन्कार कर दिया तो... इस इन्कारकी संभावनाने उसे और भी देवरके समीप जानेको प्रोत्साहन दिया। इसलिए उसने बार-बार देवरके नज़दीक जानेकी चेष्टा की। बार-बार उसे बातोंमें उलझाना चाहा। बार-बार कोशिश की कि वह उसे अपनी समझे। और उसकी इन सब चेष्टाओंको उसकी हमउम्र बहू-बेटियोंने देखा और समझा। बहुतोंने उसे चिढ़ाया, ताने कसे, लेकिन जिनके दिलमें उसके लिए कुछ दर्द था, उन्होंने कहा, “पगली ! तूने अपने पैरपर आप कुल्हाड़ी मारी है। अपना जीवन आप बरबाद किया है।” वह कुछ नहीं बोली, केवल आँखोंमें जोरसे आँसू फट पड़े। दर्दके मारे दिल कसक उठा।

साथिनने पूछा, “तूने उससे कुछ कहा था ?”

उसने सिर हिला दिया, “नहीं।”

“तो क्या तू अब उसे दिलगे चाहती है ?”

उसने फिर सिर हिलाकर कहा, “हां।” और आंचलमें मुँह छिपाये-छिपाये रोती रही। साथिन बहुतों उसे सान्त्वना देकर चली गई, लेकिन यह बात अब पर लगाकर उड़ चली। दूसरे दिन सवेरा होते-होते हर एक स्त्री-पुरुषने इस घरपर आवाज़ कसी। बड़ी-बूढ़ियोंने कहा, “कलयुगकी स्त्रियां कितनी फ़ाइशा हैं ?”

बराबरकी बोलीं, “एक दिन जिसे ठुकरा दिया था, अब उसीके तलुए चाटना चाहती है। छातीमें उफान उठते होंगे, दिलमें आग लगती होगी।” बड़े-बूढ़े पुरुष सिर हिलाकर रह गये, लेकिन युवकोंने खूब मनके लड्डू फोड़े। जो जी में आया, कहा और जब सन्ध्याको उसका देवर शहरसे लौटा तो उसके पीछे पड़ गये, “तू बड़ा घाघ है रे। चुपचाप भाभीको फुसलाता रहा। घरका माल कौन बाहर जाने देता है जी।”

उसने अचरजसे भरकर उन्हें देखा और पूछा, “तुम कहते क्या हो?”

“यही कि जनाव अब भाभीपर रीझे है।”

“और कि आप उसे अपने घर बैठानेवाले हैं।”

उसने यह सब मुन तो लिया, लेकिन चेहरा तमतमा उठा। शरीर काँपने लगा। उसने कहा, “मुझे वह दिन याद है। मैं मर्द हूँ और मर्द होकर औरतकी ठोकर नहीं भूल सकता।”

“लेकिन”, एक साथीने कुछ कहना चाहा।

वह बीचमें ही बोल उठा, “लेकिन-वेकिन मैं कुछ नहीं जानता। मैं केवल इतना जानता हूँ कि मेरा उसका विवाह इस दुनियामें एकदम नामुमकिन है।”

और आगे बिना कुछ कहे वह तेजीसे घर चला गया। जाते ही चीख-कर माँको पुकारा, “अम्मा ! यह सब क्या बातें हैं ?”

माँ चौंक पड़ी, “क्या बात रे ?”

उसी तेजीसे वह बोला, “यही कि . . .।”

लेकिन जैसे ब्रेक लग गया। भाभी उधरसे जा रही थी। वह घबरा-सा उठा और उसने बात फेरकर कहा, “यही कि तुम मुझे आगे पढ़ने नहीं भेजना चाहती।”

माँ अचरजसे बोली, “किसने कहा तुमसे ? मैंने तो सिर्फ़ एक बार तेरे बापसे कहा था कि . . .।”

“कि अब उसे आगे नहीं पढ़ाना चाहिये। भइया भी आगे पढ़े थे इसीलिए !”

“चुप चुप”—माँ एकदम बोल उठी, “ऐसी बात मुँहसे मत निकाल।”

वह बोलता ही गया, “पहले तूने ही सोचा था।”

“मैंने क्या सोचा था, यह तू क्या जाने, पर तू अपना काम कर मैं तुझे नहीं रोकूंगी।” लेकिन बेटेके दिलमें असली बात क्या थी, यह माँ नहीं जान सकी। यह तो वही जान सकता था, जिसके दिलमें लगी हो। आग लगी थी, उसकी भाभीके दिलमें। उसने देवरकी तयोरियोंको पहचान लिया था, बात क्या है। इसीलिए अवसर पाते ही उसने देवरसे पूछा, “क्या बात थी वह?”

तब वह ऊपर उपले संभाल रही थी और उसका स्वर बहुत धीमा था। देवरने उसे देखा। देखकर तमतमा उठा। बोला, “तुम्हारा मतलब क्या है?”

“कुछ नहीं।”

“फिर क्यों पूछती हो?”

“यूँ ही।”

“यूँ ही”—उसने चिल्लाकर कहा, “तुमसे मैं बात भी नहीं करना चाहता। मैं अभी छोटा बच्चा हूँ और तुम हो मेरी ‘माँ’।”

और इतना कहकर वह तेजीसे नीचे उतर गया। विधवा भाभी एकदम स्तम्भित-सी रह गयी। कमर आप ही आप दीवारसे सट गयी और उसने ऊपरको ऐसे देखा जैसे आसमान फट गया हो। करारी चोट थी। कोई और होता तो तिलमिला उठता, लेकिन वह चुपचाप उठ खड़ी हुई और टोकरी उठाकर नीचे चली गयी। मनमें एक बार इतना ही उठा कि कसूर मेरा है। मैं उसके पैर पकड़कर कहूंगी, तू मुझे मार डाल, लेकिन...!

जीनेसे उतरते उतरते उसने कुछ सुना। पासकी कोठरीमें ससुर उसका नाम लेकर कुछ कह रहे थे। वह वहीं रुक गयी। तब

सन्ध्याका अँधेरा कुछ गहरा हो गया था और अन्दर कड़ुवे तेलके दीयेके मन्द प्रकाशमें खाटपर बैठे उसके ससुर कह रहे थे, “मैंने उनसे पूछ लिया है, वे राज़ी हैं।”

सास बोली, “तो अब देर मत करो। मैं तो रात-रात नहीं सोती ! न जाने सवेरे क्या सुनना पड़े ? जवान बहू है।”

“लेकिन एक बार उससे पूछ तो लो।”

“नहीं,” सास तेज़ीसे बोली, “पूछना बूछना अब कुछ नहीं है। एक बार पूछा था, तो यह दिन देखना पड़ा। अब पूछोगे तो शायद कुएँ-खाईमें पड़नेकी नौबत आयेगी।” उसने इन शब्दोंको सुना और समझा। उपलोंकी टोकरी वहीं रख दी। घूँघट खींचकर सीधी कोठरीमें चली गई। सास जहाँ बैठी थी, वहीं उनके पैर छूकर बोली, “आप ठीक कहती हैं। अब पूछनेकी ज़रूरत नहीं है। मैं आज ही जानेको तैयार हूँ।”

कहकर मुड़ना चाहती थी, परन्तु न जाने क्या हुआ ? सिर बड़े जोरसे चकराया, आंखोंके आगे अँधेरा छा गया और वह खड़ीकी खड़ी वहीं सासके पैरों पास चक्कर खाकर गिर पड़ी।

१९४३]



रायबहादुरकी मौत

इन दिनों रायबहादुर अपने बड़े दामादके पास ठहरे हुए थे और यहीं कल रात उनका देहान्त हो गया। वे कई दिनोंसे बीमार थे। सच तो यह है, कारबंकलके आपरेशनके बाद उनके जीनेकी आशा नहीं रही थी। इधर चार दिनोंसे तो बिल्कुल संज्ञाहीन थे। ऐसा लगता था कि उनके प्राण मन्थर गतिसे वारी-वारी प्रत्येक अंगसे विदा हो रहे हैं। कल सन्ध्याको जब बड़े साहबने उन्हें देखा था तब उनका दाहिना हाथ और नीचेका ओठ दोनों धीरे-धीरे स्वचालित यंत्रकी भाँति फड़क रहे थे।

आज वह अवशेष भी समाप्त हो गया। रायबहादुर चल बसे। धीरे-धीरे बड़े साहबका आलीशान बंगला आदमियोंसे भरने लगा। उसमें दफ्तरके बाबू, नगरके छोटे-बड़े ठेकेदार और दूसरे व्यवसायी तथा शोक-सूचक काली पट्टी बांधे बड़े अफ़सर थे। वे आनेपर निहायत अदब और विनम्रतासे बड़े साहबसे सहानुभूति प्रकट करते और फिर लॉन, बालकनी अथवा ड्राइंग रूममें बैठ जाते या पार्ककी पगडंडियोंपर घूमने लगते। मैंने रात रायबहादुरका प्राणान्त होते देखा था। उसके पश्चात् मैं घर लौट गया था, इसलिए अब मुझे आनेमें देर हो गई थी। सच तो यह है, मैं स्वयं देर करके आया था। तबतक वह विशाल भवन आदमियोंसे भर चुका था और ऊपरसे पवित्र मन्त्रध्वनि आ रही थी—

सत नाम, सत नाम, सत नाम जी,

वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरु जी,

तभी मेरे रातवाले साथीने मुझे देखा। वह मेरे पास आकर बोला, 'बड़े साहब क्या सिख हैं?'

मैंने कहा, बड़े साहब बड़े साहब हैं। बड़े आदमियोंकी तरह वे

उदारमना हैं। मरनेवालेका कल्याण हो इसलिए उनकी पत्नीने किसी धर्म-गुरुको बुला भेजा होगा। बुलानेवाला सिख होगा इसलिए ग्रन्थी आये हैं।’

वह मुस्कराया, ‘मैं जानता हूँ यही बात होगी अन्यथा बड़े साहब तो धर्ममें विश्वास नहीं करते।’

‘विश्वास कौन करता है?’ मैंने कहा, ‘यह तो दुनियाको दिखानेकी बात है। इस विशाल जनसमूहको देखो ! क्या ये लोग रायबहादुरसे प्रेम करते हैं? क्या इन चार दिनोंमें तुमने जो कुछ देखा है उससे इसकी कोई तुलना है?’

सहसा उसकी वाणी तलखाहटसे भर उठी। वह बोला, ‘ऐसे पापीका इतना शानदार अन्त !’

तीसरा साथी जो अबतक चुपचाप खड़ा था, बोला, ‘शानदार अन्त ! दुश्मनको भी यह अन्त नसीब न हो, मेरे दोस्त ! नरक और किसे कहते हैं? चार दिन प्राण शरीरसे निकलनेको तड़पते रहे, यह यातना क्या रौरव नरककी पीड़ासे कम है?’

और फिर क्षण भर भीड़पर एक दृष्टि डालकर उसने कहा, ‘मौत मैंने देखी है। मेरे एक मित्र हैं। एक दिन उनके पिता नलपर स्नान कर रहे थे। साथ ही साथ बात भी करते जा रहे थे, परन्तु जैसे ही उन्होंने लोटा उठाकर सिरपर पानी डालना चाहा, वाणी बन्द हो गयी। अचरजसे हमने देखा—वे शान्त स्तब्ध दीवारके सहारे लुढ़क गये हैं और उनका मुख इस प्रकार खुला हुआ है मानो कुछ कहना चाहते हैं। मृत्यु वह थी, शानदार मृत्यु ! आयी और प्राणोंको आलिंगनमें बांधकर ले गयी, मानो प्राण उसकी राह देख रहे थे।’

धीरे-धीरे कई और मित्र हमारी टोलीमें आ मिले। वे तरह-तरहकी बातें कहने लगे परन्तु उन सबका सम्बन्ध रायबहादुरकी मौतसे ही था।

एक साथी बोले, 'इन चार दिनोंमें ये सब लोग कहां थे ? कोई भी पास आकर नहीं फटका ।'

मैंने कहा, 'विज्ञानके युगमें आनेकी आवश्यकता नहीं होती ।'

'क्यों ?'

'क्योंकि आना सहानुभूतिके लिए होता है और वह टेलीफोन द्वारा बड़ी सरलतासे भेजी जा सकती है ।'

'और वह प्यारी भी लगती है', तीसरे मित्र बोले ।

'जी हाँ', दूसरे साथीने कहा, 'उसी प्रकार जिस प्रकार नाटकके सामने चलचित्र प्यारा लगता है । परसों रायबहादुरके पास मेरी ड्यूटी थी । तब नहरके बड़े साहबका फोन आया था । वे बड़े कोमल स्वरमें कह रहे थे, 'मिसेज़ गुप्ता ! मुझे आपसे हार्दिक सहानुभूति है ।' मिसेज़ बोलीं, 'आपकी हमदर्दीके सहारे...।' वे उसी तरह कहते रहे, 'मुझे बहुत दुःख है, मिसेज़ गुप्ता ! निस्सन्देह मुझे बहुत दुःख है । हम सचमुच कितने असहाय हैं । नहीं, नहीं । ब्रताइये मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?'

'मैं यदि मेम साहब होता, तीसरे बन्धु बोले; तो उसी क्षण कहता आप मेरे लिए मर सकते हैं ।'

उनकी बात सुनकर हम हँस पड़े पर बबूला जैसे ही उठा तैसे ही पानी पड़ी हुई गरम राखकी तरह दब गया । हमने चारों ओर देखा—बहुत सारे गिरोह चुपचाप बातोंमें व्यस्त हैं और ऊपरसे कभी-कभी मन्त्र-ध्वनिके साथ रुदनका स्वर भी उठने लगता है । मेरे रातवाले साथीने उस ओर बिना ध्यान दिये कहा, 'और जानते हो, फोनपर बात करते समय वे क्या करते हैं ?'

'क्या करते हैं ?'

'वे तब पपीको बड़े प्यारसे थपथपाते हैं या रस ले लेकर शराबकी घूंट भरते हैं ।'

दूसरे साथी बोले, 'दुःख यही है कि टेलीफोनसे केवल शब्द जा सकता है, गन्ध नहीं। यदि गन्ध भी जा पाती तो मेम साहबके प्यासे ओठ...।'

वाक्य पूरा होनेसे पहले ही मेरे साथी फिर मुस्कराये परन्तु तब मुझे यह मुस्कराहट बड़ी बीभत्स लगी। मैंने चाहा कि तीव्रतासे इसका प्रतिवाद करूँ परन्तु शब्द कण्ठमें आकर अटक गये और मेरी आँखोंके आगे रातका दृश्य आपसे आप उभर आया।

खाना खाकर जब मैं कोठीपर लौटा तो रात हो चुकी थी। सब ओर प्रायः अन्धकार ही अन्धकार था। मैंने चुपचाप ड्राइंगरूमका द्वार खोला, देखा—सामने बड़े साहब टहल रहे हैं। वे अकेले थे और निश्चय ही उन्हें ब्रिज पार्टीकी याद आ रही थी। वे ब्रिजके प्रसिद्ध खिलाड़ी थे, और प्रतिदिन सन्ध्याके समय उनकी पार्टी जमती थी और उस हा-हूके बीच जब बैरा लोग जिन और सोडेके गिलास लिये इधर-उधर दौड़ा करते थे, वे पाइंटपर पाइंट जीते-चले जाते थे। मुझे देखकर वे मुस्कराये। बोले, 'तुम आ गये।'

'जी हाँ।'

'धन्यवाद !' उन्होंने कहा और फिर टहलने लगे। मैं अन्दर चला गया। रायबहादुर जिस कमरेमें लेटे हुए थे वह अतिथि-गृह था इसलिए उसमें न विशेष सजावट थी न विशेष फरनीचर। दरवाजेपर हरे पर्दे थे और फर्शपर नीली दरी। शेष सामानमें आवश्यकतानुसार मेज, कुर्सियाँ, रेक और छोटी टेबुलें थीं। वे स्प्रिगदार पलंगपर लेटे थे जिसपर नरम और मुलायम गद्दे बिछे हुए थे। जब मैंने उन्हें देखा, तो उनके नेत्र अर्द्ध-उन्मीलित थे। नीचेका ओठ बराबर हिल रहा था और उनका दाहिना हाथ रह-रहकर फड़क उठता था। शेष शरीर निर्जीव और शान्त था। मैं देरतक उन्हें देखता रहा। मनुष्यसे बढ़कर धरतीपर कुछ नहीं है, यह मैंने पढ़ा था पर यह जो मनुष्य मेरे सामने लेटा है, यह !

तभी मेरे एक साथीने जो वहाँ पहलेसे मौजूद था, पीछेसे, आकर कहा, 'ओ, तुम आ गये, निशिकांत !'

मैं मुड़ा, 'जी हाँ ! बताइये मुझे क्या करना होगा ।'

'कुछ भी नहीं', वह बोला, 'केवल बैठकर मृत्युको आते देखना होगा ।'

मैं मुस्कराया, 'मृत्यु बड़ी छलिया है । उसे आते किसने देखा है ?'

उसने कहा । 'परन्तु कान्त ! रायबहादुर मृत्युको स्पष्ट देख रहे हैं, तभी तो उन्होंने प्राणोंको दबोच रखा है । तिल-तिलकर मरना यही तो है ।'

उसके स्वरमें तलखाहट भरने लगी थी । वह आगे कुछ कहता परन्तु तभी मेम साहबने वहाँ प्रवेश किया । पतली और कोमलांगी मेम साहब जो पाउडरकी तह जमा-जमाकर अपनी कीलोंको छिपानेमें घंटों वरबाद कर देती थीं, मुझे उस समय बड़ी कुरूप जान पड़ीं । लेकिन करुणाके कारण वह कुरूपता दयनीय हो उठी थी । उनकी आंखें कह रही थीं, 'मैं कितनी निर्बल हूं, मेरा कहीं सम्बल नहीं'—मुझे इस पुकारसे सन्तोष हुआ । मैंने सहानुभूतिसे भरकर कहा, 'मेम साहब ! आपका दुःख बहुत बड़ा है परन्तु आप शान्ति रखें, जो होना था वह तो हो चुका ।'

उनकी आंखें उबल रही थीं । रोते-रोते वे बोलीं, 'इन्हें इतना कष्ट क्यों है, क्यों ?'

मेरे साथीने कहा, 'परमेश्वरकी माया कौन जानता है, मेम साहब ।'

'ओह परमेश्वर', वे सुबकने लगीं और फिर सहसा एक क्षण रुककर कहा, 'अब कोई आशा नहीं ?'

'नहीं मेम साहब, अब क्या है ?'

वे रायबहादुरके और भी पास आ गयीं । वे उस क्षण कितने असहाय थे, परन्तु एक दिन उन्होंने ही मेम साहबके शरीरका निर्माण किया था । उसी पुरानी जर्जर शक्तिमें उनके जीवनका स्रोत था । सृष्टिका यही नियम है । दीवेकी जोतकी तरह जीवनकी जोत सदा जलती रहती है ।

तेलकी प्रत्येक बूंद आती है और नष्ट हो जाती है, परन्तु जीवनपर उसका प्रभाव नहीं पड़ता ।

तब न जाने क्यों इस सत्यके सामने मुझे मेम साहबका रोना अच्छा नहीं लगा । मैंने उधरसे मुँह फेर लिया । मेज़पर छोटी-बड़ी शीशियोंका एक बेतरतीब ढेर लगा हुआ था । मैं उनके लेबलपर लिखे नाम पढ़ने लगा—कोरोमिन, ग्लूकोज, सोलो सैण्टेसीमिया, इन्सुलिन इत्यादि, इत्यादि ।

धीरे-धीरे कमरेमें कई और आदमी आ गये । वे चपरासी और दूसरे नौकर थे । वे फ़र्शपर बैठकर कुछ देर शून्यमें ताकते रहे, फिर आपसमें बात करने लगे । सोनेसे पहले बड़े साहब एक बार अन्दर आये, बोले, 'आप लोग चाय पीना पसन्द करेंगे ?'

मैंने कुछ अचरजसे कहा, 'जी नहीं ।'

'नहीं, आप चाय पीजिये', वे बोले, 'मैं बैरासे कहता हूँ । आप रातभर जागेंगे ।'

और वे चले गये । कुछ देर बाद बैरासाय ले आया, बोला, 'बाबूजी ! मेम साहबको चाय पिलाकर आया हूँ । सच कहता हूँ उन्हें देखकर रोना आता है । मना कर रही थीं । मैंने कहा—मेम साहब ! आप नहीं पियेंगी तो बाबू लोग भी नहीं पियेंगे । बेचारीको अपने भाईकी बड़ी चिन्ता है । एक अफ्रीकामें हैं, दूसरा मद्रासमें मिट्टीसे सोना पैदा कर रहा है । बेचारी अकेली बैठी रोया करती है । क्या करें, हम लोगोंकी बीबियोंको तो बात करना भी नहीं आता ?'

फिर सहसा धीमा पड़कर बोला, 'छोटी बहिन सुनकर भी नहीं आई और न मद्रासवाला भाई आया है ।'

बैरा बोले चला जा रहा था और चपरासी उसकी बातोंमें रस ले रहे थे । आखिर उसने मुझसे कहा, 'आप चाय पी लीजिये ।'

'नहीं ।'

‘अजी पीजिये भी। आपके क्या लगते हैं। उनके अपने तो पास भी नहीं फटकते।’

मैं मुस्कराया और चायका प्याला ले लिया। मैं तब खड़ा था। पासके कमरेमें जाकर, जहाँ वस्तुतः चाय पीनेका प्रबन्ध था, मैंने एक घूंट भरा और प्याला मेज़पर रखकर लौट आया। कमरेका एक चक्कर लगाकर मैं फिर रायबहादुरको देखने लगा—बच्चोंके खिलौनेकी तरह उनका निचला ओठ और दाहिना हाथ बराबर हिल रहा था। सहसा मुझे लगा हाथका यन्त्र धीरे-धीरे बेकार होता जा रहा है। मैंने अपने साथीसे कहा, ‘देखो मित्र ! रायबहादुर कैसी घोर यन्त्रणा भोग रहे हैं ?’

साथीने जवाब दिया, ‘पापका यही अन्त होता है, कान्त !’

मैं मुस्कराया, ‘बड़े आदमी पाप नहीं किया करते, दोस्त !’

‘मैं कुछ नहीं जानता, आप क्या कहना चाहते हैं, मेरे साथीने तलखा-हटसे कहा, ‘पर मैं यह जानता हूँ कि रायबहादुर पापी थे। वे अपने समयके प्रसिद्ध ठेकेदार थे। वे सरकारके लिए नहर ~~हैं~~ नहीं खदवाते थे कुछ और काम भी करते थे।’

‘वह क्या काम था।’ मैंने अचरजसे पूछा।

वह उठकर मेरे पास आ गया और बोला, ‘वे उनके लिए मनो-रंजनका साधन भी प्रस्तुत करते थे।’

मेरा कौतूहल बढ़ा। मैंने कहा, ‘अर्थात् ?’

‘नहीं जानते ? अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी लड़की पसन्द करते हैं। ठेकेदार साहब उन्हें लड़कियाँ भी भेजते थे।’

कह कर वह हँसा, ‘बाहरी लड़कियाँ ही नहीं, अपनी लड़कियाँ भी ! तभी तो आधा काम करनेपर पूरा बिल पास होता था और तभी वे राय-बहादुर बने थे।’

कैसी घृणित बात थी ! सुनकर मेरा अन्तर्मन सिहर उठा परन्तु साथ ही मुझे लगा बड़े लोगोंके सामाजिक व्यवहारको मेरे साथीने यह

रूप दे दिया है। इसलिए शान्त मनसे कहा, 'मेरे दोस्त ! यह नये युगका फ़ैशन है और आप जानते हैं, फ़ैशन बड़े आदमी किया करते हैं।'

दूसरा साथी जो अबतक चुपचाप बैठा था, बोला, 'निस्सन्देह ऐसा फ़ैशन बड़े आदमी किया करते हैं। इसलिए हम बहुत शीघ्र ही बड़े आदमियोंका नाश करनेवाले हैं।'

कहते-कहते उसकी आंखें चमक उठीं परन्तु उस रात मृत्युके समय मुझे ये बातें अच्छी नहीं लग रही थीं। मैंने विषय बदलनेके विचारसे उनका ध्यान रायबहादुरके शरीरकी ओर आकृष्ट किया लेकिन मेरी बात काटकर पहले साथीने कहा, 'अभी आपने पूरी बात नहीं सुनी है।'

'क्या ?'

'इनकी छोटी लड़की आत्महत्या करके मरी थी।'

'आत्महत्या, क्यों ?'

'क्योंकि वह इनकी इच्छा पूरी नहीं कर सकी। इन्होंने उसे नहरके बड़े अफ़सरके पास भेजा था। वह सुन्दरी थी और साहब सौन्दर्यका प्रेमी। परन्तु सुन्दरी लड़कीमें तब यकायक न जाने कहांसे एक बात पैदा हो गयी—सौन्दर्य मेरा है, मैं उसकी स्वामिनी हूँ, जिसे चाहूंगी दूंगी।'

वह साथी कहानी कहना जानता था। मेरी उत्सुकता बढ़ी, 'फिर !'

'फिर यह हुआ कि अफ़सरने जब उसके सौन्दर्यपर आक्रमण किया, तो वह तिलमिला उठी। क्रोधमें आकर उसने अफ़सरको पीट डाला।'

'लड़कीने ?'

'जी हाँ। वह आज़ाद लड़की थी और आज़ादीका अर्थ जानती थी। पिताने जब इस घटनाका समाचार सुना, तो क्रोधसे तमक उठे। उनकी इच्छा-शक्ति प्रबल थी और वे उसका अपमान नहीं सह सकते थे। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने आवेशमें आकर लड़कीको ज़हर दे दिया...।'

'ज़हर !' मेरे मुँहसे निकला, 'तो उसने आत्महत्या नहीं की !'

‘हाँ, वास्तवमें नहीं की, परन्तु दुनिया तो यही जानती है कि असफल प्रेमके कारण ठेकेदार साहबकी लड़की ज़हर खाकर मर गयी।’

मैं कुछ जवाब नहीं दे सका। मेरा मन अब आप ही आप क्रोध और घृणासे भरा आ रहा था। दूसरे साथीने फिर उसी तलखीसे कहा, ‘इन लोगोंका जितनी जल्दी नाश हो उतना ही अच्छा है परन्तु ये मरनेके बाद भी अपने सायेसे चिपटे रहते हैं।’

मैंने उसकी ओर बिना देखे जवाब दिया, ‘वही साया हमारी कमज़ोरी है। उसका नाश, रायबहादुरके नाशसे अधिक आवश्यक है।’

तब चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल कभी-कभी कमरेकी हवा घूमकर गहर उठती थी और पीछेके जंगलमें गीदड़ बोलने लगते थे। मैं उसी तरह खड़ा था। मेरे मनमें उठ रहा था कि क्या इसी दिनके लिए रायबहादुरने वे सब काम किये थे जिन्हें दुनिया धृष्टि कहती है। लेकिन दुनिया कहती है परन्तु रायबहादुर उन्हें धृष्टि नहीं मानते थे। मैंने फिर सोचा—क्या व्यक्ति और समाजकी ~~अज्ञेताएँ~~ इतनी भिन्न हैं? ...तब मैंने गर्दनको झटका दिया। मैं विचारोंके दलदलमें नहीं फँसना चाहता था। मैं सामाजिक व्यवहारकी स्वतन्त्रता स्वीकार करता था परन्तु साथ ही लड़कीकी भी, इसलिए मैं फिर रायबहादुरके पास आकर खड़ा हो गया। मुझे तब वे बीभत्स भेड़ियेकी तरह भयानक मालूम देने लगे थे। जान पड़ता था कि उनकी लड़कीकी आत्मा उनका कण्ठ आक्रान्त किये हुए थी। मैं उनके ऊपर झुक गया। मैं जानना चाहता था, क्या सचमुच आत्मा है, क्या सचमुच...? सहसा तभी मेरी दृष्टि उनके हाथपर गयी। वह शान्त हो चुका था, केवल निचला ओठ फड़क रहा था परन्तु बुझते प्रकाशकी तरह वह फड़कन धीमी, और धीमी पड़ रही थी और ये आंखें !

मेरा हृदय काँप उठा—यह है इन्सान ! यह है अहम्की प्रतिमूर्ति, ऐश्वर्य और विलासकी प्रतिष्ठा !

मैंने देखा—धीरे-धीरे वह ओठ भी शान्त हो गया है। तो, तो क्या रायबहादुर मर गये ?

मैं एक अप्रत्याशित सन्तोषसे भर उठा। मैंने शीघ्रतासे पुकारा, 'दोस्तो ! आखिर रायबहादुर मर गये।'

'मर गये !' मेरे साथी चौंककर उठे, 'इत्ती जल्दी !'

कमरेमें फिर चहल-पहल जागी। बारी-बारी हम सबने रायबहादुर-की परीक्षा की। निश्चित हो गया तो मैं बड़े साहबको सूचना देने चला गया। बाहर ठण्डी हवा चल रही थी और अन्धकार घरतीकी छातीपर तना बैठा था। मैंने देखा—मुक्त आकाशके नीचे खुली छतपर साहब-दम्पती सो रहा है, शान्त और निर्द्वन्द्व। मेम साहबका चेहरा यद्यपि मुरझा रहा है परन्तु नींदने उसपर बच्चोंकी-सी बेबसी पैदा कर दी है। सहसा मेरे मनमें एक प्रश्न उठा—इतनी गहरी नींद ! क्या इन्हें दुःख नहीं है ? क्या ये रायबहादुरको जानते थे ?

कैसा बेहूदा प्रश्न है* ? मैं शीघ्रतासे बड़े साहबके पास पहुँचा।

उन्हें हिलाकर मैंने कहा, 'वे मर गये।'

परन्तु वे नहीं उठे। मैंने फिर हिलाया। वे कुनमुनाये। मैंने कहा, 'सुनिये तो, वे मर गये।'

'क्या ?'

'रायबहादुर मर गये।'

उन्होंने आँखें खोलीं। बोले, 'क्या है ?'

मैंने कहा, 'रायबहादुर मर गये।'

'तुम्हें विश्वास है कि उनके प्राण निकल चुके हैं।' उन्होंने धीरेसे पूछा : 'जी हां।'

उन्होंने राहतकी साँस ली। बोले, 'अच्छा ! तुम जा सकते हो।'

और वे पूर्ववत् सो गये। मैं उन्हें देखता ही रहा गया, 'वे दोनों शांत, निर्द्वन्द्व गहरी नींदमें सो रहे थे।'

यहीं आकर सहसा मैंने सुना, ऊपर गहरा चीत्कार उठा है। वह इतना करुण था कि मेरी आँखोंमें आंसू भर आये। मैं ही नहीं और बहुतसे लोग भी रूमालसे आँखें पोछने लगे थे और जल्दी-जल्दी अरथीकी ओर बढ़ रहे थे, जो कीमती दुशाले और सुगंधित पुष्पोंसे ढकी हुई थी। ग्रंथी लोग धीरे-धीरे पुकार रहे थे :

सत नाम, सत नाम, सत नामजी,

वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरुजी।

वे कन्धा देनेकी प्रतिस्पर्धामें एक दूसरेसे आगे बढ़ जाना चाहते थे और मैं चुपचाप अपने साथियोंके साथ पीछे पड़ गया था। तब सड़कके किनारे जो मकान थे उनके बन्द झरोखे धीरेसे खुले और अनेक नरनारियोंने उनमेंसे झाँककर उस शानदार शव-यात्राको देखा। मेरे पीछेमे किसीने करुण और ईर्ष्या भरे स्वरमें कहा, 'कितना भाग्यशाली व्यक्ति है !' मैं न जाने क्यों तिलमिला उठा—भाग्यशाली ! आखिर सौभाग्य क्या है, आखिर सत्य क्या है। आखिर क्या कोई ऐसा माईका लाल नहीं हूँ जो आगे बढ़कर रायबहादुरको निरावरण कर दे और चिल्लाकर कहे— यह पापी था, यह इस सम्मानका अधिकारी नहीं है ? क्या इनकी लड़कीकी आत्मा कहींसे आकर अपने अपमानका बदला नहीं ले सकती ?

आत्माका ध्यान आते ही मेरी आँखें ऊपर उठीं। वहाँ सदाकी तरह निपट नीला आकाश था, जिसमें चीलें उड़ रही थीं।

फिर मैंने अपनी भुजाओंको देखा, उनमें ऐंठन पैदा होने लगी थी और भीड़ आगे बढ़ रही थी। और शब्द उठ रहा था :

सत नाम, सत नाम, सत नामजी,

वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरुजी।



संघर्षके बाद

अतुल भोजन करके उठा तो माँ बोली, “तू निर्वाणके पास गया था, बेटा ?”

अतुलने कहा, “नहीं।”

माँ नहीं बोली, कुछ सोचने लगी।

अतुलने ही फिर कहा, “वहाँ जानेसे क्या होगा, माँ ? भइया मेरी बात नहीं सुनेंगे।”

न जाने क्यों माँकी आँखें डबडबा आईं। आँचलसे आँसू पोंछकर वे इतना ही बोलीं, “तो क्या मुझे ही उसके पास जाना पड़ेगा ?”

अतुल झिझका नहीं। बोला, “अगर भाभीको घर न ला सकीं, तो जानेसे क्या होगा, माँ ?”

माँका साहस टूट गया। वे चुपचाप चली गईं। मणि भी माँ-बेटेकी बातें सुन रही थी। माँकी यह असहाय्यवस्था उससे न देखी गई। उसने कहा, “कुछ तो करना ही होगा, नहीं तो माँका जीवन संकटमें जान पड़ता है।”

अतुलने मणिको देखा, मानो कहते हों, क्या तुम इन बातोंको नहीं समझतीं ? बोले, “माँ जब भाभीको घरमें नहीं रखना चाहतीं, तब भइया कैसे आवें ?”

“लेकिन आप अपने भइयाको समझाते क्यों नहीं ? वहूँके लिए भी कोई माँको छोड़ता है ?”

“भइयामें एक दोष है, मणि। वे जो एक बात कह देते हैं, उसे करना जानते हैं। मैं ऐसा नहीं हूँ। अगर मैं भी ऐसा ही होता, तो तुम्हें राज-रानीके पदपर न ला बिठाता।”

मणिने जाना वे हँसी कर रहे हैं, उसीसे खिन्न होकर बोली, “आप वहाँ

जाते ही कब हैं? माँका दिल दुखानेके लिए आप दोनों भाइयोंने एका कर लिया है।”

अतुलने इस बार लंबी साँस छोड़कर कहा, “यही तो अच्छा है, मैं भइयासे एका नहीं कर सका, मणि। परन्तु इन बातोंसे क्या? मैं कुछ भी नहीं कर सकूँगा।”

और वे चले गये। मणि उनकी ओर देखती खड़ी रह गई, जैसे वह स्वयं अचरजकी साकार प्रतिमा बन गई हो। वह देखनेमें अधिक गोरी-चिट्ठी नहीं है, परन्तु परमात्माने जो स्वरूप उसे दिया है वह विरलेको ही मिलता है। वह बड़े घरकी लाड़ली बेटी और बड़े घरकी मुंहचढ़ी बहू भी है। जब माँ अपने बड़े बेटे निर्वाणको विवाहके लिए विवश न कर सकी, तो अतुलको लेकर ही वह मणिको अपने घर ले आई थी। इसी बीचमें निर्वाण कायस्थ-कुलकी एक बंगाली वालिकाको परिणय-बंधनमें बाँध लाये। पत्रिक संपत्तिका सारा भाग छोटे भाईके नाम करके वे म्युनिसपल-ऑफिसमें काम करने लगे। हृदयपर पत्थर रखकर माँने इस अनहोने परिवर्तनको देखा और पंख-हीन पक्षीकी भांति तड़पकर रह गई। उसके हृदयके अन्तरतम प्रदेशमें बेटेकी जो ममता फलती-फूलती आ रही थी, वही अब कसक बनकर टीसने लगी।

×

×

×

अपनी बातकी इस प्रकार अवहेलना होती देखकर लाड़िली बहू मणि खीज उठी। मन ही मन पतिको खरी-खोटी सुनाकर उसने एक महा भयंकर प्रतिज्ञा कर डाली, “मैं आज जीजीके पास जाकर इस बातका निर्णय करूँगी और देखूँगी बड़े भइया किस प्रकार माँकी ममताको ठुकराते हैं।”

तब शीघ्र ही घरका काम सँभालकर इसने जानेके लिए चादर ओढ़ ली। माँ उस समय सो रही थी। नौकरसे कह गई, “कह देना, आनन्दी बाबूके घर गई हैं।”

नौकरने कहा, “टमटम ले आऊँ ?”

परन्तु उसने किरायेका ताँगा ही ठोक समझा । बोली, “कल्याण टोलेमें निर्वाणवाबूका घर है। वहीं चलो।”

तब शहरकी चिरपरिचित सड़कोंपर चक्कर काटकर बाजारी ताँगा, खड़-खड़ ध्वनिसे उस सुनसान दुपहरीको जगाता हुआ, कल्याण टोलेके सामने आ खड़ा हुआ। ‘हटो’, ‘बचो’। ‘बचकर मेरे खिलाड़ी।’ ऐसा बोलनेके लिए वहाँ कौन था ? कुत्ते भी सड़कसे हटकर सायेमें पड़े थे। इसीसे अब वह बोला, “फिर आना होगा बहूजी ?”

“नहीं !” और वह निर्वाण वाबूकी बैटकमें जा खड़ी हुई।

हेमागिनी उर्फ हेमाने ताँगेको अपने द्वारपर रुकते देखा, तो अचरजसे सोचने लगी—इस वक्त कौन आया ?

और जब मणि ठीक उसके सामने आ पहुँची, तो वे दोनों ही चौंक पड़ीं।

मणिने हेमाके जैसा सुन्दर रूप कभी नहीं देखा था। जो उमे एक बार देख लेता था, फिर भूलता नहीं था, अपितु बार-बार देखनेकी चाह मनको व्याकुल करती रहती थी। बड़ी-बड़ी काली आँखें और उनमें शैशवका भोलापन। चेहरेपर पत्नीत्वके कारण, अनजानमें पैदा हो गई लज्जाकी लाली और उसके साथ अल्हड़पनकी हर वक्त रहनेवाली हंसी। बंगाली रीतिसे गुंथे हुए बाल और चिट्ठा रंग। ऐसी स्त्री कितनी सुन्दर होगी, वही जाने जिसने देखी हो। इसीसे मणि चौंकी थी।

हेमा भी चौंकी थी। क्योंकि बिना किसी भिन्नकके मणि उसके सामने ऐसे जा खड़ी हुई, मानो बहुत दिनोंका जाना पहचाना माँ-बापका घर हो।

आगन्तुकका स्वागत कैसे करे, इस बातको भूलकर हेमाने अंचल गलेमें डालकर मणिको प्रणाम करनेकी चेष्टा की, तब मणि हँस पड़ी, “प्रणाम तो मुझे करना चाहिए था, जीजी ! मैं तो नाते और उमर सब हीमें तुमसे छोटी हूँ।”

हेमाके मनमें एक अस्पष्ट-सा ‘कुछ’ उठा, पर वह बोली नहीं।

मणि ही ने पूछा, “तुमने मुझे पहिचाना नहीं, जीजी ?”

हेमा अचरजसे व्याकुल ही होती रही ।

मणि खिलखिला पड़ी, “मैं तुम्हारी देवरानी हूँ, जीजी ।”

हेमा मानों ठगी गई । बोली, “अरे, तुम हो मणि ! आज देखा है ! आओ, आओ, छोटी दीदी, आज किधर भूल पड़ीं ?”

और वे कमरेमें आकर बैठ गई । मणिने एक ही दृष्टिमें उस कमरेकी तुलना अपने कमरेसे कर डाली । मणिका कमरा सुन्दर था ; परन्तु हेमाका कमरा सादगी और स्वच्छतामें उसके कमरेसे कहीं अच्छा था ।—यह निर्णय करके मणिको सुख और दुःख दोनों ही हुये ।

कुछ देरतक वे यों ही बातें करती बैठी रही । मणि किसी प्रकार भी निर्णय नहीं कर सकी कि अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी करे ।

हेमा बार-बार कोई-न-कोई घरेलू प्रश्न कर बैठती थी, “माँ कैसी है ?” “अतुल बाबू कैसे हैं ?” “क्या करते हैं ?”

और मणि संक्षेपमें कहती, “अच्छी है”, “अच्छे हैं ।” “जमीन्दारीका काम देखते हैं ।”

फिर सोचने लगती, ‘क्या करूँ ? वे सच कहते हैं । मैं कुछ भी नहीं कर सकूँगा । भला ऐसी भोली-भाली जीजीसे इतनी कड़वी बात कोई कैसे कहे ? फिर ध्यान आता—कुछ भी हो यह तो करना ही होगा । माँकी बात है ।

इसी उधेड़-बुनमें वह खीझ-सी आई ; पर हेमा खीझने देती तब न । बहुत दिनोंके बाद एक आत्मीय मिला था ।

तभी सहसा मणि बोली, “एक बात कहती हूँ, जीजी !”

जीजी नहीं बोली पर हृदयमें जो गाँठ-सी बँधती आ रही थी वह और भी जटिल हो गई । मणि कहती रही, “पिछले जन्ममें तुम-हम लोगोंकी दुश्मनी थी, जीजी !”

जीजी गुम ! अन्दरका अस्पष्ट 'कुछ' जैसे स्पष्ट हो चला । गाँठ भी ढीली पड़ने लगी । मणि और भी निर्वृन्द हुई, "यदि तुम दुश्मन न होतीं, तो माँ-बेटेमें, भाई-भाईमें इस प्रकार द्रोह न पैदा करती । एक हरी-भरी गिरस्तीको बरबाद न करतीं !"

जीजी अब भी चुप थी । उसके लिए सब स्पष्ट हो उठा था । कल्पना प्रत्यक्ष होकर सामने आकर खड़ी हो गई थी ।

मणि भी अब चुप हो गई । मानो उत्तरकी बाट देखती हो । कुछ क्षण बाद जीजी उसके पास आकर बोली, "लेकिन मेरा तो इसमें कुछ भी दोष नहीं, मणी !"

मणि यह सुनकर उठ खड़ी हुई और बोली, "हैं क्यों नहीं जीजी ? तुम न होतीं, तो बड़े भइया हम लोगोंको इस तरह न छोड़ देते ।"

ना-समझीकी इस बातपर हेमा हँस पड़ी, "अच्छा, लेकिन तुम जा क्यों रही हो ?"

मणि नहीं रुकी ।

तब हेमाने सुनाकर कहा, "अच्छा होता ये सब बातें उनसे कही जातीं ।"

मणिने सुना और मुड़कर बोली, "तुम कह दोगी न जीजी !"

और मणि चली गई ।

×

×

×

सब कुछ भूलकर हेमा सोचने लगी, 'मुझसे ही क्यों कहते हैं ? उनसे कोई नहीं बोलता । वे ही तो मुझे लाये थे । उस दिन उनके घरकी ब्राह्मणी न जाने क्या-क्या कह रही थी । जो आती है कुछ-न-कुछ सुना जाती है ।

उसे दुःख हुआ, आँखोंमें आँसू भर आये ।

उस समय सन्ध्या भागी आ रही थी । सूरजकी तेजी घटने लगी । प्रकाश भी मन्द हो चला । घड़ीकी सुइयोंने एक करवट ली । छः बज गये और निर्वाण दफ़्तरसे लौट आये ।

हेमाने अचरजसे देखा—वे अकेले नहीं हैं, अतुल भी है। उसकी छातीके भीतर धुकर-धुकर होने लगी। मन ही मन उसने कहा, “आज क्या होनेवाला है, प्रभो !”

कुछ देर बैठकर अतुल लौटने लगा, तो हेमा सामने आ खड़ी हुई। रोते-रोते उसकी आँखें लाल हो रही थीं। हँसमुख चेहरा मुरझा गया था, जैसे अनन्त शोक-सागरमें गहरी डुबकी लगाई हो।

अतुल चौंक पड़ा, “अरे, तुम हो भाभी ! पर तुम रो क्यों रही हो ?”

संभलकर हेमा बोली, “तुम लोग मुझसे क्या चाहते हो, अतुल बाबू ?”

अतुलको और भी अचरज हुआ, “मैं तो कुछ भी नहीं चाहता, तुम कह क्या रही हो ?”

“यही कि तुम यहाँ क्यों आये थे ?”

“चुंगीके बारेमें कुछ पूछना था।”

साड़ीका छोर हाथमें थामे-थामे हेमा न-जाने क्या सोचकर बोल उठी, “अच्छा, तो रोटी खाकर जाना।”

अतुल हँस पड़ा, “बस, यही बात है। मैं बैठा हूँ, लाओ, क्या खिलाती हो ? नेकीके लिए पूछना नहीं पड़ता, भाभी।”

तब हेमा निर्वाणके पास पहुँची। बोली, “मुनते हो, मैंने अतुलको खाना खानेके लिए कहा है।”

निर्वाण कुछ घबराकर बोले, “क्या अतुल हमारे घर खानेके लिए तैयार है ?”

“हाँ !” कहकर हेमा रसोईघरमें चली गई।

तब दोनों भाइयोंने एकसाथ भोजन किया। कई बार दोनोंकी आँखें भीगीं और सूख गई। कई बार दोनोंकी छातीके भीतर अनेक भावनाएँ पैदा हुई और मिट गई, मानो नदीकी तरंगें एक-दूसरेको नष्ट करती हुई अनन्तकी ओर बह चली हों। अन्तमें अतुल बोला, “बहुत दिनोंके बाद इकट्ठे बैठकर खाना खाया है, भइया।”

निर्वाणने कहा, “हाँ, बहुत ही दिन बीत गये; पर अतुल ! तुम माँसे तो न कहोगे न ?”

अतुल बोला, “नहीं कहूँगा ।”

और भइया कुछ और न कहें, ऐसा सोचकर भाभीको प्रणाम करके बोला, “अब चलता हूँ, भाभी । परन्तु जब तुम खाना खिलानेके लिए बुलाओगी तो मना नहीं करूँगा ।”

हेमा हँस पड़ी । उस दिन उसने जाना कि प्रकृतिमें भिन्न होकर भी दोनों भाई कितने पास हैं । वे लोग इस बातको नहीं पहचान पाये हैं । मैंने जाना है, तब क्यों भय खाऊँ ।

और उसकी आँखोंमें हर्षके आँसू भर आये ।

×

×

×

आज ब्राह्मणीने आते ही मणिको सूचित कर दिया है, “निर्वाणको हैजा हुआ है ।”

अतुल बोले, “मैं तो जानता था, दिन-दुपहरीमें काम करना पड़ता है, बीचमें जलपान करनेतकको नहीं मिलता । न जाने इतने दिनतक भाभी उन्हें कैसे जीवित रख सकीं ।”

माँने भी सुना । उनका दिल रो पड़ा । वह उसी समय जानेको तैयार हुई; परन्तु अतुलकी अंतिम बात सुनकर ठिठक गई । उसी अभागिनने मेरे बेटेको छीना है ! उसे ही उसे बचाना पड़ेगा ।

वह नहीं गई, परन्तु दिल नहीं माना, ब्राह्मणीको बुलाकर बोली, “तुम अभी जाकर देखो, उसका क्या हाल है ?”

और वह रो पड़ी । बार-बार यही ध्यान आया—‘क्या वे बिना हेमाके निर्वाणको अपने घर ला सकेंगी ?’

उधर मणिने अतुलसे कहा, “तुम वहाँ नहीं जाओगे क्या ?”

“नहीं ।” अतुलका संक्षिप्त उत्तर था ।

“भाईको मरते देखकर भी तुम्हारा दिल नहीं पसीजता ?”

“भइयाको तुम जानती होती, तो ऐसा न कहतीं। मेरे डाक्टरको वे पास भी नहीं आने देंगे।”

“परन्तु अपने आदमीसे ढाढ़स तो होगा ही।”

“भाभीसे बढ़कर उनका अपना कौन है ? उनके होते हमें कुछ भी करने-का अधिकार नहीं है।”

मणि अब नहीं बोली। अतुल ही बोला, “तुम ही वहाँ क्यों नहीं चली जातीं ?”

मणिने आँचलसे आँसू पोछकर कहा, “उस दिन नादानीसे मैं जीजीको न जाने क्या-क्या कह आई थी। क्या मैं अब वहाँ जा सकूंगी ?”

“तो फिर उनका भगवान् मालिक है। अपना काम करो।”

अतुल अपना काम करने लगा। मणि भारी मन लेकर उठ गई।

×

×

×

निर्वाण रोग-मुक्त हुए।

चार रात रोगी स्वामीके पलंगकी पट्टीसे लगकर हेमाने उनकी रक्षा की। संसारवालोंने नहीं जाना, उनपर क्या बीती। उनके पास आता भी कौन था। हिन्दू-धर्मके अछूतोंसे बढ़कर उन लोगोंकी दशा थी। अपने आँचलको गलेमें डालकर वह बार-बार ऊपरकी ओर देखकर कह उठती, “मेरी लाज तुम्हारे ही हाथोंमें है, मेरे प्रभु !”

उसकी लाज तो बच गई, परन्तु वह न बच सकी। अनवरत परिश्रम और रोगीकी परिचर्याके कारण एक दिन उसे भी खाटकी शरण लेनी पड़ी।

निर्वाण स्वयं निर्बल थे। पास पैसा नहीं था। आड़े वक्तका कोई साथी भी नहीं था। किन्हीके आगे गिड़गिड़ानेका, सबको अपनी अवस्था सुनाकर आँसू बहानेका उनका स्वभाव नहीं था। इन बातोंका वही परिणाम हुआ जो होना चाहिए था। हेमा धीरे-धीरे घुलने लगी।

और तभी एक दिन हेमाने निर्वाणसे कहा, “अब मैं नहीं बचूंगी।”

हठी निर्वाण इन बातोंको सुननेका आदी नहीं था, रो पड़ा।

“छिः! छिः!” हेमा बोली, “पुरुष भी कहीं रोते हैं! जब आप बीमार थे, मैं तो एक बार भी नहीं रोई थी।”

निर्वाण बोला, “लेकिन हेम! तुम्हारे बिना नहीं जी सकूंगा, यह जानता हूँ।”

हाथ पकड़कर हेमा बोली, “माँके पास चले जाना।” और उसका गला भर आया।

सहसा निर्वाणको कुछ ध्यान आया। हेमासे बोला, “अभी आऊंगा।” और वह अपने पुराने खान्दानी डाक्टरके पास दौड़ा गया। घर रास्तेमें पड़ता था। जी में आया, कहता चलूँ, “अब वह मर रही है, माँ! एक बार चलकर देख लो।” अतुलने भी देखा—भइया है। पर दोनों मौन रहें। निर्वाण नहीं रुका। डाक्टरके पास जाकर रो पड़ा, “डाक्टर चाचा! आज वह मर रही है। एक बार चलकर देख भर लो। मैं जन्म भर तुम्हारी नौकरी करूँगा।”

गोदमें खिलाये हुए अपने मित्रके लड़केको रोता देखकर डाक्टर चाचा हड़बड़ा उठे, “अरे तुम हो निर्वाण! तुम पहले क्यों नहीं आये? अतुलने भी तो कुछ नहीं कहा। चलो, चलो मैं देखता हूँ।”

×

×

×

सन्ध्याको जब अतुल लौटा तो कहने लगा, “भाभीने जान खपाकर भइयाको तो बचा लिया, परन्तु भइयामें इतनी जान कहाँ जो भाभीकी रक्षा कर सकें। पैसा पास नहीं। अजीब आदमी हैं, जो कह दिया वह करके ही दिखावेंगे।”

मणि सब सुन रही थी। घबराकर बोली, “क्या तुम वहाँ गये थे?”
“नहीं।”

इतने हीमें माँने आकर कहा, “क्या सच ही निर्वाणकी बहू नहीं बचेगी, अतुल?” उनकी आवाज़ भारी थी। जी भरा आ रहा था।

“सुना तो ऐसा ही है।” अतुल बोला।

अब माँ रो पड़ी, “तो अतुल, तू एक बार मुझे वहाँ ले चल!”

अतुलने कहा, “अभी चलो, माँ! परन्तु तुम्हारे पहुँचनेसे पहिले ही भाभी वहाँसे चल देगी।”

“नहीं, अतुल!” माँने अद्भुत दृढ़ताके साथ कहा, “मैंने कितने ही पाप क्यों न किये हों, परन्तु उनका इतना भयंकर दंड भगवान् मुझे देंगे, ऐसी मुझे आशा नहीं है।”

अतुल, माँ और बहूको लेकर जब निर्वाणके घर पहुँचे तो डाक्टर हेमाकी परीक्षा कर रहे थे और निर्वाण संतोषपूर्ण व्यग्रतासे उनके सामने खड़े थे। उसने किसीको नहीं देखा।

चुपचाप उसकी पीठपर हाथ रखकर माँ बोली, “अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। बाहर जाओ, बैठकमें अतुल है।”

निर्वाणने आश्चर्यसे मुड़कर देखा, माँ सामने खड़ी थी। छातीपर सिर रखकर फफकार उठा, “मुझे माफ़ कर दो, माँ! ओ माँ!”

किसी तरह छाती दबाकर माँने उसे बाहर भेजा और बहूका सिर अपने गोदमें रखकर बोली, “मैं तुम्हारी सास हूँ, हेमा! अब तुम्हें मरनेकी ज़रूरत नहीं।”

मणि पागल-सी उन्हें देखती रही। बोलनेके लिए उसे वाणी भी नहीं मिली। फिर डाक्टरकी ओर देखकर माँ बोली, “देवर! हमारे खान-दानके लिए तुमने जो भी किया उसकी विवेचना करनेका समय अब नहीं। हेमाको अगर बचा सके, तो समझना मेरा जो कुछ भी है तुम्हारा है।

परन्तु इन सब झगड़ोंसे सदा परे रहनेवाले अतुलकी आँखोंसे आँसूकी जो बूँदें टपक पड़ी थीं उन्हें शायद किसीने भी नहीं देखा।

१९३६]



स्वप्नमयी

...

२८-५-४७

प्यारे भइया,

आपके जानेके बाद मैं बराबर कहानी लिखनेकी कोशिश करती रही, परन्तु जो कुछ भी मैं लिखती हूँ उससे मुझे स्वयं संतोष नहीं होता। सच तो यह है, आपकी कहानियाँ पढ़कर मुझे ऐसा लगता है कि मैं कभी कहानी नहीं लिख सकूँगी। कभी कभी तो मैं आपकी कहानी सामने रख लेती हूँ। आपका प्लॉट तो नहीं चुराती पर शैली जरूर चुराती हूँ। लेकिन चोरीकी चीज़ क्या अपनी होती है? पढ़नेपर लगता है जैसे आपकी वह कहानी पढ़ रही हूँ जो शायद आपने अपने साहित्यिक-जीवनके वचनमें लिखी होगी। तब मुझे अपने ऊपर ग्लानि होने लगती है। जीमें उठता है, सब कुछ फाड़कर फेंक दूँ और फिर कभी कहानी लिखनेका नाम न लूँ, पर तभी तुम्हारी बात याद आ जाती है—मनुष्यके कोषमें पराजय शब्द नहीं है। एक दिन वह अवश्य जीतेगा। जीतनेके लिए प्रयत्न करना ही सबसे बड़ी सफलता है। तब मैं फिर उत्साहसे भरकर पन्ने रँगने लगती हूँ। पन्ने रँग रँगकर ही तो आप आज एक महान् कथाकार बन गये हैं। मैं भी बनूँगी। तब दुनिया कहेगी—आखिर अमला है तो अजितकी सहोदरा ही!

लो भइया! मैं भी कितनी पगली हूँ। कहानीकी बात करते-करते अपनी प्रशंसा करने लगी। तभी तो मुझसे कहानी नहीं लिखी जाती। पर इधर एक बड़ा सुन्दर प्लॉट मुझे मिला है। मैं उसपर कहानी लिख रही हूँ। भेजूँगी पर मैं चाहती हूँ, आप भी उसी प्लॉटको लेकर कहानी लिखें। तुलना करनेपर मुझे अपनी कमियाँ आसानीसे दिख सकेंगी।

हमारे घरके सामने एक बहुत सुन्दर हवेली है। उसमें एक ब्राह्मणी रहती है। विधवा है परन्तु एक पुत्र और कई पौत्र हैं। मैंने उसके पुत्रको देखा है। वह सदा बना-ठना रहता है; सिल्कका कुरता, सिल्ककी टोपी, सुन्दर किनारीकी महीन धोती और बिलायती काली सैडिल। अकसर वह बैठकमें बैठा रहता है। कभी वीणाके तार छेड़ देता है, तो कभी सितारपर मधुर धुन बजाने लगता है। उसे गाना आता है; मैं देखती हूँ वह कभी कभी पत्नीको सामने बैठाकर कोमल स्वरमें गाया करता है। तब मैं लज्जासे सिहर उठती हूँ। पर वह सदा रंगीनियोंमें बहता रहता है।

वह किसी दफ्तरमें काम नहीं करता। उसका किसी व्यापारमें कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि वह प्रायः अशिक्षित है। फिर भी वह इतना धन कहाँसे लाता है, यह प्रश्न मेरे मनमें बार-बार उठा करता था। कल अचानक एक ऐसी बात हुई जिसके कारण मुझे बिना परिश्रम उस रहस्यका पता चल गया। आप जानते हैं, स्त्रीको स्त्रीसे मित्रता करनेमें कुछ देर नहीं लगती है। वह पहली ही भेंटमें दिलकी दूरीको मिटा देती है।

कल मैं सन्ध्यामें कुछ पहले अपने ऊपरके कमरेमें बैठी हुई पत्रिका पढ़ रही थी, तभी मुना कोई मुझे पुकार रहा है। दृष्टि उठाकर देखा—उम सुन्दर भवनके ओमारेमें एक युवती खड़ी है। मैं उसे जानती थी। वह ब्राह्मणीके लड़केकी बहू थी, सुन्दर और मधुभाषी। मैंने मुस्कराकर कहा, “कहो बहिन।”

वह बोली, “आप तो हमसे बात भी नहीं करतीं।”

मैंने कहा, “बहिन, मैं तो बोलनेकी तड़पती रहती हूँ, पर तुम्हीं ईदका चाँद बनी रहती हो।”

वह हँस पड़ी, “तो आओ न, मैं अकेली हूँ। वे माँके साथ गाँव गये हैं।” मैं खुशी खुशी उसके पास गयी। अन्दर साधारण स्वच्छता थी। हाँ, उसने गहने खूब पहने थे। बातों बातोंमें पता लगा, वे लोग जजमानीपर

जीते हैं। राजपूतानेके बड़े बड़े सेठ उनके जजमान हैं। इस बार माँ बेटेको साथ ले गयी हैं जिससे जानपहचान बनी रहे।

“पर जी”, उसने कहा, “वे इन कामोंको अच्छा नहीं समझते।”

मैंने पूछा, “तो कुछ और काम करते हैं।”

वह हँस पड़ी, “जी, जबतक बिना मेहनत धन मिलता है तबतक कुछ और नहीं कर सकते।”

अचरजसे मैंने कहा, “तो क्या इतना धन मिल जाता है?”

बोली, “मिलता था, जी। पर अब क्या है, अब तो सभी सयाने हो गये हैं। अभी रामगढ़के सेठके यहाँ से जो कुछ मिला है वह पहलेसे बहुत कम है, सिर्फ पाँच तोले सोना है।”

“पाँच तोले”, मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने पूछा, “पाँच तोले सोना?”

“हाँ जी! केवल पाँच तोले। पहले तो उन्होंने दस दस तोलेतक दिया है। आओ देखो, मैं दिखाती हूँ।”

मैंने देखा तो आँखें खुली रह गयीं—दो सुन्दर और कीमती तियले (पोशाक) थीं, एक साड़ी और एक दामन। तीन आभूषण थे—अँगूठी, कर्णफूल और ब्रासलेट। इसके अतिरिक्त पलंगकी निवार, विस्तर तथा दूसरी अनेक वस्तुएँ थीं। मैंने पूछा, “बहिन! किसका विवाह था?”

उसने मुझे अचरजसे देखा। फिर हँसकर बोली, “यह तो सज्जा है जी।”

“सज्जा अर्थात्...?”

“जी। उनके बड़े लड़केकी वह मर गयी थीं।”

सहसा जैसे किसीने मेरी छातीपर मुक्का मार दिया हो। मैंने सोचा—वह मर गयी और इनके लिए ऐश करनेका रास्ता बना गयी। कैसी दुनिया है? कौन जानता है, इस धरतीपर ऐसे लोग भी हैं जिनके लिए मृत्यु विलासिताका साधन है। बिना परिश्रम किये जो खाता है वही तो विलासी है। इसके बाद भइया! मेरा मन नहीं लगा। वह बेचारी कभी वीणाकी चर्चा

छेड़ती; कभी सितारका राग सुनाती, परन्तु मैं संक्षेपमें उत्तर देकर चुप हो जाती। फिर भी मैं मौन नहीं थी। वह संभवतः मेरे दिलका दर्द जान भी नहीं सकी होगी।

मैं पूछती हूँ भइया, क्या यह कहानी लिखनेका प्लान नहीं है। मैं तो 'समाजके शत्रु' कहानी लिखने लगी हूँ।

हम दोनों प्रसन्न हैं। वैसे उन्हें दफ़तरसे फ़ुरसत नहीं मिलती। हेड बननेवाले हैं। अणिमा गयी कि नहीं। मझले भइया तो मदरास पहुँच गये हैं। बड़ा लंबा प्रोग्राम है उनका ! अरविन्द आश्रम, रमन आश्रम, रामेश्वरम् सभी देखना चाहते हैं। अच्छा है, माँको शान्ति मिलेगी। सुना है अरविन्द आश्रममें पुरातन और नवयुगका सुन्दर समन्वय है। द्वन्द्वात्मक भौतिक-वादके इस युगमें ये सब बातें अपना क्या प्रभाव छोड़ेंगी कौन जानता है ?

सबको नमस्कार और प्यार ।

तुम्हारी,

अमला

×

×

×

...

२०-६-४७

प्यारे भइया,

आपका पत्र मिला। आपका मज़ाक़ समझती हूँ; पर भइया, इधर कहानीका वह प्लान मेरे लिए जीवनका दर्द बन गया है। रह रहकर मैं सिहर उठती हूँ और मुझे लगता है, जीवन कहानी लिखनेके लिए नहीं है बल्कि उसका काम कहानियोंका निर्माण करना है। कहानी लेखक तो मानो अपनी अकर्मण्यताको शब्दोंके आवरणमें छिपाना चाहता है।

परन्तु मैं आपको उपदेश देनेकी धृष्टता नहीं करूँगी। आप नन्दिताको तो जानते हैं। उसने मेरे साथ मैट्रिक पास किया था। अरे वही, जो कई बार आपसे कविताके अर्थ पूछा करती थी। उसने लखनऊसे बी० ए० पास करनेके बाद, रामगढ़के सेठ रामदासके छोटे लड़के, जगदीशकुमार

एम० ए० के साथ विवाह कर लिया था। वह प्रेम विवाह था परन्तु एक मित्रके कारण उन्हें किसी प्रकारकी तपस्या नहीं करनी पड़ी। उनके घर-वाले आज भी नहीं जानते कि नन्दिता अपने पतिको पाणि-ग्रहणसे पहिले ही वरण कर चुकी थी।

कल अचानक उसीका पत्र मुझे मिला। नौकरानी लायी थी। इधर भी उनकी एक फ़र्म है और अक्सर वे लोग यहाँ आकर रहते हैं। पुरानी सहेलीका पत्र पाकर मुझे स्वभावतः बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं खुशी खुशी उससे मिलने गयी। वे बड़े लोग हैं। उनका भवन विशाल है। उसकी सजावट रईसाना है, परन्तु भइया उनका पहिनावा मुझे बड़ा बुरा लगा। ऊँचे और भारी दामन जिन्हें वे घाघरा कहती हैं, चिते हुए दुपट्टे, ऊँची चोलियाँ, जिनमेंसे होकर उनका पेट झलकता रहता है। वे गहनोंसे लदी रहती हैं। पैरोंकी उंगलियोंमें चुटकियाँ, फिर कड़ी, सांठ, नेवरी, छैल कड़ी। कमरमें तगड़ी। हाथोंमें बन्द, बगड़ी, पहुँची, छेली, पकड़े, दस्तबन्द। गलेमें गलपटिया, मनिया, कटसरी, रामनामी, फूलहार, लकेट। कानोंमें बालियाँ, बुन्दे। माथेपर पट्टी, बोरले—ये कुछ नाम, जो मैं याद कर सकी। बोली भी मैं उनकी ठीक ठीक नहीं समझ सकती परन्तु मैं जानती थी पुराने लोग आदरके भूखे होते हैं। मैंने पुरातन रीतिसे नन्दिताकी सासके चरण दाबे तो वे गद्गद हो उठीं। पूछने लगीं, “तुम किसकी लड़की हो?” कहाँ रहती हो? बहूको कैसे जानती हो?” मैंने उन्हें संक्षेपमें सब कुछ बताकर कहा, “नन्दिता मेरे साथ पढ़ी थी।”

अचरजसे वे बोलीं, “तो तू भी कालेजमें पढ़ी है?”

“जी नहीं,” मैंने कहा, “मैंने स्कूलके बाद पढ़ना छोड़ दिया था।”

“हाँ बहू,” वे मुँह बनाकर बोलीं, “औरत जातके लिए इतना पढ़ना किस कामका? पर आजकलके छोकरे? ना बाबा! उनका दिमाग तो आसमानपर रहता है। पढ़ी लिखी बी० ए० पास बहू लेंगे। बहू, हम तो एक बात जानें, खानदान अच्छा हो, और खैर, खूबसूरत होना भी ठीक

है। पर यों जो बहू, नयी आग लगी है, सब कालेज पढ़ी छोकरी पसन्द करे हैं यों तो..."

वे अपना वाक्य पूरा नहीं कर पायी थीं कि एक लड़की वहाँ आकर मुझसे बोली, "आपको चाचीजी बुलाती हैं।"

मैंने उस लड़कीको देखा। कौवोंमें हंसकी तरह वह मुझे बड़ी प्यारी लगी। उसने बूटीदार खदरका फ़ाक पहन रखा था। उसके मुनहले बाल दो वेणियोंमें गुथे हुए थे और उसकी हल्की नीली आँखें, गोरा रंग मेरे दिलमें यह संदेह पैदा कर रहा था, कहीं यह अंग्रेज़की लड़की तो नहीं है!

मेरे मस्तिष्कमें ये विचार एक क्षणमें आये और गये। सेठानी क्रुद्ध स्वरमें बोली, "जा बहू, तू वहीं जा। हमें क्या बोलना आता है! मेम साहब!"

मैं घबरा उठी। मैंने शीघ्रतासे कहा, "जी नहीं। नन्दिताका यह मतलब नहीं है। शायद वह नहीं जानती, मैं आपसे बातें कर रही हूँ।" परन्तु उनकी तनावट ढीली नहीं पड़ी। बोली, "मैं उसे जानती हूँ।" और फिर धम धम करती हुई अन्दर चली गयीं। मैं भौचक-सी उन्हें देखती रह गयी, यह कैसा स्वागत है? एक बार तो जीमें उठा कि मैं यहींसे लौट चलूँ पर तभी उस लड़कीने मेरा पल्ला पकड़कर कहा, "आओ मौसी जी!"

जैठकी दुपहरीमें मानो पूरबी हवाका भोंका आया। मेरा अन्तर्मन एक अनिर्वचनीय आनन्दसे भर उठा। मुड़कर मैं बोली, "चलो, कहाँ चलना होगा।"

"ऊपर!"

जीना सामने था। मार्गमें मैंने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

"अपराजिता!"

"इतना सुन्दर," मैंने मुस्कराकर कहा, "किसने रखा है?"

"चाचीजीने।"

"और माने नहीं?"

अपराजिता बोली, “हमारी माँ नहीं है।”

आँखें फिर उठीं। वह उसी तरह शान्त थी। मुझे अपने ऊपर क्रोध आने लगा। क्यों मैंने ऐसा प्रश्न पूछा और तभी मैंने सुना किसीने पुकारा, “अमला !”

मुझे रोमांच हो आया। वर्षों बाद यह प्यारा शब्द सुना था। मैं उसी तरह मुग्धसी बोली, “नन्दिता !”

देखा—सामनेके द्वारपर नन्दिता खड़ी है, सुन्दर, मुग्ध और प्रसन्न। शीघ्रतासे लपकी और मुझे छातीसे चिपका लिया। देरतक चिपकाये रही। जब अलग हुई तो मैं रो रही थी और वह उसी तरह शान्त थी। केवल आँखें गीली होकर रह गयी थीं। बोली, “अमला तुम बहुत अच्छी हो।”

मैं हँस पड़ी, “और तुम बुरी।”

फिर जो बातें हुई उनकी चर्चा बड़ी लंबी है। मुझे लगा उस क्षण जो आनन्द मुझे हुआ वह उसी क्षणमें पैदा हुआ आवेग नहीं था। वह तो अमर और शाश्वत भावना थी जो समान भावसे मानव जातिको सदा-सदासे ओढ़ प्रोत किये हुए है। तब हमने बच्चोंकी तरह अनेक प्रश्न पूछ डाले। पिछले सात वर्षोंका सारा जीवन मानों उन कुछ क्षणोंमें फिरसे दोहराया गया हो। उसके बाद मैंने धीरेसे कहा, “नन्दिता, तुम्हारी सास क्रुद्ध हो रही थीं।”

नन्दिता विद्रूपसे बोली, “वे और क्या करेंगी ? परन्तु मुझे उनकी चिन्ता नहीं है।”

मैं मुस्करायी, “मालूम होता है, तुम लोगोंकी बनती नहीं है।”

“छोड़ो भी”, उसने कहा, “क्या बात ले बैठों। सुनाओ, तुम क्या करती हो।”

“कहानी लिखना सीख रही हूँ।”

वह मुस्करायी, “तो जीजाजी कहानी लिखते हैं ?”

“अजी वे क्या कहानी लिखेंगे ! उन्हें सरकारी कामसे ही फुरसत नहीं।”

“तो फिर?” उसने उत्सुकतासे पूछा।

“छोटे भइया।”

“अजित?”

“हाँ! वे तो प्रसिद्ध कहानीकार हैं; सभी प्रसिद्ध पत्रिकाओंमें उनकी रचनाएँ छपती हैं।”

नन्दिताका मुख प्रकाशसे चमक उठा, “ओह, तो अजित ये हैं। उनकी कहानियाँ मैंने बहुत पढ़ी हैं। वे मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं, क्योंकि वे मनुष्यको जीनेकी प्रेरणा देती हैं।”

सच भइया! तुम्हारी प्रशंसा सुनकर मेरा मन खिल उठा। मैंने गर्वसे भरकर कहा, “आज ही भइयाको लिखूंगी, नन्दिता तुम्हारी बड़ी प्रशंसक है।”

नन्दिता हँस पड़ी, “अमला, कोई किसीकी प्रशंसा नहीं करता। जो इस योग्य है वह अपनी प्रशंसा आप करा लेता है। लेकिन तुमने कितनी कहानियाँ लिखी हैं?”

“अरे अभी तो सीख रही हूँ। लिखूंगी तो तुम्हें भी दिखाऊँगी।” और फिर मैंने उसे वही प्लेट बताया। सुनते-सुनते न जाने क्या हुआ। नन्दिताका मुख विवर्ण हो उठा। किसी तरह संभलकर बोली, “वह मेरी जेठानी थी।”

जैसे कोई अनहोनी बात हुई। मैंने अचरजसे कहा, “तुम्हारी जेठानी?”

“हाँ। यह अपराजिता उन्हीकी लड़की है।”

“उन्हें क्या हुआ था?”

नन्दिताकी मुद्रा कठोर हो उठी। उसे अपनेको संभालना कठिन हो रहा था। वह सहसा कुछ जवाब न दे सकी। मुझे लगा जैसे मैं किसी भूल-भुलैयामें फँसती जा रही हूँ। मैंने कहा, “नन्दिता, उस दिन उस सज्जाको देखकर मैंने सोचा था, वह बहू अपने कुलकी बड़ी प्यारी रही होगी पर आज तो लगता है...।”

बात काटकर नन्दिता बोली, “ठीक ही लगता है अमला ! ये लोग उसे प्यार नहीं करते थे। इन्होंने उसे मार डाला था। ये सब कुछ कर सकते हैं। सब कुछ !”

नन्दिता फिर भावावेशमें आने लगी। उसकी जेठानीका नाम विमला था। वे मैट्रिक पास थीं परन्तु उनकी भावना गहरी थी। वे कविता किया करती थीं और कविताके आवेशमें अकसर स्वप्न देखने लगती थीं। वे देशकी परतन्त्रता, निर्धनता और अशिक्षाकी कहानियाँ पढ़तीं और कल्पना करने लगतीं—वे परतन्त्रता, निर्धनता और अशिक्षाको दूर कर सकती हैं और करेंगी। वे स्वप्नोंमें उलझकर यह भूल जाती थीं कि वे धरतीपर रहती हैं, जहाँ स्वप्न देखना मानसिक रोगका लक्षण है। वे नन्दिताकी जेठानी थीं पर उसका आदर करती थीं और अपनी कल्पना और कवितामें उसे साझीदार बनाती थीं। उनमें एक दुर्गुण था, वे दूसरेकी भावनाओंको ठीक-ठीक नहीं समझ पाती थीं, विशेषतः दुर्भावनाओंको; इसीलिए वे किसीसे अप्रसन्न नहीं होती थीं। वे वस्तुतः बहुत भोली थीं। वे बहुत सुन्दर नहीं थीं परन्तु पहिली बार जब वे गर्भवती हुई तो उन्होंने निश्चय किया—उनकी सन्तान परमगुण संपन्न होनी चाहिए। बस तब उन्होंने अनेक सुन्दर नर-नारियोंके चित्र मंगवाये। वे पुस्तकें मंगवायीं जिनमें महापुरुषों और महान् नारियोंके चरित्र अंकित थे। चित्रोंको देखती और चरित्रोंको पढ़तीं और यथाशक्ति अपनेको शान्त और प्रसन्न रखतीं। उनकी इन विचित्र बातोंकी कुटुम्बीजन आलोचना तो करते थे परन्तु उनके प्रिय स्वभावके कारण कुछ कह न पाते थे। अपने पतिको वे बेहद प्यार करती थीं, इसलिए वे उनकी इच्छाओंका आदर करते थे। इन बातोंका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने एक परम सुन्दर नीलनयन कन्याको जन्म दिया। कहते हैं जन्मके समय दर्दको भूलकर वे दाईसे बोलीं, “मैं शिशुको देखूंगी।” और देखकर उनके नेत्र चमक उठे। दाई बोली, “बहूजी। तुम्हारे गर्भसे रतिने जन्म लिया है।”

वे अपनी सफलतापर गर्वसे फूल उठीं। तबसे वे और भी कल्पनाओंमें

डूबी रहने लगीं। उन्होंने निश्चय किया, “अपराजिता, मेरे देशकी दूसरी लक्ष्मीबाई बनेगी।”

उन्हें कवितासे प्रेम था। वे अब देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखने लगीं। वे कविताएँ जीवन और मृत्यु—दोनोंके प्रगाढ़ प्रेमकी कल्पनासे ओत-प्रोत होती थीं। साथ ही साथ उन्हें लगा, उन्हें स्वयं भी देशके लिए काम करना चाहिए। उन्होंने पतिसे प्रार्थना की। पतिदेव यद्यपि स्वयं जेल हो आये थे परन्तु पत्नीकी यह बात उन्हें अच्छी नहीं लगी। इतने बड़े घरानेकी बहू जेल जाय, यह कल्पना उन्हें कँपा देनेवाली थी। व्यवसायी आदमी थे, दूरकी सोचते थे, इसलिए टाल गये कि समय आनेपर वे साथ साथ देशकी सेवा करेंगे। बात कुछ समयके लिए पीछे रह गयी। तभी उनका कुछ दिनके लिए अपने पिताके घर जाना हुआ। उन दिनों वहाँ सत्याग्रह हो रहा था। किसानोंने जमींदारके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी थी। उनके वकील पिता किसानोंके वकील थे। विमलाने यहाँ आकर अपने स्वप्नोंको चरितार्थ होते देखा। वे उस युद्धमें रस लेने लगीं। वे उनके घर जाकर उनसे बात करतीं और उनकी सभाओंमें कविता पढ़तीं। एक दिन एक सभामें विद्रोह भरी कविता पढ़नेके अपराधमें पकड़ी गयीं।

समाचार ससुराल पहुँचा। जैसे किसीने मुँह पर कालिख पोत दी। वे तिल-मिलाकर रह गये। पतिको भी यह धृष्टता अच्छी नहीं लगी। पर कुलकी लाजका प्रश्न था। वे गये और पैसेके बलपर उन्हें छुड़ा लाये। विमला प्रसन्न थीं। विशेषतः इसलिए कि वे फिर गर्भवती थीं। उन्हें विश्वास था, उनकी यह संतान देशपर प्राण देनेवाली होगी। पतिसे गद्गद होकर कहा, “हमारी यह संतान परम सुन्दर होनेके साथ साथ महान् देशभक्त भी होगी।”

पति मुस्कराये क्योंकि वे भी पिता थे; परन्तु बोले, “विमला। कुछ भी हो तुम्हें जेल नहीं जाना चाहिए था।”

विमलाने जवाब दिया, “मैं क्या जेल जाना चाहती थी। वे मुझे

पकड़कर ले गये। मैं तो केवल किसानोंको यह बताने गई थी कि तुम धरतीके बेटे हो। माँ बेटोंकी होती है।”

पति हँस पड़े, “कवियित्रीजी, तुम निरी कल्पनापर जीना चाहती हो। यह याद रखो, जीवन एक ठोस पदार्थ है।”

विमला बोली, “यह ठोस पदार्थ किसी दिन अवश्य कल्पना रहा होगा। ज्यों ज्यों कल्पना क्रियामें पलटती गयी जीवन ठोस होता गया। मैं भी यही करती हूँ।”

उन्होंने नन्दितासे भी कहा, “देखो नन्दिता ! सुन्दर कल्पनाको जबतक व्यवहारमें नहीं परखा जा सकता तबतक उसका सत्य प्रकट नहीं होता।”

नन्दिता ग्रेजुएट थी। वह जिठानीकी बातें सुनकर अचरजसे भर उठती। वह सोचती, कवि सचमुच क्रान्तिद्रष्टा है। वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा जिस सत्यको खोज निकालता है कवि उसे अनुभूतिसे पा लेता है। वह तबसे विमलाके प्रति और भी आदरसे भर उठी परन्तु उनकी सासको ये बातें बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थीं। विशेषकर जेल जानेके वादसे तो वे विमलाकी शत्रु हो उठीं—उसने उनके कुलकी सफेद चादरमें काला दाग लगाया था। उसे दण्ड मिलना आवश्यक था। उसे पुत्र द्वारा अपमानित करवाना चाहती थीं पर यह सम्भव नहीं था। अतः उन्हें न्यायको अपने हाथमें लेना पड़ा। वे उन्हें रामगढ़ ले गयीं। वे अकसर वहीं रहती थीं। वह उनके कुलवालोंका पुश्तैनी निवासस्थान था, पुराना और रूढ़ियोंसे चिपटा हुआ। वहाँ अब भी नारीका अर्थ था—घरकी दासी जिसका स्थान भोजन-गृह और प्रसूति-गृह तक ही सीमित है। वे घरका काम और बच्चे पैदा करनेके लिए खरीदी जाती हैं। जो धनवान हैं वे हाथोंसे काम नहीं करतीं, मुंहसे करती हैं अर्थात् खाती और बातें करती हैं। विमला इसी श्रेणीमें थीं। उन्हें खानेकी आज्ञा थी। उन्हें बात करनेकी आज्ञा थी, परन्तु वह घरसे बाहर नहीं जा सकती थीं। वे तड़प उठीं।

जैसा कि उसका स्वभाव था उन्होंने अपनी साससे कहा, “जी ! मैं बाहर घूमना चाहती हूँ।”

सास बोली, “बहू ! यह शहर नहीं है। तुम्हें बहू-बेटियोंकी तरह रहना चाहिये।”

“लेकिन”, विमलाने कहा, “मुझे हवाकी जरूरत है।”

सास अपने गढ़में थीं। दृढतासे बोली, “बहू ! सेहत हवासे नहीं, खानेसे सुधरती है। मेरे घरमें धीकी कमी नहीं है।”

विमला सहम गयी। यकाम्यक उसे कुछ सूझ न पड़ा। वे अनमनी-सी रहने लगीं। परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य बिगड़ चला।

वे कई बार सासके पास गयी परन्तु वे घृणाकी हँसी हँस रह गयीं। उसने कहा, “तो मुझे शहर जाने दो।”

जवाब मिला, “अभी ठहरो।”

विमलाने कई पत्र अपने पति और नन्दिताको लिखे पर उन्हें किसीका उत्तर नहीं मिला। उनके कवि-हृदयको ठेस लगी। विशेषकर अपने गर्भके कारण उनकी चिन्ता बहुत बढ़ गयी और वे विक्षिप्त-सी रहने लगीं। अपराजिता तब नन्दिताके पास थी और बच्चा होनेके दिन पास आ रहे थे।

अन्तमें एक दिन एक बैरंग पत्र किसी तरह नन्दिताके पास पहुँचा। पढ़कर नन्दिता काँप उठी। उसने उसी वक़्त अपने पतिको बुलाकर कहा, “मैं आज ही रामगढ़ जाऊँगी। जीजी बहुत बीमार है।”

अचरजसे उन्होंने कहा, “पर नन्दिता ! मुनीमजीका पत्र आया है, उसने लिखा है, कि वे प्रसन्न है।”

नन्दिताने पत्र उन्हें दे दिया। पढ़कर वे बोले, “जान पड़ता है, उनका मस्तिष्क बिगड़ गया है।”

“जी हाँ”, नन्दिताने जवाब दिया, “कविके कोमल हृदयको जब

ठेस लगती है तो वह विद्रोह करनेमें असमर्थ होनेसे पागल ही हो जाता है, पर आप अभी चलिए अभी ।”

रामगढ़ पहुँचकर जब नन्दिता ने विमलाको देखा तो वह काँप उठी । वे मात्र कंकाल थीं, पीली और डरावनी । आँसुओंको पीकर उसने कहा, “जीजी, तुमने यह क्या कर डाला !”

विमलाने आँखें खोलकर देखा, कहा, “तुम आ गयीं नन्दिता ! पर अब देर हो चुकी है । मैंने उसकी हत्या कर डाली ।”

“नहीं-नहीं”, नन्दिता ने प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरा, “तुम ऐसे मत बोलो, जीजी ! तुम ठीक हो जाओगी । परन्तु तुमने लिखा क्यों नहीं ।”

लेकिन विमलाने नहीं सुना । वह यही कहती रही, “मैंने उसकी हत्या कर डाली; मैं चाहती तो उसे बचा सकती थी ।”

नन्दिता ने लौटकर पतिसे कहा, “जीजी पागल हो चली हैं, शीघ्र ही शहर जाकर एक डाक्टर और नर्सको ले आइए ।”

सास पास बैठी थीं, बोलीं, “अरे नहीं । उसके बच्चा होनेवाला है । दिन पास हैं । ऐसा हो ही जाता है, खासकर जब कोई महात्मा पैदा होता है ।”

नन्दिता ने तीव्रतासे कहा, “उनके हृदयको ठेस लगी है । उन्हें डाक्टरकी जरूरत है ।”

सास बोलीं, “पर इस घरमें आजतक डाक्टर और नर्स नहीं आये हैं ।”

“नहीं आये हैं तो अब आ जायेंगे ।”

और वह चली गयी परन्तु विमला बहुत दूर पहुँच चुकी थीं । अपराजिताकी पुकार भी उन्होंने नहीं सुनी और डाक्टरके आनेसे पहले ही वह भोली कवि-आत्मा इस दुनियाको छोड़कर चली गयी । उसने उसी रात एक मृत शिशुको जन्म दिया । वह अति सुन्दर था और उसका सिर बहुत बड़ा था परन्तु उसके हृदयका स्पन्दन बन्द था ।

क्षण भरके लिए जब उसे होश आया, तब अपने पतिसे उसने इतना ही

कहा, “अपराध मेरा था। मैं चाहती तो उसे बचा सकती थी परन्तु बचा नहीं सकी। इसलिए मुझे जीनेका अधिकार नहीं है। मैं जा रही हूँ।”

×

×

×

२१-६-४७

प्यारे भइया !

कल मन इतना उमड़ा कि आगे लिखा ही नहीं जा सका। नन्दिताने जब मुझे यह कथा सुनायी थी तब भी मैं रो-रो पड़ी थी। उसने कहा था, “अमला। नारी बहुत रो चुकी। रो-रोकर उसने आँचलके दूधको भी पानी कर डाला है। वह भूल गयी है, पुरुषका सहारा लेनेवाली नारी पुरुषका निर्माण भी करती है। उसने मुझे विमलाकी कवितायें भी दी हैं कि आप उन्हें छपवानेका प्रबन्ध कर दें। दुनिया देखे तो अन्धकारकी छातीके नीचे प्रकाशके कितने पुंज दबे पड़े हैं।

भइया ! कहानी कहाँसे कहाँ पहुँच गयी। इसको कोई क्या लिखे ! यह तो मरकर देखनेका सौदा है।

शेष सब ठीक है। अगले पत्रमें विशेष हाल लिखूंगी। सबको नमस्कार और प्यार।

तुम्हारी,
अमला

पुनश्च :—

विमलाका पत्र भेज रही हूँ।

अमला

विमलाका पत्र

प्यारी नन्दिता,

आखिर मैंने उसकी हत्या कर डाली। मैंने अपने ही हाथों संसारके भावी नागरिकका, जो विश्वका महान् पुरुष बननेवाला था, गला घोट दिया।

उसे मुक्त वायुकी आवश्यकता थी, मैं उसे घी पिलाती थी। उसे

कठोर कर्मकी जरूरत थी, मैं उसे पड़ी-पड़ी लोरियाँ सुनाती थी। उसने मुझसे बार-बार कहा—माँ, मैं प्रकृतिका साहचर्य चाहता हूँ, राजसी भोग नहीं। मुझे मुक्त सूर्यके दर्शन करने दो, मुझे सरिताकी लहरोंसे खेलने दो। माँ, मुझे तुम पर्वतोंकी उन चोटियोंपर ले चलो जहाँसे मुक्त भरने भरते हैं, जहाँ प्रकृति और पुरुष, निर्विघ्न और निर्द्वन्द्व, गलवाँही डाले खेल खेलते हैं, पर मैं उसकी इच्छा पूरी नहीं कर सकी। क्योंकि इनकी कुल-रीति किसी नारीको प्रकृतिसे सम्बन्ध स्थापित करनेकी आज्ञा नहीं देती।

मैं चुप हो गयी, यही मेरा पाप था। मैंने अपने विचारोंको आप भुठलाया। मैं चाहती तो रीतिको तोड़ सकती थी। रीति तो शाश्वत नहीं होती। वह तो नित नयी बनती है। बननी ही चाहिए। मैंने क्या क्या सोचा था। मैं आदि शक्ति हूँ। मैंने संसार बनाया है। मैं फिर एक ऐसा संसार बनाऊँगी जिसमें न परतन्त्रता होगी, न निर्धनता और न निरक्षरता पर...

पर क्या नन्दिता, मैंने अपने पैरोंपर आप कुल्हाड़ी चलायी। अपने संसारको आप नष्ट कर दिया। मैं भूल गयी, मैं निर्माता हूँ। मुझे अब जीनेका अधिकार नहीं है। मैं नहीं चाहती, मेरा अशक्त बच्चा कलको यों कहे—अपनी माँके पापोंका फल मुझे भोगना पड़ रहा है। इसलिए उसका मरना अच्छा है। मैं उसका गला घोट रही हूँ और अपना भी। वह मुझे पुकार-पुकारकर कह रहा है—माँ! मुझे पंगु जीवन नहीं चाहिये। माँ, मुझे दुर्बल हृदय नहीं चाहिये!

अपराजिता तुम्हारे पास है। तुम्हीं रखना। वह एक दिन महान् बनेगी, यह मत भूलना।



डायन

सूर्य मध्यम रेखाको पार करके पश्चिमकी ओर मुड़ चला था। मैं पढ़नेसे थककर किताबमें मुँह गड़ाये बाहर भागनेकी कोई योजना बना रहा था कि मेरी ममेरी वहन सत्या हाँफती हुई अन्दर आई और एक साँसमें मामीसे बोली, “अम्मा, अम्मा ! डायन ! !”

यह कहते समय वह थर-थर काँप रही थी और उसका रक्तितम मुख एकदम श्वेत हो आया था। तब वह लगभग मामीके ऊपर गिर ही पड़ी थी। मामी हाथका काम छोड़कर एक झटकेसे उठी और दरवाज़ेकी ओर दौड़ती हुई बोली, “शरत कहाँ है ?”

सत्याने कहा, “अम्मा ! उसने डायनको पत्थर फेंककर मारा, गाली दी और . . .”

और इसके आगे सुननेकी शक्ति अब मामीमें नहीं थी। ‘हाय’ कहकर उन्होंने दीवार थाम ली पर दीवारने उन्हें नहीं थामा। वे संज्ञाहीन पागल-सी आगे बढ़ीं पर जैसे ब्रेक लग गया। देखा—सामने शरत बदहवास दौड़ा चला आ रहा है और उसके पीछे दौड़ रही है गफूरन !

मामीकी आँखोंमें तिरमिरारे उठे, तिरमिरारे गिरे, अँधेरा तेज़ीसे बढ़ा। फिर धीरे-धीरे कानोंने सुना, “देख री गुप्ताकी लुगाई ! तेरे छोरेने मुझे गाली दी है। पत्थर फेंककर मारा है। मैं उसका कलेजा खाऊँगी। मैं उसकी बोटी-बोटी नोंचूँगी। छिनालका ! मैं आज उसे छोड़ूँगी नहीं। तुझे तभी पता लगेगा जब उसका कलेजा निकलेगा।”

इन वाक्योंका कोई अन्त नहीं था, कोई मर्यादा नहीं थी। मामी पसीना-पसीना धड़कते दिलसे कभी गफूरनको देखती, कभी शरतको। बीच-बीचमें कुछ फुसफुसाती पर शरत था कि ज्यूँ उसने आकर माँकी टाँगोंमें

सिर दिया तो निकलता ही नहीं था और गलीमें जैसे सन्नाटा छा गया था, पर देख उसे सब रहे थे। कुछ किवाड़ बन्द करके उसकी दराजोंसे भाँक रहे थे। कुछ छज्जोंके पीछेसे ऐसे सिर उठाये थे जैसे जंगलके शेरको आते देखकर पेड़के पीछे छिपा एकाकी यात्री करता है। कुछ साहसी खिड़कियोंमें चिक डालकर, जनवरीकी वर्षाके बाद काँपनेवाले पथिककी तरह, थरथरा रहे थे।

और गफूरन बोले चली जा रही थी, बोले चली जा रही थी। उसकी उमर क्या थी, कोई ठीक-ठीक नहीं जानता था। उसके बाल न केवल सन-से सफेद थे बल्कि संख्यामें भी गिने जाने योग्य थे। दाँत न जाने कबके विदा ले चुके थे। कमर-भुक गई थी। खाल माँससे विद्रोह करके यहाँ वहाँ लटक आई थी। कपड़े भी उसके पेवन्दोंसे भरे पड़े थे। पैरोंसे चिपटा हुआ काला सुथना, वैसा ही कुरता और सिरपर ओढ़नी। वह कुरूप थी पर उसकी आँखोंमें रोशनी थी, उस रोशनीमें क्रूरता चमकती थी। पर जब कभी वह अपनी लाठीको कोनेमें टिकाकर और चूड़ियोंका बोझ उतारकर किसीकी देहरीपर रखती थी, तो जैसे अचानक ही वह क्रूरता मुस्कानमें पलट जाती थी और वह पोपले मुँहसे मोलतोल करती हुई किसीकी कोमल कलाइयोंमें, सधे हाथोंसे रंग-विरंगी चूड़ियाँ चढ़ाने लगती थी।

पर आज तो वह बोले चले जा रही थी, बोले चले जा रही थी और उस बोलनेमें हर वाक्यके बाद सदाकी तरह कलेजा खानेकी बात दोहराती थी और मामी थी कि बदहवास-सी कभी शरतको टटोलती, कभी गफूरन-को देखती जो बार-बार लकड़ीको बजा रही थी और बार-बार आवेशमें कमरको सीधा करनेका असफल प्रयत्न करती थी। जैसे आँधीके भोंकेसे वृक्षकी टहनियाँ तन-तनकर भुक जाती हैं ऐसे ही वह भी भुक जाती थी और आस-पासके लोग साँस रोके देख रहे थे, सोच रहे थे—अब क्या होगा? अब क्या होगा?

“हाय राम, गुप्ताका छोरा गया । गफूरन अब उसका कलेजा खा लेगी ।”

“शामको देखना छोरा हँसता-हँसता एकदम तड़पकर जान दे देगा ।”

“हाय, हाय काकी, इस डायनको मौत नहीं आती ।”

“डायन कभी नहीं मरती, कई सौ वर्ष तक नहीं मरती ।”

बात करनेवाली युवती आगे कुछ पूछती कि सहसा उसकी दृष्टि सामने गई । देखा कि एक भटकेसे मामीने शरतको अपनी टाँगोंमेंसे खींचा और घसीटती हुई वहाँ ले आई जहाँसे गफूरन जहरीले बाण फेंक रही थी । यहाँ आकर उसका भय जैसे तिरोहित हो गया । दृढ़ पर अद्भुत रूपसे विनम्र स्वरमें वह बोली, “चाची, बेटा तुम्हारा यह रहा । मुझे क्या मालूम, कलेजा खाओ या मगज खाओ ।”

और कहकर वे अपने शब्दोंकी प्रतिक्रिया देखनेको रुकी नहीं । सीधी अन्दर आई और पाँच मिनट बाद लौटी, तो हाथोंमें एक टोकरी थामे हुई थी । वह ऊपर तक गेहुँओंसे भरी थी । उसपर आलू थे, गुड़ था, घी था और भी बहुत कुछ था । चुपचाप टोकरीको वहीं रख वह फिर मुड़ी, पर दूसरे ही क्षण अपने हाथ आगे करके बोली, “और हाँ, मुझे चूड़ी तो पहना दो, हाथ नंगे हैं ।”

देखनेवालोंने दाँतों तले अँगुली दाबी । अभी जब वह किवाड़ थामे खड़ी थी, तो उसके हाथोंमें दस-दस सुनहरी चूड़ियाँ थी । क्षण भरमें वे कहाँ गई ? इसके बाद वहाँ कई क्षण सन्नाटा रहा । वह सन्नाटा जो हरेकके प्राणोंको भकभोर रहा था, पर आग धीरे-धीरे ठण्डी पड़ती जा रही थी । उसमें तपस थी पर शोले नहीं थे । गफूरन उसी तेजीमें आगे बढ़ी पर फिर न जाने क्या हुआ, वह मामीकी ओर मुड़ी । बड़बड़ाते हुए कमरके बोझको देहरीपर रखा और तीखी आवाज़में कहा, “औलादको सलीका सिखाना चाहिये ! अनातवा बकना अच्छा नहीं ।”

मामीने जवाब दिया, “चाची ! पूछो न आजकलकी औलाद . . .”

“औलाद तो है पर फिर भी...”

“ओय जी बहुत डाटू हूँ, काटू हूँ। एक बार तुम धमका दो न। मैं कुछ कहूँ तो बात। तुम्हारा ही तो है। तुम्हारे आशीर्वादसे सात-सात बेटियोंपर दिखा है।”

“हाय-हाय”, गफूरन अब हाथ-में-हाथ लिये चूड़ी ढूँढ़ रही थी, “जिये जागे मैं सदके जाऊँ। खुदाने दिखाया है तो जिलायेगा भी।”

और तबतक पासा पलट चुका था। देखनेवाली सोच रही थीं कि यह क्या हुआ और जब वह चली गई, तो उन्होंने सवाल-पर-सवाल करके मामीका दिमाग चाट लिया, “क्यों री गुप्ताकी बहू, क्या कहा उसने? बड़ी मीठी-मीठी बातें करे थी।”

“अरी मीठी-मीठी बातें करके ही तो वह कलेजा काढ़े है, देख लेना।”

शब्द अभी कहनेवालीके मुखमें ही थे कि भीड़में ‘हाय-हाय’के अनेक शब्द उठे, “नहीं, नहीं, भगवान् सब कुछ देखे हैं। ऐसा अन्याय नहीं होगा।”

“नहीं, नहीं। राम न करे, एक ही तो बेटा है।”

पर कहनेवाली और भी आगे आ गई और हाथ मटकाकर बोली, “दर्द मुझे भी है। तभी कहूँ हूँ। चुड़ैलका चौड़ा पकड़कर जबतक लात-घूसे नहीं लगाये जायेंगे तबतक उसका क्या भरोसा? मैं तो उसे ज़िन्दा अलावमें फेंक दूँ पर वह बात है...”

बात जो भी हो पर उसने सब उपस्थितोंके मनपर आतंक पैदा कर दिया। बूढ़ियोंने गम्भीरतासे सिर हिलाये, प्रौढ़ाएँ जो थीं उन्होंने अपने बच्चेको तेजीसे जकड़ लिया। युवतियोंके दिल, विशेषकर माँ बननेवाली युवतियोंके दिल धड़कने लगे। वे सोच न सकीं क्या करें, क्या न करें। पर मामी थी कि शान्त भावसे खड़ी थी। आँखोंमें उसकी आँसू तो थे पर आज उसे मामाके वे शब्द शक्ति दे रहे थे जो वे बार-बार कहा करते थे कि आदमी भी कहीं आदमीका मांस खाता है, जैसे मछली मछलीको,

छपकली छपकलीको, या नागन अपने बच्चोंको खाती है। आदमी जानवर नहीं है, वह ज्ञानी है, धर्मको जानता है। कभी-कभी मामा हँसकर कहा करते थे, “वैसे यह दूसरी बात है कि धनी लोग, जायदादके मालिक, महकमेके अफसर या धर्मगुरु—ये लोग अपने पंजेमें फंसे इन्सानको खा जाते हैं पर वे भी न उसका मांस नोचते हैं, न खून पीते हैं और न मरने देते हैं। वे हिंसक नहीं, अहिंसक हैं।”

आजसे पहले वह कभी इन शब्दोंके अर्थ नहीं समझ सकी थी, पर आज ये ही शब्द उसकी शक्ति बन गये थे, ईश्वर बन गये थे। उसने कहा, “मैं तो जी, कुछ करती नहीं जो होगा हो जायगा।”

इस वाक्यने भीड़की आशाओंपर पानी फेर दिया। किसीने मुंह बिचकाया, किसीने उपेक्षासे भर्त्सना की पर मामीका समर्थन करनेवाली उनमें एक भी नहीं थी। उन्हें यही विश्वास था कि गुप्ताके छोरेपर यह रात नहीं गुज़र सकती। या तो वह सवेरे अपनी खाटपर मरा मिलेगा या रातमें चीख-चीखकर जान दे देगा। उन्हें विश्वास था कि गफूरन रातको जरूर मंत्र पढ़ेगी। उसके घरमें एक कोठरी है, उमीमें बैठकर वह जादू-टोना करती है। किसी खूबसूरत बच्चेको देखा नहीं कि उसकी राल गिरी नहीं, फिर घर जाकर वह उस कोठरीमें बन्द हो जाती है जहाँ तरह-तरहके जादू करनेके यन्त्र हैं। तसवीरें, मिट्टीके बर्तन, मूर्तियाँ, चाकू, छुरे, घोड़ेकी तरनाल, बाल और न जाने क्या-क्या ! कहनेवाले कहते हैं कि पहले वह मिट्टीकी मूर्तिको खूब सजाती है, प्यार करती है फिर मंत्र पढ़ती है और आखिर छुरा लेकर उसका कलेजा निकाल लेती है। उसे वह हथेलीपर रखकर खूब हँसती है, नाचती है, गाती है और बादमें खा जाती है। उस समय असली बच्चा जहाँ भी होता है, पहले तो खूब हँसता है, आप-ही-आप हँसे जाता है। जब प्यार खत्म हो जाता है, तो सहसा वह कांपने लगता, आवाज़ बन्द हो जाती और तड़प उठता और तबतक तड़पता रहता जबतक गफूरन कलेजेको निगल नहीं जाती। निगलते

ही बालक छटपटाना छोड़कर एकदम शान्त हो जाता है। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह गफूरनके हाथकी मिट्टीकी मूर्ति !

लोग उसके बारेमें तरह-तरहकी बातें करते थे, उनमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी जिन्होंने ये सब बात अपनी आँखोंसे न देखी हों। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-युवक, सभीको बूढ़ी गफूरनके कलेजा खानेकी शक्तिपर पूरा विश्वास था। कछ तो उनमें ऐसे भी थे जिन्होंने उसके पेटसे कलेजा उगलवाया भी था। वे क्रसम खा-खाकर कहते थे कि उन्होंने गफूरनसे कलेजा उगल-वाया है।

गुलाब एक लड़का था, सुनारोंका। सोनेके ऐसा उसका रंग, गुलाब ऐसा खिला हुआ। तीन वर्षकी आयुमें ऐसी बातें करता जैसे प्रोफेसरका लड़का सातवेंमें करे। जो देखता उसपर निगाह टिक जाती; बस देखता रहता, देखता रहता। सबके दिलमें प्यार उमड़ता और प्यारकी सीमा होती यह चेतावनी, 'अरी गुलाबकी माँ ! सोने-सा बेटा है तेरा, गफूरनसे बचाना।'।

गफूरन जैसे एक भय थी, एक महामारी थी, एक मौत थी। एक मील दूर होती तभी हलकारे दौड़ पड़ते, बम वर्षाके खतरेका घण्टा बज उठता और तब जो जहाँ होता, जैसे होता, वैसे ही दौड़ पड़ता और बच्चोंको उठा-उठाकर उसकी नज़रोंसे दूर कर देता। तब घरोंके किवाड़ बन्द हो जाते, खिड़कियोंपर चिकें पड़ जातीं। चोटी करती युवतियाँ तेल-कंधा वहीं छोड़कर भागतीं। दाल-चावल चुगती प्रौढ़ायें या बातें करती वृद्धायें सब युवतियोंकी-सी तेज़ीसे उठतीं और पुकारतीं, 'अरी रामू कहाँ है', 'अरी गोपाल कहाँ चला गया', 'हाय-हाय कै बार कहा छोरेको बाहर मत जाने दिया कर' 'अरी क्या दालमें गड़ी है, लल्लूको देख', 'बहू, ओ बहू, अरी गफूरन आ रही है, हाय-हाय...' 'अरी मैं तेरे से पूछूँ कि नन्दू बाहर गया क्यों?' 'ये राम मारे छोरे, हाय-हाय आजकलके बच्चे...'।

और यह घबराये हुए वाक्य, अधूरे वाक्य, भय और क्रोध और भुंभुलाहट से भरे वाक्य कभी पूरे न होते। लेकिन उनका अर्थ समझनेको माताओंकी कभी सिर न खपाना पड़ता। एक बेचैनी, एक तड़प उन्हें सब कुछ समझा देती और जो उस दिन न समझ पाता वह जिन्दगी भर पछताता। गुलाबकी माँ उन्हीं अभागिनोंमें-से थी। उसने गफूरनके आनेपर खतरेकी घंटी नहीं सुनी। गुलाब वहीं गलीमें खेलता रहा। यही नहीं उसने गफूरनकी लकड़ी पकड़कर प्यारसे कहा, “दादी।”

गफूरन रुकी, उसकी आँखें चमकीं, लटकी हुई त्वचाकी कठोरता जैसे स्निग्ध तरलतामें पिघल गई। काँपते हाथोंमें उसने बच्चेका मुँह अपने दोनों हाथोंमें लिया और लड़खड़ाते स्वरमें बोली, “मेरे बच्चे।”

फिर स्रोतेकी तरह उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। फुसफुसाने लगी, “कैसा प्यारा बच्चा है! कैसा प्यारा!”

गुलाबकी माँ, सुनारोंके घरकी सोने-सी बहू जब घरसे दौड़ती हुई निकली तो यह सब हो चुका था। वह न आगे बढ़ सकी, न पीछे हट सकी, सकतेमें आकर बुत बन गई। उसने दीवार पकड़ रखी थी। उसकी आँखें फैल गई, मुँह खुल गया, भय और आतंकने उसके दिलको दबोच लिया कि... कि गफूरनने बच्चेको ऊपर उठाया, चूमा, छातीसे लगाया फिर नीचे उतारकर अपनी चूड़ियोंकी पोटली खोली। उसमें जो सबसे सुन्दर कड़ा था वह उसे दिया। बच्चेने कड़ा लेते ही किलकारी मारी और दौड़ता हुआ सीधे माँके पास आकर बोला, “अम्मा, अम्मा, कड़ा, दादीने कड़ा दिया है।”

और फिर हँसी, सरिता-सी छलछलाती हँसी। गफूरनने उसे सुना, नाच उठी। सुनारोंकी सोने-सी बहूने सुना, काँप उठी। आँसू उमड़ आये। गफूरनके आगे बढ़ते ही उसने गुलाबको खींचकर गोदमें भर लिया और लगी रोने। उसे विश्वास हो गया था कि अब गुलाबकी खैर नहीं। और उसे ही नहीं तमाम मोहल्लेवालोंको यही विश्वास था। कहनेवाले कहते

हैं कि गुलाब उस दिन उस कडेको लेकर खूब खेला। साँझको खूब हँसा और रात पड़ते ही वह एकाएक काँपने लगा, फिर तड़पा, देरतक तड़पा जैसे पानीसे बाहर आकर मछली तड़पती है। सुनारोंके घरमें कौहराम मच गया। नारियोंका रुदन कलेजा चीरने लगा। रातके उस सप्ताटेमें वह आवाज़ गली और गलीसे दूर कहीं-कहीं पहुँच गई।

“हाय राम !” एक बुढ़ाने कहा, “जिसको वह चुड़ैल प्यार करती है, उसे डसकर छोड़ती है।”

“बड़ा जहरीला प्यार है उसका।”

“मौत भी नहीं आती उसे।”

“जबतक यह अपना मंत्र किसीको नहीं सिखा देती तबतक यह नहीं मर सकती।”

इसी समय अचानक पाँच-छ कड़ियल जवान सुनारोंके घरसे निकले और सीधे गफूरनके घर पहुँचे। वहाँ आस-पास उनके कई दोस्त थे। उनकी मददसे उसे जगाया और पैर पकड़कर प्रार्थना की कि वह कुछ भी ले ले पर गुलाबका कलेजा थूक दे। गफूरन थी कि अनजान बनकर बोली, “हाय, हाय बेटा ! क्या कहो हो ? किसने बहका दिया।”

“ना, ना चाची सौ ले ले। पाँच सौ ले ले पर गुलाबको बरुश दे।”

“नहीं, बेटा नहीं।”

“नहीं, चाची नहीं।”

“बेटा ! मैं सब कहूँ, क्यों तोहमत लगाओ हो। मैं क्या जानूँ जादू-टोना। मैं तो गरीब मनिहारिन हूँ।”

सुनारोंके घरवालोंने रुपयोंका ढेर लगा दिया पर बुढ़िया टस-से-मस नहीं हुई—उलटा जब वह बहुत हड़ करने लगे, तो वह उबल पड़ी और लगी गालियाँ देने। इसपर सुनारोंके बेटों और दोस्तोंने उसे बाँधकर वह मार लगाई, वह मार लगाई कि आखिर गफूरनने हाथ जोड़कर कहा, “मैं थूके देती हूँ। मुझे छोड़ दो, मैं अभी थूकती हूँ।”

“थूक ।”

“छोडो, थूकती हूँ ।”

कहनेवाले कहते हैं—गफरनने इधर थूका और उधर गुलाब ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे मोकर उठा हो । मुनारोके बेटे जब घर आये तो वह दूध माँग रहा था । कह रहा था कि उसके पेटमें बड़ा दर्द है । पूछा, “अब भी है ?”

“हाँ ।”

और फिर उसे दस्त हुआ और उसकी तबीयत काफी सुधर गई । अगर्चे उसे कई दिन तक बुखार रहा पर फिर बेहोशी नहीं हुई । और कहनेवाले इसी तरहकी बातें कहते थे और मुननेवाले उनपर विश्वास करते थे । अगर्चे उन्होंने देखा कुछ नहीं था पर ईश्वरको भी किसने देखा है, फिर भी उसे लगभग सभी मानते हैं ।

और इन्ही न खत्म होनेवाली चर्चाओके कारण शरतको लेकर मेरी बेचैनी बढ़ गई । वह रात जैसे मेरे लिए परीक्षाकी रात हो गई । शरत हँसता तो मेरा माथा ठनकता, मुझे मौत आती दिखाई देती, पर शरत था कि उमी तरह खेलता-कूदता सो गया । मुझे याद है कि मामी बार-बार चौक पड़ती । जरा कही खड़का होता, वह पुकार उठती, “शरत ।” मैं तब मामीको देखकर एकदम कहता, “क्या है, मामी ? शरतको क्या हुआ ?”

“कुछ नहीं, सो रहा है ।”

मामा उस दिन कही दौरेपर थे । इसलिए वह रात हमारे लिए और भी भयानक हो उठी । यँ ऊपरसे दोनो शान्त थे । सब काम रोज़-की भाँति किये । खाना, पीना, दूध जमाना, फिर खुरचन खाना, फिर लैम्प लेकर सब दरवाजे देख लेना और फिर सो जाना । हाँ, उस दिन दरवाजे जरा गहराईसे देखे गये और भूलसे लैम्प जलता रह गया । मामी कहती थी कि मैं उस रात कई बार चौका और पुकारा—

“शरत ।” मुझे याद है कि मामी रात भर फुसफुसाई थीं—“शरत रे, ओ शरत ।”

पर हुआ यह कि सदाकी भाँति शरत सोकर उठा और खेलमें लग गया । दिन चढ़े तक खेलता रहा । पड़ोसियोंने उसे देखा, जीभ काटी और रात होने तक उनमें यह चर्चा फैल गई कि गफूरन जिसपर गुस्सा करती है उसका कलेजा नहीं खाती ।

और फिर इसके समर्थनमें कई कहानियाँ सुनी गई और सदाकी भाँति उनके कहनेवालोंने सब कुछ अपनी आँखोंसे देखा था ।

लेकिन इधर गफूरनमें एक परिवर्तन दिखाई दे रहा था । कभी-कभी उसके साथ एक लड़की आने लगी थी । लड़की खूबसूरत थी, उसकी खाल मुलायम थी । वह शर्मीली भी थी । जब-जब वह आती, गफूरन सबसे उसका परिचय कराती और जब वह चली जाती तो प्रौढ़ाएँ ठोड़ीपर उँगली रखकर बड़ी हैरानीसे कहतीं, “दूसरी डायन तैयार हो रही है ।”

“क्या ?”

“हाँ, अब उसका बुलावा आ गया । इसे मंत्र पढा देगी और फिर यह सलौनी छोरी सलौने छोरोके कलेजे खाया करेगी ।”

“हाय, हाय ! इसे कोई अलग क्यों नहीं कर देता ।”

“जिसपर गफूरन रीझ जाये उसे कोई अलग नहीं कर सकता ।”

और उस लड़कीको वह बानो कहती थी । वैसे उसका पूरा नाम हुस्नबानो था । अगर्चे शुरूमें वह एक मरधिल्ले खाजसे बीमार पिल्लेकी तरह थी, पर देखते-देखते उसने जो रंग छाँटा तो हुस्न उससे दूर न रहा । सुना था कि गफूरन उसे कहीं दूर-दराजके एक गाँवसे खरीद लाई थी । उसकी जातका किसीको पता नहीं था । अपने माँ-बापकी शायद वह दसवीं औलाद थी, जो सबकी सब लड़कियाँ ही थीं ।

कुछ दिन बाद बानो रोज आने लगी । गफूरन हर दरवाजेपर लाठी टेककर हाँफती-हाँफती घरवालीको पुकारती । उसके आनेपर

कुछ देर, वाक्य उसके कंठमें अटके रहते फिर कहती, “अब तो बहू ! बस किनारा आ लगा है। अब यह बानो आया करेगी।” फिर मुड़कर बानोसे कहती, “बानो ! ये बड़ी मेहरबान हैं। समझी, मैं तो जबानकी कड़वी थी फिर भी मजाल जो किसीने बुरा माना हो। पर तू सबसे मुहब्बतसे बोलना-वरतना। कड़वी जबान बड़ी खोटी है। भला री ! बच्चोंसे खास तौरसे मुहब्बत करना। उन्हें प्यार करना मैं... मैं...”

यहाँ आकर उसका कण्ठ फिर रुकने लगता और वह एक क्षण बाद एकदम कड़ककर कहती, “सलाम बहू। अब यह आयेगी बानो...”

और वह आगे बढ़ जाती, लजीले नयनोंवाली बानो हाथ उठाकर सलाम करती और एक पाउडर ऐसी हल्कीसी मुस्कान उसके मुखपर उभर आती। इधर एक झटकेसे किवाड़ बन्द करती हुई बहू कहती, “हूँ, तो अब यह खूबसूरत नागन बच्चोंको डसा करेगी।”

और इस घरसे उस घर, इस पड़ौससे उस पड़ौस, इस गलीसे उस गली उड़ती हुई यह कहानी गफूरनके पहुँचनेके पहले समूचे वातावरणमें रम गई, “अरी बहू सुना ! दूसरी डायन तैयार हो गई।”

“बड़ी मिठबोली और खूबसूरत है।”

“अपनी जबानीमें गफूरन भी तो कातिल रही थी। हाँ, जबानकी कुछ कड़वी थी।”

“अरी ओ गोमती ! बानोको देखा तूने। आँखेंतक नहीं उठाती।” अजी मेरो दादस कहवे थी कि गफूरन भी पहले ऐसी थी जरा जबान की कड़वी थी।”

“दादी जी, दादीजी ! तुमने गफूरनको देखा। क्या वह ऐसी ही खूबसूरत थी ?”

“पूरी चाँदका टुकड़ा थी, पर जबान उसकी शुरूसे कड़वी रही। बात-बातमें कहा करे थी—‘कलेजा खा लूँगी।’ अपने खसम तकको नहीं छोड़ा।”

“पर दादीजी ! उसे मंत्र सिखाया किसने ?”

“क्या मालूम बेटा ! कोई जादूगर आया बतावें था । पड़ौसमें बसा था । उमीसे साँठ-गाँठ हो गई । मंत्र सीखकर सबसे पहले उसने अपने खसमका कलेजा खाया ।”

“सच !”

“हाँ, पर वह इसे भारी पड़ा । कहनेवाले कहे थे कि बहुत दिन बीमार पड़ी रही, फिर यहाँ भाग आई । मुना है जादूगर उससे कह गया था कि अबसे बड़ोंको न छेड़ना ।”

“ओ हो, तभी बच्चोंको डसे है ।”

और इस प्रकार घर-घर और गली-मोहल्लेमें उसकी चर्चा होती और वह भी अब जब कभी आती तो ललचाई आँखोंसे सूनी सड़कोंको देखती । कोई बहू मिलती तो उससे पूछती, “अरी बहू, तेरा बेटा तो अच्छा है ।”

“जी...जी थारी मेहरबानी है ।”

गफूरन और भी सदय होती, “सब उसकी मेहरबानी है । वह सबको देता है ।” और फिर वह कहना चाहती, “अरी दिखा तो कहाँ है तेरा बेटा ।” पर ये शब्द उसके कलेजेसे उठकर गलेमें खो जाते । बाहर उनकी ध्वनितक न गूँजती । वस आँखोंमें आँसू भरे वह देरतक बुत जैसी वहीं टिकी रहती । दिलके तूफानको दिलमें रोके रखती, रोके रखती ।

लेकिन बुढ़ापा तो संयमका दुश्मन है, वह निश्चयका भी दुश्मन है । वह तो बस बहता रहता है । तो गली-मुहल्लेवालोंको अब कुछ यूँ अनुभव होने लगा जैसे गफूरन अब बूढ़ी हो गई है, क्योंकि न तो किसी बच्चेके तड़पनेकी खबर सुनाई पड़ती है न मरनेकी ।

“सुनती कहाँसे । अब गफूरन थोड़े ही खाती है ।”

“हाँ, हाँ री, अब तो बानो है ।”

“और उसके कलेजा खानेका तरीका भी और होगा ।”

“हाँ, कौन जाने उसके खाये बालक कैसे मरे हैं ।”

बाहर नहरका पुल पार करके, जब हम उस तंग और बदबूदार बस्तीमें पहुँचे तो चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। लेकिन उस ओर तनिक भी ध्यान न देकर हम गफूरनके कच्चे मकानमें घुसे चले गये। बड़ेसे चौककी कीचड़में जो मुरगियाँ खेल रही थीं, वे तेजीसे फड़फड़ाई और कोठड़ीसे बाहर आती हुई बानों सहमकर अन्दर घुस गईं। हमने मुना, काँपती हुई तेज आवाजमें उसने कहा, “वे आ गये, वे किशोरको लेने आ गये। मैं कबसे कह रही थी।”

वह अपना वाक्य पूरा कर पाती इससे पूर्व हम अन्दर पहुँच चुके थे। देखा गफूरन एक टूटी खाटपर पड़ी है। गफूरन जो अब खोखली हड्डियोंका टेढ़ा-मेढ़ा पंजर-मात्र है, पुरानी लाश जैसी डरावनी और विकृत ! और बानो खड़ी है। बानो जो कीचड़का कमल है। जो पीली पड़ रही है और काँप रही है, काँपे जा रही है ! और किशोर उसकी उंगली पकड़े है। किशोर जो हँस रहा है, जिसने एक हाथसे भोलीको संभाल रखा है।

कहनेमें देर लगती है। किशोरके काकाने बाजकी तरह झपटकर किशोरको गोदीमें उठा लिया, ऐसे कि बानो धक्का खाकर जमीनपर गिरी, सिर तेजीसे खाटके पायेसे टकराया। किशोरकी भोली खुल गई और खन-खनाकर ढेर सारे रुपये, खिलौने, काँचके कड़े चारों तरफ बानोंपर, गफूरन-पर, हमारे पैरोंपर, फर्शपर बिखर गये। किशोर रो पड़ा, जिसे सुनकर गफूरन तिलमिलाई। दोनों हाथ आगे बढ़ाये, तेजीसे सिर हिलाया, ओंठ फड़के !

पर वह कुछ कह न सकी और उसे मारनेको जैसे ही एक युवकने हाथ उठाया वैसे ही वह सहमकर पीछे हट गया और फिर भागा हुआ बाहर चला गया। लेकिन पुलिस आई तबतक गफूरन राही मुल्के अदम हो चुकी थी और बानोने जो बयान दिया उसपर कोई विश्वास करनेको तैयार नहीं। उसने रोते-रोते अटकते-अटकते कहा था :

“इधर कई दिनसे काकीकी हालत खराब थी। उसने बाहर जाना

छोड़ दिया था। मुझे भी नहीं जाने देती थी। कहती थी मेरे पास बैठी रह। यही नहीं, कभी कहतीं बच्चोंको बुला ला, छोटे बच्चोंको, बहुत सारे बच्चे जो सारे घरमें भर जायं, शोर मचायँ और फिर कहती—‘वानो ! ले मेरे सब रुपये उनमें बाँट दे और ये खिलौने, ये काँचके कड़े सब बच्चोंको दे दे। काकीने बहुत सारे खिलौने और कड़े इकट्ठे कर रखे हैं। पहले तो मैं डर गई। कुछ न कर सकी, पर जब काकीने बहुत कहा, वह मुझसे बहुत प्यार करती थी और उसकी यह हालत मुझमें न देखी गई तो, तो मैं आज हिम्मत करके दोपहरको किशोरको बुला लाई। वह बाजारमें खेल रहा था और मुझसे खूब हिला हुआ था। उसे पाकर काकी बहुत-बहुत खुश हुई। इतनी खुश कि जैसे जी उठेगी। उसे बहुत प्यार किया। उसके आगे खिलौनों, कड़ों और रुपयोंका ढेर लगा दिया। पर मैं डर रही थी कि कहीं ढूँढ़ न पड़े। इसीलिए कुछ देर बाद मैंने उसे वापस बाजारमें छोड़ आनेको कहा पर काकी—‘जरा रुको, जरा रुको’ कहती रही और आखिर ये लोग आ गये और और...’

इम बयानपर किसीने भी विश्वास नहीं किया, पुलिसने भी नहीं। वह उसे अपने साथ ले गई पर न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता रहा जैसे बानो झूठ नहीं बोल रही थी, बानो बिल्कुल ठीक कह रही थी !

और मैं आज भी कहता हूँ कि वह बराबर सच बोल रही थी।

१९५३]



